तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

कलकत्ता।

कार्य्यविवरण–पहला भाग

(कार्य्यक्रम)

स्वागतकारिणी सभाके मन्त्री

राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, बी० एल० द्वार

८६, हरिश्चन्द्रमुकर्जीरोड, भवानीपुरसे

प्रकाशित।

वैक्रम संवत् १९७०।

विज्ञप्ति।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके तृतीय अधिवेशनका कार्य्यविवरण सर्वसाधारणकी सेवामें अर्पित है। अब हिन्दीहितैषियोंसे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, हिन्दी-साहित्यसम्मेलन क्या है और उसके उद्देश्य क्या हैं। क्योंकि दिनोंदिन इसकी उपयोगिता सबपर प्रकट होती जा रही है। तभी तो इसके अधिवेशनोंमें हिन्दीहितैषियोंके उत्साह और उद्योगकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

इस सम्मेलनने इस समयतक क्या क्या काम किये हैं, इसका परिचय स्थायी-समितिके मन्त्रीकी रिपोर्टसे, जो यहां परिशिष्टोंके अन्तर्गत दी गयी है, मिलेगा। सम्मेलन केवल मौखिक प्रस्तावोंको स्वीकार करके ही चुप नहीं है, बल्कि उन प्रस्तावोंको कार्य्यरूपमें परिणत करनेमें भी यह यथासाध्य तत्पर है। आशा है, यदि इसी प्रकार सम्मेलनका कार्य्य तत्परताके साथ सम्पन्न होता रहा, तो हिन्दीका यथेष्ट उपकार होनेमें विलम्ब न होगा।

इस कार्य्यविवरणके प्रकाशित होनेमें संभवातीत विलम्ब हुआ है। इसके कई अनिवार्य्य कारण हैं। उनमें मुख्य कारण कलकत्तेमें अच्छे प्रेसोंका अभाव है। स्वागतकारिणी सभाकी ओरसे हम इसके लिये क्षमा मांगते हैं।

हिन्दीके लेखकोंने इस वर्ष भी अपने अपने लेख भेजनेका कष्ट उठाया है। वे लेख दूसरे भागमें सन्निवेशित हैं। उन लेखोंपर मनन करना भी हिन्दीहितैषियोंका कर्त्तव्य है।

कलकत्तेकी स्वागतकारिणी सभाने निमन्त्रित महानुभावोंके सत्कारार्थ यथासाध्य और यथाशक्ति उद्योग करनेमें त्रुटि नहीं की थी। पर तौभी भूलचूक हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। इसके लिये भी स्वागतकारिणीकी ओरसे हम क्षमा चाहते हैं।

एक भारी भूल यह हुई है कि, स्वा० का० के सहायक मन्त्री बाबू रामलाल वर्म्माकी दी हुई ५१) रुपयेकी रकम अर्थ-साहाय्यकर्त्ताओंवाले परिशिष्टमें भूलसे न दी जा सकी। इसके लिये हमें वर्म्माजी एवं सर्वसाधारण क्षमा करेंगे।

शीघ्रतामें बहुत सी छापेकी भूलें भी रह गयी हैं, जिसके लिये हिन्दीहितैषी महानुभाव हमें क्षमा करेंगे।

कलकत्ता,
मार्गशीर्ष शु० ७
संवत् १९७०।

राजेन्द्र प्रसाद,
मन्त्री।
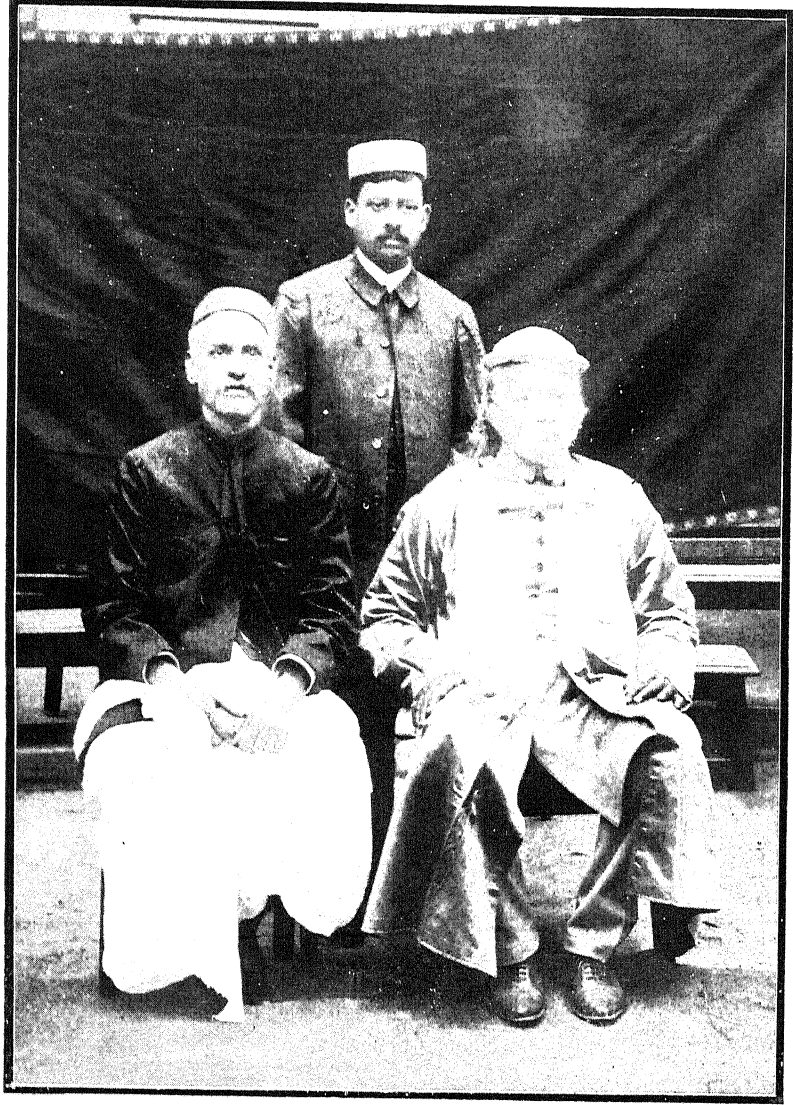
श्रीयुत पण्डित छोटूलाल मिश्र । श्रीमान् पण्डित बदरीनारायण चौधरी ।

श्रीयुत बाबू गोकुलचन्द ।

वर्म्मन प्रेस, कलकत्ता ।

तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कलकत्ता।

कार्य्यविवरण—पहला भाग।

कार्य्यक्रम।

[मार्गशीर्ष शुक्ला ११, १२ और १३ संवत् १९६९]

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी शुक्रवार सं० १९६९ (ता० २०।१२।१२)के सबेरेसे ही हवड़ाष्टेशनपर हिन्दीप्रेमियोंकी भीड़ होने लगी। साढ़े सात बजेतक धीरेधीरे खासी भीड़ होगयी। प्लेटफार्मपर जिधर देखिये उधर ही हिन्दीभाषियोंका समूह देख पड़ता था। सम्मेलनके बैज लगाये बहुतसे स्वेच्छासेवक इधर उधर घूमते दिखायी पड़ते थे। सभापतिके स्वागतके लिये बहुतसे गण्यमान्य सज्जन भी उपस्थित थे; उनमेंसे कुछके उल्लेखयोग्य नाम ये हैं,—

पं० छोटूलालमिश्र (स्वागतकारिणी समितिके सभापति), कलकत्ता हिन्दी-साहित्यपरिषदके संरक्षक पं० गोविन्दनारायण मिश्र (द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति), श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद एम्० ए०, बी० एल०, (स्वागतकारिणी समितिके मन्त्री); पं० सुन्दरलाल मिश्र, पं० विश्वेश्वरनाथ मिश्र, पं० राधाकृष्ण झा एम्० ए०, (स्वा० का० स० के सहकारी मन्त्री), बाबू नारायणदास खन्ना, बाबू दामोदर दास खत्री, पं० नन्दकुमार देव-शर्म्मा, श्रीयुत बी० नागलिङ्गम् (सीलोन), श्रीयुत लक्ष्मणराव बी० ए०, (मैसूर), पं० भूरालाल मिश्र, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, पं० वासुदेव मिश्र, पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पं० बैजनाथ चतुर्वेदी, बाबू श्यामलाल लखनेश्वर, बाबू हरिबक्स जालाण, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, पं० बलभद्र प्रसाद ज्योतिषी बी०ए०,बाबू मथुराप्रसाद सिंह बी० ए०,पं० भुवनेश्वरप्रसाद चौधरी बी० ए०, बाबू हरनन्दन सहाय बी० ए०, बाबू गंगाधारी लाल बी०, ए०, (स्वेच्छासेवकोंके अध्यक्ष), बाबू बदरीनाथ वर्म्मा एम०ए०, बाबू बैजनाथ देवड़ा बी० ए० और बाबू मुरलीधर प्रसाद शराफ, बी० ए।

इनके अतिरिक्त सम्मेलनके प्रधान मन्त्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन एम० ए०, एल० एल० बी० भी पं० इन्द्र-नारायण द्विवेदी, मिर्जापुरके रईस बाबू झब्बूलाल गोइनका आदि कई सज्जनोंके साथ पंजाब मेलसे ६॥ बजे पहुंच गये थे।

ठीक साढ़े सात बजे सभापति महोदयकी गाड़ी स्टेशनपर पहुंची। उनके साथ पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय एम० ए०, एल० एल० बी०, मिर्जापुरके वकील बाबू श्रीराम ; श्रीयुत गिरिधारीलाल बार-एट-ला (अमृतसर) आदि कई प्रतिनिधि भी उसी गाड़ीसे हबड़ा उतरे। सभापति महोदयके गाड़ीसे निकलते ही स्वागत-कारिणी समिति और कलकत्ता हिन्दी-साहित्य-परिषदकी ओरसे आपको मालाएं पहनायी गयीं। सभापति महोदयके पहलेसे ही निषेध कर देनेके कारण जुलूसकी व्यवस्था नहीं की गयी थी, पर तोभी एक छोटा सा जुलूस निकल ही पड़ा। आगे आगे घुड़सवार और पीछे मोटर और घोड़ागाड़ियां और इनके बीच सभापति महोदयकी सुन्दर फिटन देखनेमें बड़ी ही रमणीय मालूम होती थी। सभापति महोदयके गाड़ीपर सवार होते ही उनपर फूलोंकी वर्षा की गयी। धीरे धीरे यह जुलूस हरिसन रोड होता हुआ बाबू विश्वम्भरनाथ बालमुकुन्दके नये मकानके सामने ठहरा। सभापति महोदयके ठहरनेकी यहीं व्यवस्था की गयी थी। यहां आप बड़े आदरसम्मानसे उतारे और अपने निर्दिष्ट कमरेमें लाये गये। आपके आसन ग्रहण कर चुकनेपर बड़ाबाजार स्पोर्टिङ्ग क्लबके स्वयंसेवकोंने हिन्दीके सुकवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्तकृत "अहो मातृभाषे दशा देख तेरी" गीत गाया।

गीत गाये जानेके अनन्तर उपस्थित सज्जन अपनी श्रद्धाभक्ति प्रकट कर तथा सभापति महोदयके आरामके लिये सब प्रकारका प्रबन्ध कर अपने अपने गृहको पधारे।

पहला दिन।

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीके दिन कर्जन थियेटरने जो रूप धारण किया था वह सर्वथा निरुपमेय है। मण्डप विभागके मुखिया बाबू हरगोविन्द दास गुप्त तथा अनेक स्वेच्छासेवकोंके परिश्रमसे थियेटरका हाल भीतरसे बाहरतक बड़ी सुन्दरतासे सुसज्जित था। द्वार केवल पत्र पुष्प और तोरण-वन्दनवारसे ही सुशोभित नहीं बनाया गया था, बल्कि वहां कदलिस्तम्भ और नारिकेल-संयुक्त कलस-युगल भी रखे गये थे। उन्हें देख लोगोंके मनमें कालिदासकी उक्ति, "प्राग्द्वारवेदिविनिवेशितपूर्णकुम्भाम्" याद आती थी। द्वारदेशमें लोगोंकी अभ्यर्थनाके लिये स्वेच्छासेवक खड़े थे। वहांसे कुछ दूरपर ऊपर जानेकी सीढ़ी और भीतर हालमें जानेका फाटक था। इस फाटकके निकटकी दीवारों पर पं० गौरीशङ्कर भट्टके भेजे हुए "ॐ स्वागतम्", "अशीलस्य हतं कुलम्" इत्यादि अनेक सामयिक उपदेशयुक्त वाक्य लगाये गये थे। भीतर हालमें भी ऐसे सैकड़ों वाक्य दीवारोंकी शोभाको दूनी-चौगुनी बना रहे थे। ये उपदेश नाना रंगके कागजपर छपे थे। इस कारण इनसे

केवल मन ही प्रसन्न नहीं हो रहा था, वरन् इनसे नेत्रोंको भी परितृप्ति हो रही थी। कर्ज्जन थियेटरका विशाल हाल ऊपरसे नीचेतक कुरसियोंसे सजा हुआ था। मंचके मध्यभागमें सभापतिद्वय, मन्त्रीगण तथा बड़े बड़े गण्यमान्य लोगोंके लिये कुरसियां सजी हुई थीं। सभापतिके टेबलकी दाहिनी ओर वक्ताओंके लिये टेबल रखा हुआ था; और उसके पीछे निमन्त्रित सज्जनोंके लिये स्थान निर्द्दिष्ट किया गया था। उसकी बांई ओर स्वागतकारिणीके सदस्योंका स्थान था। ऊपर कोठेपर एक ओर कलकत्तेकी नागरी-प्रचारिणी सभाके और दूसरी ओर हिन्दी साहित्यपरिषद्के सदस्योंके बैठनेकी व्यवस्था की गयी थी। सभापतिके सामने मञ्चके नीचे संवाददाताओंका टेबल लगा हुआ था और उसके पीछे प्रतिनिधियोंकी कुरसियां सुशोभित थीं। प्रतिनिधियोंके पीछे दर्शकोंके बैठनेका प्रबन्ध था। कोठेपर एक ओर स्त्रियोंके लिये पर्देके भीतर कुर्सियां सजी हुई थीं और सामने दर्शकोंके लिये कुर्सियों-की कतार थी।

बाबू गङ्गाधारीलालके नेतृत्वमें स्वेच्छा-सेवक आगन्तुक सज्जनोंको यथास्थान बैठानेके लिये ११ बजेसे ही तत्पर थे। लोग ११ बजेसे आने लगे और बारह बजते बजते सारा हाल लोगोंसे ठसाठस भर गया। प्रायः चार हजार आदमियोंकी भीड़ हो गयी। जो सज्जन उपस्थित थे उनमें कुछके नाम ये हैं:—

माननीय कुमार कीर्त्यानन्द सिंह (बनैली)।
डाक्टर पी० सी० राय।
म० म० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०, पी० एच० डी०।
म० म० हरप्रसाद शास्त्री।
म० म० प्रमथनाथ भट्टाचार्य।
प्रिन्सिपल रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी।
श्रीयुत सारदाचरण मित्र।
„ दामोदरदास वर्म्मन।
„ रामानन्द चटर्जी।
„ पांचकौड़ी बनर्जी।
„ सुरेशचन्द्र समाजपति।
अध्यापक विनयकुमार सरकार।
„ वि० का० राजवाड़े (पूना)।
पण्डित भीमसेन शर्म्मा।
„ जयेन्द्रराव भगवानलाल, एम० ए०, पी० आर० एस०।
रायबहादुर लक्ष्मीनारायण खत्री।
श्रीयुत नानूराम भाट, चन्दवरदायीके वंशज।
„ राधामुकुन्द मुखर्जी एम० ए०।
बाबू गोकुलचन्द्र जी।
बाबू धन्नूलाल अगरवाला।
बाबू देवीप्रसाद खेतान अटर्नी।
अध्यापक प्रफुल्लचन्द्र घोष एम० ए० पी० आर० एस०।
„ नृपेन्द्रनाथ बनर्जी एम० ए०।
बाबू दामोदर दास खन्ना।
पं० रामावतार शर्म्मा, एम० ए० साहित्याचार्य्य।

पं० सकल नारायण पाण्डेय।
,, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल।
,, प्रह्लाद शर्म्मा काव्यभूषण।
श्रीयुक्त लक्ष्मणराव बी० ए० (मैसूर)।
,, पं० जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ।
पं० शिवनन्दन त्रिपाठी।
बाबू कुलवंत सहाय (वकील हाइकोर्ट)।
,, शिवनन्दन राय ,,
,, फूलचंद चौधरी।
पं० ठाकुरप्रसाद व्याकरणाचार्य्य।
,, कालिकाप्रसाद त्रिवेदी,
बी० ए०, एल० एल० बी०।
बाबू नारायणदास अरोड़ा।
पं० रामलोचन पाण्डेय।
,, कालीप्रसाद तिवारी।
,, महेशदत्त शुक्ल,
बी० ए०, एल० एल० बी०।
बाबू अवधविहारी शरण बी० ए०।
पं० ज्वालाप्रसाद चौबे।
बाबू गोपालराम गहमरनिवासी।
ठाकुर विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह।
पं० रामानन्द शर्म्मा।
,, हरिशङ्कर पाण्डेय व्याकरणाचार्य्य
काव्यतीर्थ।
,, राधाकान्त मालवीय, एम० ए०।
,, चतुर्व्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
श्रीयुक्त विहारीलाल गुजराती।
,, हरगोविन्द दास गुप्त।
,, नन्दकुमार देवशर्म्मा।
,, डाक्टर राधारमण मित्र।
श्रीयुक्त वैद्यनाथ चौबे।
पं० बुद्धिचरण शर्म्मा।
,, रामनारायण बाजपेयी।
बाबू रामचीज सिंह।
अध्यापक उपेन्द्रनाथ घोषाल एम० ए०
(प्रेसिडेन्सी कौलेज कलकत्ता)।
,, पं० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़
न्यायवेदान्ताचार्य्य।
पं० कन्हैयालाल शर्म्मा गोपालाचार्य्य।
बाबू दुर्गाप्रसाद खेतान, बी० ए०।
,, रामदेव चोखानी।
,, हनुमान प्रसाद पोतदार।
पं० शिवचरण शास्त्री।
श्रीमान राव मोरेश्वर राव बलवन्तराव।
बा० पुरुषोत्तम राय।
,, मुकुन्दी लाल वर्म्मा।
बाबू देवकीनन्दन खन्ना।
श्रीयुक्त नागलिङ्गम (सिंहली)।
,, गिरिधारी लाल बारिष्टर, अमृतसर।
रायबहादुर लालविहारीलाल वकील।
बा० गोकुलानंदप्रसाद वर्म्मा।
पं० लोचनप्रसाद काव्यविनोद।
अधिकारी जगन्नाथदास विशारद।
पं० शशधर त्रिपाठी।
श्रीयुक्त कालीप्रसाद दास।
बा० शिवनन्दन सहाय।
पं० रामजी लाल शर्म्मा।
बा० वदरीनाथ वर्म्मा एम० ए०।
पं० राधाकृष्ण झा एम० ए०।
बा० मथुराप्रसाद सिंह बी० ए०।

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी।
पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्व्वेदी।
पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर।
बा० यशोदानन्दन अखौरी।
बा० रामलाल वर्म्मा।
पं० बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी बी० ए०।
बा० रूढ़मलजी गोइनका।
राय यतीन्द्रनाथ चौधुरी।
बा० नगेन्द्रनाथ बसु प्राच्यविद्या-महार्णव।
पं० मुरलीधर मिश्र,
बी० ए०, एल० एल० बी०।
„ सूर्य्यनारायण दीक्षित।
एम० ए०, एल० एल० बी०।

स्वागतकारिणी समितिके सभापति तथा सदस्य अपने अपने आसनपर बैठे हुए थे कि, इतनेमें ज्यों ही पौने तीन बजे त्यों ही सम्मेलनके सभापति उपाध्याय पं० बदरीनारायणजी चौधरी प्रेमघन पधारे। मण्डपमें आपके पैर रखते ही सबके सब खड़े हो गये, और करतलध्वनिकी कोई सीमा न रही। आपके पीछे पीछे पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र तथा और कई सदस्य पहुंचे। उनके मंचपर आसन ग्रहण करनेके बाद भी कुछ देरतक तालियां बजती रहीं। अनन्तर स्वा० का० स० के सभापति पं० छटूलालजी मिश्रके कहनेपर गान्धर्व महाविद्यालयके अध्यक्ष गायनाचार्य्य पं० विष्णु दिगम्बरने मङ्गलाचरण रूपसे भगवती सरस्वती देवीकी निम्नलिखित श्लोकसे वन्दना की :—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला
या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा
या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभि-
र्देवैः सदावन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती
निःशेषजाड्यापहा॥

स्तुति पाठके समय मण्डपमें निस्तब्धता छागयी थी और सबके सब भक्तिस्रोतमें परिप्लुत होगये थे। स्तुति समाप्त होनेपर पं० विष्णु-दिगम्बरके तीन छात्रोंने निम्नलिखित स्वागतका गीत गाया :—

स्वागत।

पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी रचित।

(गान्धर्व महाविद्यालयके बालविद्यार्थी द्वारा)

भीमपलासी—तीन ताल।

स्वागत आज तुम्हारो भाई,
स्वागत आज तुम्हारो।
स्वागत तुम्हरो करन हेत है,
समारोह यह सारो॥
अहो भाग्य है आज हमारो,
पायो दरस तिहारो।
तुम सुपूत हिन्दी जननीके,
जस छायो दिसि चारो॥
भूसन बसन अनूपम लै लै,
वाको रूप सँवारो।
होय राष्ट्रकी भाषा हिन्दी,
बानी यही उचारो॥

मत देखहु तुम चूक हमारी,
अपनी ओर निहारो ।
पत्र पुष्प श्रद्धासों अर्पित,
कीजे ग्रहन हमारो ॥

तत्पश्चात् स्वा० का० स०के सभापति पं० छोटूलालजी मिश्रकी आज्ञासे मुंगेर जिलाके अन्तर्गत मलयपुरके जमींदार बाबू मथुराप्रसाद सिंहके पुत्र और भ्राता बालविद्यार्थी बाबू जनार्द्दन सिंह तथा पञ्चानन सिंहने निम्नलिखित गीत गाया :—

स्वागत ।

मलयपुर निवासी बाबू अयोध्याप्रसाद सिंह रचित ।

स्वागत तुम्हारो, दया करि पधारो ।
हिन्दीरसिकवृन्द इत पगुधारो ॥
कोविदकलावान, भारतके गुणखान ।
सबही जुरे आन, आरति उतारो ॥
यह पुर भयो धन्य, सुरपुर सरिस गण्य ।
पावन परसि चरण पंकज तिहारो ॥
अनुपम हरष मानि, चुनि चुनि
कुसुम आनि ।
हिन्दी जननि शीश, श्रद्धासों डारो ॥
भारत-भुवन बीच, हिन्दी करे राज ।
बिगड़ो बने काज, जतन विचारो ॥
चहुंदिशि जगतमाहिं फैले सुयश चारु ।
जय जय उठे गूंजि, जय जय उचारो ॥

गीत समाप्त होजाने पर स्वा० का० स० के सभापति पं छोटूलालजी मिश्रका निम्नलिखित व्याख्यान हुआ—

कलकत्ता

तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी

स्वागतकारिणी समितिके सभापति

श्रीयुत पण्डित छोटूलाल मिश्रका

भाषण ।

(मार्गशीर्ष शुक्ला १२, सं० १९६८) ।

प्रिय भ्रातृगण !

हम आज बड़े आनन्दके साथ आप सज्जनोंका स्वागत इस कलकत्ता महानगरीमें करते हैं जो, अब भारतवर्षकी राजधानी न होनेपर भी वर्त्तमान हिन्दी भाषाकी जन्मभूमि अवश्य है । आज हमारा परम सौभाग्य है कि, घर बैठे आप जैसे विद्वान् साहित्यसेवियों और मातृभाषाके उपासकोंके दर्शन मिले हैं । वास्तवमें आज बड़े आनन्दका दिन है । अनुराग, प्रेम, स्नेह और श्रद्धाभक्तिसे हम गद्गद हो रहे हैं । किस प्रकार हम आपका स्वागत करें, यह समझमें नहीं आता है । इस सुन्दर समारोहसे हमारे नयन कभी सफल होंगे, यह हमने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था । प्रिय सज्जनो ! इसमें सन्देह नहीं, कि आप मातृभाषाकी आराधना करनेके लिये इस शीतकालमें अनेक कष्ट और मार्गव्यय सहन कर यहां पधारे हैं ; पर हमें दुःख है कि, आप सज्जनोंके समुचित आदरसत्कारके लिये हम कुछ भी आयोजन नहीं कर सके हैं । हमने अपनी श्रद्धा, भक्ति और आप महानुभावोंके अनु-

ग्रहके भरोसे ही यह अनुष्ठान किया है, आशा है, आप महानुभाव कृपा कर हमारे इस दीन हीन यत्किञ्चित कन्दमूलको "सुदामाका तण्डुल" समझकर ग्रहण करेंगे।

बन्धुवरो! इस कथनमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं कि, कलकत्ता वर्त्तमान हिन्दी भाषाकी जन्मभूमि है। क्योंकि सन् १८०३ ईस्वीमें स्वर्गवासी कविवर लल्लूलाल जीने कलकत्तेमें ही 'प्रेमसागर' नामकी पुस्तक लिखकर वर्त्तमान हिन्दीके गद्यकी नींव डाली थी। हिन्दीके सस्ते, पर अच्छे समाचारपत्रोंकी सृष्टि भी यहीं हुई है। आज भी हिन्दी भाषाके बड़े बड़े समाचारपत्र जितने यहांसे निकलते हैं उतने और कहींसे नहीं निकलते हैं। हिन्दी भाषाके सबसे पुराने अखबार "विहारबन्धु"का भी जन्म यहीं हुआ था। अतएव कलकत्ता हिन्दी भाषाभाषियोंका केन्द्र न होनेपर भी इस समय हिन्दी साहित्यका केन्द्र हो रहा है। परन्तु तीस पैंतीस वर्ष पहले यहां भी हिन्दी साहित्य-चर्चाका अभाव ही था। भारतकी राजधानी होनेपर भी यहां भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीका कुछ भी आदर नहीं था। क्योंकि जिनकी यह भाषा है, वे ही जब इसका आदर नहीं करते थे तब दूसरा क्यों करता? जो हिन्दी भाषाभाषी यहां थे, वे मुण्डे अक्षरोंकी कृपासे ही "इलमदार" की पदवी प्राप्त कर उदरकी सेवा कर लेते थे। फिर नागरी अक्षरों और हिन्दी भाषाकी कौन पूछता?

बाकी रहे हमारे बंगाली भाई। अपनी बंगभाषाकी श्रीवृद्धि छोड़ हिन्दीकी ओर क्यों देखने लगे थे? इसके लिये हम उन्हें दोष नहीं देते हैं। यह उनके लिये स्वाभाविक ही था। राजदरबारमें अंग्रेजीकी तूती बोलती थी, फिर हिन्दीको पूछता कौन? जो नागरी अक्षर टटोलकर कुछ पढ़ना जानते थे, उनकी साहित्यचर्चा हातिमताई, चहारदरवेश, बैतालपचीसी, सिंहासनबत्तीसी-तक ही समाप्त थी। तुलसीकृत रामायणकी पहुंच दरवान और पुलिसके जवानोंतक ही थी। जिन्हें कुछ पढ़ने लिखनेकी रुचि थी, वे बंगला पढ़ते थे और बंगालियोंकी चाल सीखते थे। क्योंकि उनकी प्राथमिक शिक्षा बंगलामें ही होती थी। हिन्दीकी प्राथमिक शिक्षाका कुछ भी प्रबन्ध नहीं था और न कोई इसकी आवश्यकता ही समझता था। यहांके हिन्दी भाषाभाषी सज्जनोंमें राज-पूतानावासियोंकी संख्या अधिक है। इन सज्जनोंने मनुष्योंके उपकारके लिये दातव्य औषधालय और अस्पताल बनवाये, पशुओंके लिये पिंजरापोल खोली, पथिकोंके विश्रामके लिये धर्मशालाएं बनवायीं, पर बालकोंकी शिक्षा और ज्ञानलाभके लिये उस समय किसीने कुछ नहीं किया। धन्यवाद है श्रीमान् व्याख्यानवाचस्पति पण्डित दीनदयाल शर्म्माको जिनके ओजस्वी व्याख्यानोंके प्रभावसे बड़ेबाजारवालोंका ध्यान इधर आकृष्ट हुआ और थोड़े ही दिनोंमें श्रीविशुद्धानन्दसरस्वतीविद्यालय और सार-

खतन्त्रवियविद्यालयकी प्रतिष्ठा हो गयी। इन दोनोंमें अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दीकी शिक्षा दी जाती है। यदि पण्डित दीनदयालुजी उद्योग न करते, तो ये दो विद्यालय कभी स्थापित न होते।

हिन्दी भाषाके प्रचारक समाचारपत्रोंकी भी दशा उस समय बड़ी शोचनीय थी। मुझे वह समय कभी न भूलेगा, जब मेरे भाई स्वर्गवासी पण्डित दुर्गाप्रसादने कई मित्रोंके अनुरोधसे साप्ताहिक "भारतमित्र" निकाला था। जो साप्ताहिक "भारतमित्र" आज दैनिक रूप धारण कर हिन्दी भाषा-भाषियोंका मुखोज्वल कर रहा है, उसके आदि सम्पादक होनेका सौभाग्य मुझे ही प्राप्त है। सचमुच मैं इसमें अपना बड़ा गौरव समझता हूं। अस्तु, जब "भारतमित्र" निकला था, तब पढ़नेवालोंकी बड़ी कमी थी। मुलाहजे और दबावमें पड़कर लोग ग्राहक तो बन जाते थे, पर साथ ही कह देते थे, कि यहां पढ़नेवाला कोई नहीं है, आकर सुना जाया कीजिये। लाचार "भारतमित्र" कमीटीके कई सज्जन पत्र सुनानेके लिये जाया करते थे। मारवाड़ी भाइयोंमेंसे बाबू मोहनलाल जी शराफ और बाबू रूड़मल गोयेनकाके पिता स्वर्गीय शिवबखश गोयेनकाके अतिरिक्त कोई हिन्दी पत्रका पृष्ठपोषक उस समय न था। परन्तु उद्योगकी शक्ति भी विलक्षण है। कुछ ही दिनोंमें अखबारोंकी ओर लोगोंकी रुचि बढ़ी और देखते देखते हिन्दीके कई अच्छे समाचारपत्र निकले जिनकी ग्राहकसंख्या सन्तोषजनक थी। "सारसुधानिधि", "उचितवक्ता" आदि तो अस्त हो गये, पर "भारतमित्र" दिनों दिन उन्नति कर रहा है। हिन्दी अखबारोंकी ग्राहक संख्या बढ़ती देख बङ्गालियोंका भी ध्यान हिन्दी समाचारपत्र निकालनेकी ओर गया और वे हिन्दी पत्र प्रकाश कर सफल मनोरथ भी हुए। हमें उनका कृतज्ञ अवश्य होना चाहिये। आनन्दका विषय है कि, आज भी कलकत्तेके प्रायः सब बड़े बड़े हिन्दी अखबार योग्यता, गम्भीरता और निर्भीकतासे सम्पादित हो रहे हैं। "हितवार्त्ता" जैसी सुन्दर साप्ताहिक पत्रिकाके बन्द हो जानेका बड़ा दुःख है। इसमें सन्देह नहीं कि, कलकत्तेमें हिन्दी-अखबारकी जड़ जमानेवाले स्वर्गवासी पण्डित दुर्गाप्रसादजी ही थे। पहले यहां जितने समाचारपत्र निकले प्रायः सबके वे ही जन्मदाता थे। स्वर्गवासी दुर्गाप्रसादजीके भतीजे स्वर्गवासी केशवप्रसादके उद्योगका फल "बड़ाबाजार लाइब्रेरी" है। इस पुस्तकालयमें हिन्दी, बंगला, अंगरेजी और उर्दूकी पुस्तकें हैं। बड़ेबाजारके विद्यारसिकोंको इससे बड़ा लाभ है। यह बड़े-बाजारवालोंके चन्देसे स्थापित हुई है और क्रमशः उन्नति कर रही है।

यह सब होनेपर भी यहां दो बातोंका अभाव है। एक तो यहांसे हिन्दीका कोई अच्छा मासिक पत्र नहीं निकलता, दूसरे यहां ऐसा कोई प्रेस नहीं जो सस्ते दामोंमें

अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करें। ये दोनों काम यहांवालोंके लिये न असम्भव हैं और न कठिन, वरञ्च और स्थानोंकी अपेक्षा ये काम यहां अच्छी तरह और सुभीतेके साथ हो सकते हैं। पर दुःख है कि, अभीतक यहांवालोंका ध्यान इधर नहीं गया है। कई मासिकपत्र यहांसे निकले, पर थोड़े ही दिन चलकर बन्द हो गये। प्रेसकी भी यही दशा है। यहां हिन्दीभाषाभाषियोंकी कमी नहीं है। वे लोग वाणिज्य-व्यापारमें सफलता प्राप्त कर स्वाधीन जीविकाके आदर्श बन रहे हैं, पर दुःख यही है कि, साहित्यसम्बन्धी व्यवसायकी ओर उनकी दृष्टि नहीं है। यदि ये लोग चाहें, तो सहजमें अधिक मूलधनसे एक बड़ा प्रेस खोलकर हिन्दीकी अच्छी अच्छी पुस्तकोंका प्रचार सस्ते दामोंमें कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि, उपयुक्त पुस्तकोंके प्रचारसे भी साहित्यकी वृद्धि होती है। पुस्तकोंका प्रचार सस्ते दामोंसे होता है और सस्ता दाम बड़ी पूंजीके प्रेस बिना हो नहीं सकता। इसलिये प्रेस तथा मासिकपत्रकी यहां बड़ी आवश्यकता है। जिस तरह पं० दीनदयालुजीके शुभागमनसे यहां विद्यालयोंकी स्थापना हुई, आशा है, उसी प्रकार आप महानुभावोंके पधारनेसे ये दोनों कार्य्य भी सिद्ध होंगे।

प्रिय भ्रातृगण! इसमें सन्देह नहीं कि, अंग्रेजी राज्यकी सुशीतल छायामें हम भारतवासियोंकी साधारण अवस्थामें बहुत परिवर्त्तन हो गया है। रेल और तारके प्रचारसे सब प्रान्तोंके भारतवासियोंको आपसमें मिलने जुलनेका बहुत कुछ सुभीता होता जाता है। बस, इसीसे हमें अपने देश और राष्ट्रका विराट रूप हृदयंगम हो रहा है। विभिन्न प्रान्तोंमें रहनेके कारण यद्यपि हम बंगाली, बिहारी, पंजाबी, युक्त-प्रान्तीय, महाराष्ट्र, मद्रासी प्रभृति नामोंसे अपना परिचय देते हैं, तथापि हम अपनेको एक ही माताकी सन्तान और एक ही साम्राज्यके अधिवासी समझते हैं। हमारे राष्ट्रका नाम भारतवर्ष अथवा हिन्दुस्थान है। इस लिये हम भारतवासी अथवा हिन्दुस्थानी हैं; बंगाली, बिहारी आदि नहीं। राष्ट्रीयताके लिये राष्ट्रभाषाका होना भी परमावश्यक है। भारतके अनुभवी विद्वान् मुक्तकण्ठसे हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार कर चुके हैं। इसलिये अब उस विषयपर तर्कवितर्क करना वृथा है।

प्रियवरो! यह हमारे बड़े सौभाग्यकी बात है कि, हम राष्ट्रभाषा हिन्दीकी गोदमें जन्मसे ही लालितपालित हुए हैं। इसकी सेवा करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है और भारतवर्षमें इसका प्रचार करना हमारा परम धर्म्म है। आनन्दकी बात है कि, इधर हमारे देशवासियोंका ध्यान आकृष्ट हुआ है और सब प्रान्तोंमें इसके लिये प्रयत्न हो रहा है। हमलोग भी आज इसी महान् कार्य्यके लिये यहां एकत्र हुए हैं।

महानुभावो! हिन्दीहितैषियोंके अदम्य

उत्साह, अविश्रान्त परिश्रम और निरन्तर चेष्टाका सुफल प्रायः सब स्थानोंमें दृष्टिगोचर हो रहा है। हिन्दीके प्रचारमें जो बाधाएं थीं, वे एक एक कर निर्मूल होती जाती हैं। हमारे पूजनीय संस्कृतके विद्वान् और विश्वविद्यालयोंके कृतविद्य सज्जन भी मातृ-भाषा हिन्दीको आदरकी दृष्टिसे देखने लगे हैं। अब सब ओरसे हिन्दी साहित्यकी उन्नतिका प्रयत्न हो रहा है। अब भारत-सरकारकी उदारतासे भारतके प्रत्येक प्रान्तकी व्यवस्थापक सभामें देशके विज्ञ, अनुभवी और परिणामदर्शी महाशयोंको स्थान मिल रहा है। इससे भारतीय भाषाओंको, विशेष-कर हिन्दी भाषाको, असहाय और अनाथ कहलानेकी आशंका नहीं रहेगी। भारतकी अन्यान्य भाषाओंका अधिकार अपने अपने प्रदेशकी व्यवस्थापकसभापर ही है, परन्तु हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीका अधिकार विहार, युक्तप्रदेश, पंजाब और मध्यप्रदेशकी व्यवस्थापक सभाओंपर है। इसके सिवाय बड़े लाटकी व्यवस्थापक सभापर भी अब हिन्दीका अधिकार हुआ है, क्योंकि उसे अब हिन्दीके केन्द्रस्थान दिल्लीमें आश्रय लेना पड़ा है। इससे अब पूरी आशा है कि, हिन्दीको राजदरबारमें उपयुक्त स्थान मिलेगा।

आनन्दकी बात है कि, काश्मीराधिपति, बीकानेरनरेश और रीवांपतिने अपने अपने राज्यमें हिन्दीको स्थान दे प्रजाका बड़ा उपकार किया है। बड़ोदेके अनुभवी नर-पतिने भी हिन्दीकी उपयोगिता स्वीकार कर उसे उपयुक्त स्थान दिया है। आशा है, अन्यान्य नरपति भी अपने अपने राज्यमें हिन्दीका प्रचार कर प्रजाका आशीर्वाद ग्रहण करेंगे।

बन्धुवरो! इन शुभ लक्षणोंको देखकर हमें निश्चिन्त न होना चाहिये। हिन्दी-साहित्यको सर्वाङ्गसुन्दर बनाने तथा इसे राष्ट्रभाषाके उपयुक्त भूषणवसन पहनानेकी बड़ी आवश्यकता है। यह काम सम्मिलित चेष्टा और उत्साहके बिना नहीं हो सकता है। हिन्दीको राष्ट्रभाषा कह देनेसेही हमारे दायित्वकी इतिश्री नहीं होती। उसके लिये हमें पूर्ण उद्योग करना चाहिये। प्रत्येक नगर और ग्राममें हिन्दी साहित्य सभा स्थापित कर हिन्दी साहित्यको उन्नत और सर्वाङ्गसुन्दर बनानेके लिये विचार करना चाहिये। फिर यथासमय सब प्रान्तोंके लोग एक स्थानमें एकत्र होकर अपने अपने विचार प्रगट करें और जो विचार तर्कवितर्कके पश्चात् उत्तम जान पड़ें उन्हें कार्य्यमें परिणत करनेकी चेष्टा करें। यदि आरम्भमें सफलता न हो तो हताश न होना चाहिये; वरञ्च और उत्साहसे काम करना उचित है। साहित्यसेवामें छोटे-बड़ेका विचार नहीं, धनीदरिद्रका विचार नहीं और न मतमतान्तरका विचार है। साहित्यक्षेत्रमें सब एक समान हैं, सब एक सूत्रमें बंधे हैं, सबका समान अधिकार है, माताकी उपासना सब समभावसे कर सकते हैं। जो धनी हैं, वह धनसे, जो लेखक हैं

वह लेखनीसे और जिसके पास कुछ नहीं है वह अपने शरीरसेही माताकी सेवा कर सकता है। बैर, विरोध, ईर्षाद्वेषको तिलाञ्जली देकर साहित्यक्षेत्रमें आना चाहिये। इसके बिना सफलता कोसों दूर रहेगी।

प्रिय भ्रातृगण! स्वागतकारिणी सभाकी ओरसे मैं पुनः आप महानुभावोंका हृदयसे स्वागत करता हूं और आतिथ्य-सत्कारकी त्रुटिके लिये विनीत भावसे वार-वार क्षमा प्रार्थना करता हूं।

अब मैं "आनन्दकादम्बिनी" और "नागरी-नीरद"के सम्पादक, हिन्दीसाहित्यके मर्मज्ञ विद्वान्, सुप्रसिद्ध सुलेखक, सुकवि, भारतेन्दु-सखा, मिरजापुरनिवासी श्रीमान् पण्डित बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय प्रेमघन महोदयसे श्रद्धाभक्तिपूर्व्वक सभापतिके आसन पर विराजमान होनेकी प्रार्थना करता हूं। प्रियवरो! श्रीमान् चौधरीजीके परिचयके लिये विशेष वागाडम्बरकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि—

"अनामिका स्वर्णमाधत्ते न कनिष्ठा न मध्यमा।
निजनामप्रसिद्धानां भूषणैः किं प्रयोजनम्॥"

आशा है, अब आप श्रीमान् चौधरीजीके नेतृत्वमें हिन्दीसाहित्यके हितसाधनमें अग्रसर होंगे। आपके अनुग्रहके लिये बारंवार धन्यवाद है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

आपका व्याख्यान समाप्त होते ही पं० गोविन्दनारायणजी मिश्रने आपके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए कहा,—

"आज बहुत ही आनन्दका विषय है कि, इस महानगरीमें हिन्दीसाहित्यसम्मेलनका प्रथम अवसर उपस्थित हुआ है। इस समय योग्य, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, गद्यपद्य दोनोंके सिद्धहस्त लेखक, आज भारतवर्षमें पण्डित बदरीनारायणजीसे बढ़कर कोई नहीं है। सोलह कोटि हिन्दीभाषाभाषी हैं, पर बङ्गाली ऐसे बहुत हैं जो युक्तप्रदेश पञ्जाब प्रभृतिमें बस गये हैं और वे भी प्रकारान्तरसे हिन्दी ही बोलते हैं, इस हिसाबसे हिन्दीभाषा भाषियोंकी संख्या बाइस कोटि है। माता-पिता जबसे गार्हस्थमें प्रवेश करते हैं तभीसे एक लालके लिये लालायित रहते हैं। हिन्दीके एक नहीं बाइस कोटि लाल हैं। ये यदि अपनी लालाईको बचाना चाहते हों, तो मातृभाषा हिन्दीका तनमनधनसे सेवा करें"। अब मैं पं० छोटूलालजी मिश्रके प्रस्तावका अनुमोदन करता हुआ पं० बदरी-नारायणजी चौधरीसे विनय करता हूं कि, वे सभापतिके आसनको सुशोभित करें।"

तदनन्तर पं० बदरीनारायणजीचौधरीने सभापतिका आसन ग्रहण किया और वे अपना व्याख्यान पढ़ने लगे। पर वृद्ध होनेके कारण बहुत ऊँचे स्वरसे पढ़ना आपके लिये कठिन था, इसलिये आपकी आज्ञासे पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय एम० ए०, एल० एल० बी० ने व्याख्यानको पढ़ सुनाया।

सभापतिका सम्भाषण ।

जय जयति जगदाधार सिरजन
करत जो संसार है ।
छायी अविद्या रासि तैं चाह्यो
करन उद्धार है ॥
पावनि परम निज वेद वानी
को करत संचार है ।
जग मानवन मन माहिं कीन्यो
ज्ञान को विस्तार है ॥
जयति सच्चिदानन्द घन
जगपति मंगल मूल ।
दया वारि बरसत रही
सदा होय अनुकूल ॥
जासु कृपा कन लेस लहि
मो सम हू मतिमन्द ।
लहत महत सम्मान यह
बुध जन सों सानन्द ॥

मान्यवर स्वागतकारिणी समितिके सभापति महाशय और समुपस्थित सहृदय सज्जनसमूह! परात्पर परमेश्वरकी इस अतर्क्य और अप्रमेय सृष्टिमें जहां अन्य असंख्य अघटित घटनायें संघटित होतीं, वैसेही यह आज आपकी कृपा भी कुछ विलक्षण ही वैचित्र्यका दृश्य दिखला रही है, कि आप आर्य्यमित्रोंकी इस सुप्रतिष्ठित महासभाका, जिसमें एकसे एक विद्वद्वर्य्य, साहित्यमर्मज्ञ तथा स्वमातृभाषाभक्त विराजमान हों, मुझसा एक अति सामान्य व्यक्ति जो विद्या बुद्धि और अन्य आवश्यक योग्यताओंसे सर्वथा शून्य हो, सभापति बने। अवश्यही इससे अधिक सौभाग्यका विषय और दूसरा क्या हो सकता है कि जिसमें कुछ भी योग्यता न हो, परन्तु यदि वह घुणाक्षरन्यायसे किसी प्रकार अपने कर्त्तव्य-कार्य्यको भी सुसम्पन्न कर सके, जिसकी मुझे कुछ भी आशा नहीं है, वह सुयोग्य सज्जनोंसे योग्य माना जाकर सम्मानका भागी हो।

महाशयो! सचमुच मेरे आश्चर्य्यका ठिकाना न रहा, जब कि मुझे यह सूचित किया गया कि, "कलकत्तेकी स्वागतकारिणी सभाने तुमको तृतीय साहित्यसम्मेलनका सभापति चुना है।" मैंने उत्तरमें तुरन्तही लिखा कि—"यह आप लोगोंने क्या किया! मैं सर्वथा इसके अयोग्य हूं। सोच समझ कर कोई उचित प्रबन्ध कीजिये।" स्वागत-कारिणी समितिके मन्त्री महाशयका भी पत्र प्राप्त हुआ। उन्हें भी मैंने इसी आशयका उत्तर दिया। पर मैं बहुत कुछ सोच विचार करके भी यह न समझ सका कि, अन्य एकसे एक सुयोग्य विद्वान बुद्धिमान अनुभवी देश और भाषाभक्तोंके होते हुए भी मुझ सरीखे सर्वगुणोंसे विहीन व्यक्तिको ऐसे महत्पदके अर्थ लोगोंने क्यों चुना है? क्या आपका आशय यह है कि, जो वास्तवमें सम्मानित हैं, उन्हें सम्मान प्रदान करनेसे क्या लाभ होगा। अतः किसी ऐसेही को सम्मानित करना योग्य है, जो यथार्थमें हमारेही सम्मानसे सम्मानित हो।

क्योंकि "व्याधितस्यौषधं पथ्यं निरुजस्य किमौषधैः" समझा गया है? अथवा एक तुच्छ व्यक्तिको बहु सम्मान संप्रदान कर सामान्योंको इस प्रलोभनसे साहित्यसेवामें उत्साहित करनेके अर्थ क्या इस नवीन उपाय की रचना की गई है? मैं कुछ भी ठीक न ठहरा सका कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? इधर लोगोंकी बधाई और हर्षसूचनायें आने लगीं। विशेष कर कई सुयोग्य साहित्यसेवी और गण्यमान्य लोगोंने मुझे यह लिखकर निरुत्तर कर दिया कि "यदि तुम इस बार इस पदको स्वीकार न करोगे, तो सम्मेलनकी सफलतामें हानि होगी।" उधर मेरे पत्रके उत्तरमें स्वागतकारिणी समितिके मंत्री महाशयने फिर लिखा कि "समिति अति आग्रहसे पुनः आपसे इसे स्वीकार करनेका अनुरोध करती है।" साथही कई इष्ट मित्र और हितैषी सज्जन तथा उदासीन सज्जनों की भी स्वीकारहीके पक्षमें सम्मति पाकर मैं इतने लोगोंकी आज्ञाके उल्लङ्घनका साहस न कर सका। यद्यपि मैं अपनेमें इसके अर्थ अपेक्षित योग्यताका सर्वथा अभाव ही पाता, तथापि महाकवि हाफिजके कथनानुसार कि—

ब मय सज्जादा रंगीं कुन्
गरत् पीरे मुगां गोयद।
कि सालिक बेख़बर न बुवद
ज़ि राहोरस्मि मंजिलहा।"

अर्थात्—"यदि धर्म्माचार्य्य कहे तो बिना विचारके तू अपने नमाज़ पढ़नेके पवित्र बिछौनेको मदिरामें रंग डाल। क्योंकि पथप्रदर्शक मार्गके वृत्त और विधानसे असावधान नहीं होता।" मुझे लाचार हो इसे स्वीकार करनाही पड़ा।

अस्तु। महाशयो! यहां आपलोगोंने मेरा जैसा स्वागत और सत्कार किया है— जिसे इस जन्ममें पानेकी मुझे स्वप्नमें भी कदापि आशा न थी—उसने मेरी रही सही हिम्मतको भी हरा दिया है। मुझमें इतना भी साहस और सामर्थ्य नहीं कि, मैं उचित रीतिसे आपकी इन कृपाओंके अर्थ धन्यवाद भी दे सकूं। मैं यह भी नहीं जानता कि, कैसे और किन शब्दोंमें धन्यवाद देना उचित है। क्योंकि जब कोई सुयोग्य पुरुष किसी समाज अथवा सभामें सम्मान पाता है तब वह धन्यवाद देकर अपनी कृतज्ञता प्रगट करता है। परन्तु जो वास्तवमें योग्य नहीं है, वह यदि लोगोंसे सुयोग्योंकी भांति सम्मानित हो, तो उसका क्या कर्त्तव्य है? यदि मैं साहस कर आप महानुभावोंकी सेवामें केवल एतन्मात्र निवेदन करूं कि, मैं आप सबकी इस अतुलनीय यत्परोनास्ति कृपाके अर्थ अन्तःकरणसे असंख्य धन्यवाद देता हूं, तो मेरी आत्मा कदापि सन्तुष्ट न होगी। अवश्यही आपलोगोंने मुझे एक उपलक्षण मानकर विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती जीहीकी पूजा की है। जैसे जड़ प्रतिमाको लोग किसी चैतन्य देवताका प्रतिनिधि मानकर उसकी अर्चा करते हैं, जिनकी पूजाका लक्ष्य कदापि वह जड़ प्रतिमा नहीं

है, तौ भी प्रतिमाका मान देवतुल्यही होता है। यह मान कितना बड़ा है? इसके अर्थ भी कितनी योग्यता सापेक्ष है? मैं इसे सोच और समझकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होरहा हूं।

मेरे माननीय मित्रोंने मेरी प्रशंसामें अपनी वचनरचनाचातुरी दिखा मुझे और भी लज्जित कर दिया है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि, उन्होंने राईको पर्व्वत बना दिया है। क्योंकि ऐसा कहनेसे उनपर व्यंग्योक्ति करनेका आरोप, अथवा लार्ड कर्जनके कथनानुसार अतिरञ्जनका दोष लगानेका दोषी हूंगा। यह सज्जनोंका स्वाभाविक धर्म्म है कि, उन्हें सब अच्छाही अच्छा दिखलाई पड़ता है, सबमें सद्‌गुणही-का भाव भासता और सबकी प्रशंसाका सौरभ ही उनके मुखारविन्दसे निरन्तर निसृत होता रहता है। परन्तु खेद है कि, यदि उनके कहनेके शतांश भी योग्यता मुझमें होती, तौ भी मुझे इस प्रतिष्ठित आसनके आरोहणका उत्साह होता। मुझे इसका अत्यन्त आश्चर्य्य और खेद है कि अनेक सुविज्ञ और सुप्रति-ष्ठित महानुभावोंके होते भी मैं कैसे इस प्रतिष्ठाके योग्य समझा गया हूं। अब सिवा इसके कि मैं कविवर आनन्दघनजीके उस वाक्यका आश्रय लूं और दूसरा अवलम्ब नहीं पाता।

मोंसो सुनो तुम्हें जान कृपानिधि!
नेह निबाहिबो यों छबि पावै।
ज्यों अपनी रुचि राचि कुबेर
सुरंकहि लै निज अंक लगावै॥

तौ भी महाशयो! आपलोगोंने जो यह मुझे सुमहत् सम्मान सम्प्रदान किया है, मेरे मानसे उसका निर्वाह नहीं है। आपने जो मूल्यवान परिच्छद मुझे पहनाया है, वह इतना ढीला और विसोहर है कि, मैं उसे संभाल भी नहीं सकता। आपने जिस मणिमय मुकुटको मेरे मस्तकपर रखा है, मैं उसके बोझसे ही दबा जा रहा हूं। आपने एक गजराजका भार पिपिलापर लादा है। आपलोगोंने देशी दीपकसे इलेक्-ट्रिक लाइटकी आशा की है। पस, यदि मैं इस फ़ेलमें फ़ेल हूं, यदि अपने कर्त्तव्यमें अकृतकार्य्य हूं तो मेरा क्या दोष है? अस्तु, अब मैं पुनः एकबार धन्यवाद देकर आपसे यह निवेदन करूंगा कि—जैसे भक्तोंको सुलभ, उनकी अति श्रद्धा और सम्मानसे समर्पित बिना गन्धके भी वन्यसुमनाञ्जलिको देवता राजा और गुरुजन सादर स्वीकार कर प्रसन्न होते हैं, वैसेही आप सब महानुभाव भी मेरी इन सारशून्य विशेषताविहीन कुछ वाक्या-वलियोंके सुननेका कष्ट सहन कर कृतार्थ करें। और उसकी न्यूनता और दोषमात्रको अपनी उदारता और मेरी अल्पज्ञतापर दृष्टि दे क्षमा कर विशेष अनुगृहीत करें। अब मैं आप महानुभावोंकी सेवामें हिन्दी-साहित्यके सम्बन्धमें थोड़ा सा निवेदन करता हूं।

कहते हैं कि आरम्भमें जब उस त्रिगुणा-तीत त्रिकालज्ञ परब्रह्म परमेश्वरने इस जगत्

की सृष्टि करनी* विचारी, तब प्रथमही उसकी आदि शक्तिने शब्द† की सृष्टि की। वह शब्द प्रणव था, जिसमें न केवल तीन मात्रा वा अक्षर, वरञ्च त्रिगुणमयी माया, त्रिदेव और त्रिशक्ति, योंही‡ त्रिलोककी सारी सामग्री बीजरूपसे अन्तर्हित थी। उसी बीजसे क्रमशः समस्त वर्ण, शब्द और तीनों वेद§ उत्पन्न हुए। प्रकृतिके त्रिगुणात्मिका होनेके कारण उसकी समस्त सृष्टि भी त्रिगुणमयी हुई। सुतरां चेतनसृष्टिके उत्तमांश प्राणियोंमें भी उन तीन गुणोंके न्यूनाधिक्यके अनुसार स्वतः देवता, मनुष्य और असुर तीनोंका विस्तार हुआ।

भाषाकी भी वैसी ही दशा हुई। जैसे एक ही प्रकृति तीन भागोंमें विभक्त हो, न्यूनाधिक गुणोंके कारण एकही जातिके प्राणियोंको ज्ञान, कर्म्म और स्वभावके अनुसार देवता, मानव और असुर बनाया, उसी प्रकार स्वभावसे उत्पन्न उस एकही ब्राह्मी वा देववाणी अथवा वेदभाषाको उन तीनोंकी प्रकृति और उच्चारणने क्रमशः तीन रूप दिये। मानो मूलभाषा त्रिपथगाकी तीन धारा हो बही। अर्थात् पहिली देववाणी जो देवता और विज्ञजनोंमें अपने यथार्थ रूपमें स्थित रही, दूसरी जो सामान्य मनुष्योंसे यथार्थ न उच्चारित होकर अशुद्ध रूप धारण कर चली और तीसरी असुरोंसे विशेष विकृत और विपरीत होकर विस्तारित हुई। पहिलीका नाम देववाणी वा वैदिक भाषा हुआ, जो क्रमशः विद्वानों द्वारा संस्कृत हो अन्तको संस्कृत कहलाई। दूसरी वैदिक अपभ्रंश अथवा मूल प्राकृत। यों ही तीसरी आसुरी, राक्षसी वा पैशाची कि जिसकी अति अधिक वृद्धि हुई और जिसकी शाखायें आर्य्यावर्त्तकी सीमाओंको लांघकर दूर दूर तक पहुंच बहुत विकृत हो क्रमशः मूलसे सर्वथा विलक्षण हो गईं। इस कारण आर्य्य-जातिसे पूर्वोक्त केवल दोही भाषाओंसे सम्बन्ध बच रहा—अर्थात् देववाणी और नरवाणी अथवा वेदभाषा और उसके अपभ्रंश लोक-भाषासे। वैदिक साहित्यमें यथास्थान इन तीनोंकी मूलभाषाओंका अस्तित्व पाया जाता है, जैसे कि संस्कृतके नाटकोंमें प्राकृतोंका।

जानना चाहिये कि, सृष्टि वा कल्पारम्भमें मानवसृष्टिके साथ जब ईश्वरीय वाक्शक्ति अर्थात् वाणी वा सरस्वतीका प्रादुर्भाव हुआ तो स्वभावहीसे दिव्य प्रतिभावान् व्यक्तियोंके उच्चारणसे स्वयं ब्राह्मी भाषा उत्पन्न हुई और दिव्यसंस्कारसम्पन्न लोगोंसे अकस्मात् उसी अर्थमें समझी जाने लगी। यों क्रमशः कुछ

---

* एकोऽहं बहुस्याम्। श्रुति।

† अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
महाभारत।

‡ यथा पर्णं पलाशस्य शंकुनैकेन धार्य्यते।
तथा जगदिदं सर्वमोङ्कारेणैव धार्य्यते॥ याज्ञवल्क्य।
प्रणवाद्या यतो वेदा प्रणवे पर्य्यवस्थिताः।
वाङ्मयः प्रणवः सर्व्वं तस्मात् प्रणवमभ्यसेत्॥
योगी याज्ञवल्क्य।

§ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः। श्रीमद्भागवत।

वाक्यबीजोंहीके द्वारा शब्दशस्यकी वृद्धि हुई और वेदका प्रादुर्भाव मुख्य मुख्यमहर्षियों द्वारा ही चला। मानो अनादि वेद और उसके ज्ञानका पुनः प्रकाशका क्रम चला। बहुतेरोंके चित्तमें यह आशङ्का होगी, कि भाषाकी सृष्टि भी क्या अकस्मात् हो सकती है? और वेद क्या ईश्वरने बनाये हैं? किन्तु ऐसी आशङ्काओंका अन्त नहीं है और न वे नई हैं। कितनोंको सबके मूल जगतकी सृष्टि और स्रष्टाहीमें सन्देह है। हमारे यहां भी ब्रह्म, माया, जीव, जगत, वेद और शब्द सबको अनादि मानकर भी इनका भाव और तिरोभाव* माना है। ईश्वरके विषयमें भी आरम्भसे अद्यावधि असंख्योंको आशङ्का है। यह विषयही अत्यन्त उच्च और गूढ़ातिगूढ़ है, जो विना आध्यात्मिक शक्तिके समझाई नहीं देता और न हमसे सामान्य जनोंको इसमें जिह्वासंचालनका अधिकार ही है। अस्तु, आस्तिकोंका अपने धर्म्मग्रन्थोंके अनुसार यह विश्वास अन्यथा नहीं कि, सृष्टिके आरम्भमें ईश्वरने वेदोंके द्वारा मनुष्योंको ज्ञान और कर्त्तव्याकर्त्तव्यका † आदेश किया। कहीं उसे इन्द्र, ब्रह्मा वा कई देवताओं और ऋषिओंके द्वारा आविर्भूत मानते, किन्तु कर्ता नहीं। आज भी बहुतेरे कारीगर चित्रकार और कवि अपने हाथकी कारीगरी करके भी उसे देख महर्षि वाल्मीकिजीकी भांति * स्वयं विमोहित हो आश्चर्य्य करके मान लेते कि, यह संयोगात् हमारे हाथों बन गई है, हममें इतनी योग्यता कदापि नहीं है। इसीसे हमारे देशवासी उच्च कोटिकी कविताओंमें भी सरस्वती देवीकी कृपा मानते हैं। योंही किसी गुप्त शक्तिकी प्रेरणा अनेक स्थलोंपर स्वीकार करनी पड़ती है, क्योंकि जिह्वा रहते भी लोग नहीं बोल सकते। बोलनेकी शक्ति कुछ और ही है, कविताकी कुछ और तथा विशेष चमत्कृत रचनाकी और है। अस्तु, ईश्वर द्वारा सृष्टिरचनामें अधिक आश्चर्य्यदायक रचना वेदकी है। और इसमें तो सन्देह किसीको भी नहीं है कि वेदसे प्राचीन साहित्य आज लभ्य नहीं है।

अवश्य ही भारतमें नवीन युगका आरम्भ हुआ है। नये अन्वेषण और आविष्कारके ये दिन हैं। नित्य नये २ सिद्धान्त स्थिर हो रहे हैं। सात समुद्र पार, सहस्रों कोसकी दूरीपर बैठे, पश्चिमीय विद्वान आज हमारे प्राचीन साहित्यकी मनमानी समालोचना कर रहे हैं। वे ऐतिहासिक जांचकी ओटमें हमारी सभ्यता, आचार, विचार और धर्म्मपर भी चोट चलाते हैं। कहीं २ अनुमान और अटकलके सहारे ऐसी ऐसी अनोखी बातें बतला चलते कि जिनसे भारतका कायापलट अथवा आर्य्यगौरवसर्वस्वका वारान्यारा होना सहज सुलभ है।

* धाता यथापूर्व्वमकल्पयत्—श्रुति।

† सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥

* मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

जो यद्यपि सचमुच स्वाभाविक होते हुए भी कितनोंहीको भ्रमोत्पन्नकारी है। अब यह कौन कह सकता है कि, भारतके आप्त महामहिम महर्षि और परम प्रतिभावान् एकसे एक उत्कट प्राचीन पण्डितों द्वारा निश्चित हमारे शास्त्रोंके परम्पराप्राप्त अर्थों और सिद्धान्तोंके विरुद्ध उन विदेशियोंके अनुमान और प्रमाण बावन तोले पाव रत्ती सटीक और सच्चे हो हैं? अथवा कहींसे कुछ भी उनमें असावधानी वा आग्रहका लेश नहीं है? ग्रन्थ एकही है, जिससे हमारे देशी और विदेशी विद्वान् भिन्न भिन्न अभिप्राय निकाल लेते हैं। एकही मुकद्दमेकी मिसिलसे दोनों पक्षके वकील दो प्रकारका प्रमाण संग्रह करते और परिणाम निकालते हैं। जननी और विमाता दोनों लड़केको पालतीं, पर उन दोनोंके पालनमें भेद होता है।

जैसे इन दिनों जबतक कि रजिस्ट्री न हो जाय, सच्चे से सच्चा दस्तावेज भी प्रामाणिक नहीं माना जाता। वैसेही जबतक कोई पश्चिमीय विद्वान स्वीकार न कर लें, कोई प्रमाण प्रमाणित नहीं कहा जाता। प्रमाणित न माना जाय। अदालत डिक्री न दे। तौभी क्या वह सच्चा दस्तावेज वास्तवमें झूठा है? एक दिन भारतहीसे विद्या, विज्ञान और सभ्यता सारे संसारमें फैली थी। आज पश्चिमसे ज्ञानसूर्य्यका प्रकाश हुआ है और निःसन्देह अब मानो पश्चिम उसका सब ऋण चुका चला है। आज वहींकी विद्या और विज्ञानसे भारतकी आंखे खुली हैं। हमारे देशके लोग अबतक अवश्यही अविद्याके अन्धकारमें सोरहे थे। उनके अनेक अटपटे आक्षेपोंका प्रतिवाद कौन करता? अब उनके द्वारा ये भी जगे और उनके सम्मतिस्वर्णको निज विचारकी कसौटीपर कस चले हैं। आशा है कि, कुछ दिनोंमें बहुतेरे विवादग्रस्त विषय उभय पक्षसे सिद्धान्त रूपसे स्वीकृत हो जायँगे। यद्यपि अनेक भारतसन्तान आज उन्हींके सुरमें सुर मिलाये वही राग अलाप रहे हैं। किन्तु वे क्या करें कि उन्हींकी टेकनीके सहारे वे चल सकते हैं। तौ भी सदा यही दिन न रहेगा। सदैव हमारे भाई औरोंहीकी पकाई खिचड़ी खाकर न सराहेंगे। वरञ्च वे भी शीघ्रही पूर्वी और पश्चिमी उभय विज्ञानचक्षुको समान भावसे खोलेंगे, आलस्य छोड़कर अपने अमूल्यरत्नोंको टटोलेंगे और खरे खोटेकी परख कर स्वयं अपने सच्चे सिद्धान्त स्थिर कर लेंगे।

अभी कलकी बात है कि, हमारे देशके गौरवस्वरूप ब्राह्मणकुल-तिलक पण्डितवर बाल गङ्गाधर तिलकने* अपने विलक्षण विद्यावैभव और प्रतिभासे आर्य्योंके आदि निवास स्थान योंही वैदिक साहित्यकी प्राचीनता—जिसे पश्चिमीय विद्वान ४ सहस्र वर्षसे अधिक नहीं मानते थे, उसे ८ सहस्र वर्ष सिद्ध कर दिया है। योंही अन्य अनेक

*Orion or Researches into the Antiquity of the Vedas.

ऐसे अमूल्य सिद्धान्त वेदोंसे आविष्कृत और और प्रकाशित किये जिसे सुन वे चौकन्ने हो गये। कई बार आगे भी भारतपर अज्ञानान्धकार और विपरीत विचारका अधिकार हो चुका है, किन्तु फिर यथार्थ ज्ञान सूर्योदयने उसे छिन्नभिन्न कर दिया है। जबतक वह दिन न आ जाय, हमें धैर्य्य-धारण पूर्वक अपने सहस्रों वर्षों से चले आते सच्चे सिद्धान्त और विश्वाससे टसकना न चाहिये। आपलोग क्षमा करें कि मैं प्रकृत विषयसे बहककर व्यर्थ बहुत दूर जा पहुंचा।

निदान देववाणी क्रमशः व्याकरण और साहित्यके विविध अङ्ग प्रत्यङ्गोंसे युक्त हो इतनी उन्नत अवस्थाको पहुंची कि आज भी संसारकी भाषाएं अनेक अंशोंमें उसके आगे सिर झुका रही हैं। आरम्भमें यही यहांकी सामान्य भाषा वा राष्ट्रभाषा थी। फिर राजभाषा अथवा नागरी भाषा हुई। क्योंकि क्रमशः व्याकरणके नियमोंसे वह ऐसी जकड़ दी गई कि, केवल पढ़े लिखे लोगोंसे बोली और समझी जाने योग्य रह गई, जिसके पढ़नेके अर्थ मनुष्यकी आयु भी पर्य्याप्त नहीं समझी जाती थी, मानो वह उन्नतिकी चरमसीमाको पहुंच गई। इसी-से उसकी शिक्षाके अर्थ उस दूसरी लोक-भाषाको भी सुधारने और नियमबद्ध करनेकी आवश्यकता आ पड़ी। वह भाषा वैदिक अपभ्रंश वा मूल प्राकृत थी, जो बुधजन और विद्वानोंसे क्रमशः परिमार्जित होकर आर्ष प्राकृत कहलाई। मानो तभीसे सेकेण्ड लैंगवेज (Second Language) का सूत्रपात हो चला।

बहुतेरोंका मत है कि—प्राकृतहीसे संस्कृतकी उत्पत्ति हुई है, क्योंकि वेदोंमें भी गाथा रूपसे इसका अस्तित्व पाया जाता है और संस्कृत नाम ही मानो इसका साक्षी देता है। परन्तु यह केवल भ्रम है, जो प्राकृत व्याकरणोंपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर सर्वथा दूर हो जाता है। क्योंकि वे सदैव संस्कृतहीका अनुकरण करते, संस्कृत हीसे प्राकृत बनानेकी विधिका विधान बतलाते और प्रायः देववाणी वा संस्कृतहीसे उसकी सृष्टिकी सूचना देते हैं। सारांश, संस्कृत प्रकृतिसे निकली भाषाहीको प्राकृत कहते हैं।

निदान इस प्रकार वह परिमार्जित वैदिक अपभ्रंश भाषा वा आर्ष प्राकृत, जिस-की क्रमशः अनेक शाखा प्रशाखाएं होती गईं, संस्कृतके प्रचारकी न्यूनताके संग राष्ट्र-भाषा बन चली और इस देशके चारों ओर विशेष विस्तृत हो प्रान्तिक प्राकृतोंसे मिलती-जुलती वही अन्तको महाराष्ट्री प्राकृत भी कहलाई। उस समयतक केवल पवित्र वैदिक धर्म्महीकी धूम थी। गुरुकुल, परिषद् और पाठालयोंमें वेदध्वनिका गुञ्जार और सत् शास्त्रोंका अध्ययनाध्यापन होता रहा। चारों वर्ण और आश्रम अपने २ धर्म्मपर स्थित थे। सुख स्वास्थ्य और आनन्द उत्सवका आश्रम यही देश बन रहा था।

पै कछु कही न जाय, दिननके फेर फिरे सब ।
दुरभागनि सों इत फैले फल फूट बैर जब ॥
भयो भूमि भारत मैं महा भयंकर भारत ।
भये वीरवर सकल सुभट एकहिं संग गारत ॥
मरे विबुध नरनाह सकल चातुर गुन मण्डित ।
विगरो जन समुदाय बिना पथदर्शक पण्डित ॥
सत्य धर्म्मके नसत गयो बल, विक्रम साहस ।
विद्या बुद्धि विवेक विचाराचार रह्यो जस ॥
नये नये मत चले, नये झगरे नित बाढ़े ।
नये नये दुख परे सीस भारत पैं गाढ़े ॥*

यही ब्राह्मणोंकी अदूर दर्शिता थी कि उन्होंने पिछले कांटे लोकभाषामें धर्म्मकी शिक्षाका क्रम नहीं चलाया था, जिस कारण सत्य धर्म्माचार शिथिल हो गया और नाना प्रकारके अनाचारोंका प्रचार हो चला था, जिसके संशोधनके अर्थ लोग उद्यत हुए। नये २ प्रकारके धर्म्म और आचारविचारकी शिक्षा सुनकर अपने धर्म्मसे अनभिज्ञ जन अचाञ्चक बहक चले।

बौद्ध धर्म्मके डंके बजने लगे। संस्कृतका पठनपाठन छूटा। प्राकृतके दिन लौटे। वह राष्ट्र और राजभाषाको छोड़कर धर्म्मकी भी भाषा बन चली। आर्ष प्राकृत वा महाराष्ट्री अब मागधी और पाली बन, भाषाओंकी मा† कहलानेका दावा कर चली। महाराज प्रियदर्शी अशोकके प्रतापके संग यह भी दूर दूरतक अपना अधिकार जमा चली। क्योंकि जब बुद्धदेव प्रगट हुए, प्रचरित देशभाषाहीमें वे अपना उपदेश कर चले। संस्कृतमें उपदेशका होना भी कठिन था। राजाका सहारा पाकर बौद्ध मत सारे भारतमें व्याप्त हो गया। जैनधर्म्मके घन भी घुमड़कर घिर रहे थे। ब्राह्मणोंके प्राणोंके लाले पड़ रहे थे। जैसे आज उर्दूके प्रबल अधिकारसे हिन्दी कोनोंमें दबक दुबक कर छिपी जीवन धारण कर रही है, संस्कृत भी प्राकृतसे दबी-छिपी अपनी प्राणरक्षा कर रही थी। तौभी सनातन धर्म्मके सभी ग्रन्थ संस्कृतहीमें होनेके कारण नवीन धर्म्मावलम्बी जन, प्राचीन धर्म्मके खण्डन और स्वमतमण्डनके अभिप्रायसे, उदार जन, साहित्यपरिज्ञान और उसके अनुयायी, धर्म्मज्ञानार्थ उसे कुछ न कुछ सीखते समझतेही रहे।

निदान उस देववाणी वा वेदभाषा त्रिपथगाकी इहलौकिक धारा वैदिक अपभ्रंश-प्राकृत-गङ्गोत्तरीसे, जो आर्ष प्राकृत नाम्नी गङ्गा बही, तो जैसे सुरसरिता क्रमशः अनेक नाम और रूप धारण करती कोड़ियों नदीनदको अपनेमें लीन करती, भारतभूमिके प्रधान भागोंको उपजाऊ बनाती, सैकड़ों शाखाओंमें बँटकर समुद्रसे जा मिली और जैसे गङ्गोत्तरीसे चलकर प्रयागतक जाह्नवी अपनी श्वेतधारा और सुधास्वादु सलिलके रूप और गुणको स्थिर रख सकी, किन्तु यमुनासे मिलाकर वर्णमें श्यामता और गुणमें वातुलता ला चली ; उसी प्रकार आर्ष प्राकृत भी हिमालयसे लेकर कुरुक्षेत्रतक

---

* मेरे "हार्दिक हर्षादर्श" नामक पुस्तकमें।

† सा मागधी मूलभाषा नरा या आदि कप्पिका।
ब्राह्मणा चास्सुताालापा सम्बुद्धा चापि भासरे ॥

आते अपने रूप और गुणको स्थिर रख सकी। इसके पीछे जनपदविस्तारक्रमके अनुसार इसके रंग, रूप और गुणोंमें भेद हो चला। तौभी भागीरथीके तुल्य उसकी प्रधान शाखा महाराष्ट्रीकी प्रधानता आरम्भसे अवसानतक बनी ही रही। महाराष्ट्र शब्दसे प्रयोजन दक्षिण देशसे नहीं है। किन्तु भारतरूपी महाराष्ट्रसे है। देश विशेषकी भाषायें इसकी शाखा स्वरूप दूसरी दूसरी ही हैं। जैसे कि—शौरसेनी, आवन्ती, मागधी आदि। विश्वनाथ कविराजने बहुतेरी भाषाओंके नाम * बतलाये हैं, जिनमें अधिकांश प्रायः प्रधान प्राकृतहीके भेद हैं और जिनकी सन्तति आज भारतकी प्रचलित समग्र प्रान्तिक भाषायें हैं। यथा—पञ्जाबी, गुजराती, मराठी, बंगला इत्यादि।

निदान हमारी भारतभारतीकी शैशवावस्थाका रूप ब्राह्मी वा देववाणी है। उसकी किशोरावस्था वैदिकभाषा, और संस्कृत उसकी यौवनावस्थाकी सुन्दर मनोहर छटा है। उसकी प्रथम पुत्री गाथा वा प्रधान प्राकृतकी वैदिक अपभ्रंश भाषा शैशवावस्था, आर्ष प्राकृत किशोरावस्था, और महाराष्ट्री तथा प्रान्तिक प्राकृतैं यौवनावस्था हैं। उसकी दूसरी पुत्री वा शाखा पैशाची वा आसुरीकी अनेक और अनेक शाखायें फैलीं। जैसे पश्चिमीकी क्रमशः पुरानी पारसी पह्लवी वा वर्त्तमान फ़ारसी और पश्तो आदि हैं, जिनसे यहां हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रान्तिक प्राकृतोंकी भी अनेक शाखायें फैलीं, जिनसे वर्त्तमान प्रचरित भाषाओंकी उत्पत्ति है। उनका प्रथम रूप प्रान्तिक प्राकृतैं, दूसरा उनके अपभ्रंश और तीसरा वर्त्तमान भाषायें हैं। जैसा कि हमारी भाषाका आदि रूप शौरसेनी † वा अर्द्ध मागधी, तो दूसरा नागर ‡ अपभ्रंश और तीसरा प्राचीन भाषा है। औरोंसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं हैं। इसीसे हम केवल अपनीही भाषाके रूपों और अवस्थावोंका क्रम कहते हैं। अर्थात्,—

वर्त्तमान हमारी भाषाका प्रथम रूप वा उसकी शैशवावस्था पुरानी भाषा अर्थात् प्राकृत-अपभ्रंश मिश्रित-भाषा है। जिसकी झलक आज चन्दवरदाईके पृथ्वीराज-रासोमें पाई जाती है। उसकी यौवनावस्थाका दूसरा रूप भाषा वा व्रजभाषा अथवा मिश्रित भाषा है। जिसका दर्शन कबीर, सूर, केशव, खुसरो, जायसी, तुलसी, बिहारी और देव, द्विजदेव आदिकी कविताओंमें हम पाते हैं। इसे किशोरावस्था और क्रमशः

* संस्कृत १, प्राकृत २, उदीची ३, महाराष्ट्री ४ मागधी ५, सिद्धार्धमागधी ६, शकाभीरी ७, अवन्ती ८, द्राविडी ९, ओड्रीया १०, पाश्चात्या ११, प्राच्या १२, बाल्हीका १३, रन्तिका १४, दाक्षिणात्या १५, पैशाची १६, आवन्ती १७, शौरसेनी १८। इनके अतिरिक्त और भी अनेक नाम प्राकृतोंके पाये जाते हैं।

† शौरसेनी और अर्द्धमागधीके मूल रूपोंमें केवल दो ही अक्षरोंके उच्चारणका भेद है।

‡ नगरस्त महाराष्ट्री और सेन्यो: प्रतिष्ठितम्। प्राकृताष्टाध्यायी।

उसकी नव यौवनावस्था भी कहें, तो कुछ हानि नहीं। तीसरी अवस्था इसका वर्त्तमान रूप है। जिसके पद्यके कवियोंमें देवस्वामी, बाबू हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, श्रीनिवासदास और श्रीधर पाठक आदि, यों ही गद्यके लल्लूजी लाल, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेन्दु और वर्त्तमान समयके अन्य सुलेखक हैं। जिसे उसकी पूर्ण यौवनावस्था वा प्रौढ़ावस्था भी कह सकते हैं।

ऊपरलिखे क्रमके अनुसार अब हमारी भाषा, भारतभारतीके अङ्कुरसे क्रमश: उन्नत होती, अनेक अवस्थाओंके भिन्न भिन्न रूपोंमें परिवर्त्तित होती, मानो भाषावृक्षका मुख्य स्तम्भस्वरूप है। अन्य सब प्रान्तिक भाषायें जिसकी शाखायें हैं, जिनमें कोई पुष्ट और कोई पतली, कोई दीर्घ और कोई लघु हैं। सारांश, हमारी भाषाका क्रम आरम्भसे अन्ततक एक प्रकार मूलसे अबतक लगा चला आ रहा है और इसकी प्रधानता अद्यापि वर्त्तमान है। जितना इसका विस्तार और प्रचार है, औरोंका नहीं है। क्योंकि यह मुख्य वा मध्य देशकी भाषा है। जहां सदैव साधु वा नागरी भाषाका प्रचार रहा और जहांसे मूल भाषाका विकास प्रसरित होता हुआ अन्य प्रान्तोंमें जाकर अपने स्वरूपोंको विशेष परिवर्त्तित करता रहा है। जैसे खानसे निकलकर रत्न दूर दूर पहुंचकर सुधारे और सँवारे जाकर दूसरा रूप धारण कर लेते हैं। इसीसे भगवान मनु आज्ञा करते हैं कि—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन:।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा:॥"

हमारा यह मध्यदेश मानो भगवती भारतीके परिभ्रमणका प्रधान पुष्पोद्यान है। उसमें भी यह ग्रैंड ट्रङ्क रोड मानो भाषा भारतकी भी ग्रैंड ट्रङ्क रोड है, जो सदा देशके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक निरन्तर चलती रही है। भारतके प्रधान तीर्थयात्रियोंकी भांति भाषाका भी कोई पथिक ऐसा नहीं कि, जिससे इसका परिचय न हुआ हो। अन्य सब उपभाषारूपी सड़कें सदा इसकी शाखा वा सहायकस्वरूप रही हैं और इसका सम्बन्ध सदा सबके साथ समान रूपसे रहा है। सबसे इससे थोड़ा बहुत अब भी व्यवहार बना हुआ है।

हम यहां कुछ ऐसे संस्कृत शब्द दिखलाते हैं कि, जो आज भी ज्योंके त्यों हमारी भाषामें व्यवहृत होते और जिनके लिये उसमें प्राय: कोई दूसरे शब्द नहीं प्रयोग किये जाते हैं। जैसे कि,—

बल, हल, पल, खल, बन, मन, तनु, धन, जन, दूर, सूर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, वसन्त, अन्त, साधु, सन्त, दिन, रात्रि, राजा, कवि, काम, क्रोध, इत्यादि।

जिनके अर्थके वाची आज हमारी भाषामें दूसरे शब्द नहीं हैं। इसी भांति अधिकांश दिनों, तिथियों, महीनों, नक्षत्रों, तारागणों, तीर्थों, नगरों, रागों, स्वरों और बहुधा अन्न, फल, फूल, पशु, पक्षी, औषधि, वृक्ष आदिके नाम, मनुष्य और पशुओंके

नाम भी ठीक ठीक संस्कृतहीके से वा कुछ बिगड़े ग्राम्य जनोंसे अद्यापि बोले जाते हैं।

अब कुछ ऐसे शब्द देखिये जिनके लिये यद्यपि संस्कृतके ही कुछ बिगड़े दूसरे शब्द भी हैं, तौभी इनका प्रचार उन्हींके तुल्य है, जिन्हें गँवारसे गँवार भी बोलता और समझता है, जैसे—

जल, थल, मल, नर, सर, माता, पिता, विधवा, बालक, पवन, पर्वत आदि।

अब कुछ ऐसे शब्द लीजिये कि जो उच्चारणके भेदसे बिगड़कर भी मूलसे भिन्न नहीं हुए हैं। जैसे—

संस्कृत	भाषा	संस्कृत	भाषा	संस्कृत	भाषा
भूमि	भुईं	आकाश	आकास	हेमन्त	हेवँत
पृथ्वी	पिरथी	मनुष्य	मानुख	क्षेत्र	खेत
पानीय	पानी	सूर्य्य	सुरुज	शरीर	सरीर
श्वास	सांस	चन्द्रमा	चन्दा	वृक्ष	बिरछ
प्रजा	परजा	दर्शन	दरसन	यजमान	जजिमान

हमारी भाषाका सम्बन्ध मुख्यतः आर्ष प्राकृत वा महाराष्ट्रीहीसे चला आता है। महाराष्ट्री और अर्द्ध मागधीमें भी कुछ विशेष भेद नहीं है। योंही शौरसेनी वा नागरमें भी अधिक अन्तर नहीं। आर्ष प्राकृतमें केवल दो ही वचन होते अर्थात् एक वचन और बहुवचन, द्विवचन नहीं। यही क्रम हमारी भाषामें भी चला आता है। हिन्दीमें लिङ्गोंकी अस्थिरता भी उसीका अंश है। अब हम कुछ ऐसे शब्दोंको दिखलाते हैं कि जो, संस्कृतसे प्राकृत होकर हमारी भाषामें आये हैं; जिससे उनके रूपोंके परिवर्त्तनका क्रम जाना जायगा। यथा,—

सर्वनाम।

संस्कृत	प्राकृत	भाषा
अहम्	अम्मि	हम, मैं
त्वम्	तुं, तुव	तुम, तब
यः, ये	जो, जे	जो, जे,
सः, ते	सो, ते	ते, वह, वे
कः, के	को, के	के, कौन
एषः, एते	येते, येटे	ये, यह

योंही और भी समझिये। सामान्यशब्द यथा,—

संस्कृत	प्राकृत	भाषा
वातुलं	वाउलो	बावला
शय्या	सेज्जा	सेज
उपाध्यायः	उवज्झाओ	ओझा
किन्नु	किणो	क्यों
शिथिलः	सिढिलो	ढीला
कृष्ण	कण्ह	कान्ह
कातरः	काहल	काहिल
कुटीर	कुडुल्ली	कोठरी
अन्तःपुर	अंदेउर	अन्दर
गर्त्त	गढ्ढो	गढ़ा
मृत्तिका	मटिआ	मट्टी
वृद्धः	बुड्ढो	बूढ़ा
श्लाघा	सलाहा	सराहा
श्मश्रु	मस्सू	मस
गर्भितः	गब्भिणं	गाभिन
अपर	अवर	और
कर्म्म	कम्म	काम
हस्त	हथ्थ	हाथ
पद्य	पज्ज	पाज

संस्कृत	प्राकृत	भाषा
अग्नि	आगो	अगिन
घृतम्	घिअम्	घी
मेघ:	मेहो	मेह
भगिनी	बहिणी	बहिन
दुहिता	धीआ	धी
कथम्	किवं, केम	किमि
पुत्र	पुत्त	पूत
आत्मीयन्	अपणं	अपना
धृष्ट:	धिट्ठो,	ढीठ
मृत्यु:	मिच्चु	मीच
वृक्ष:	रुक्खो	रूख
स्फोटक:	फोड़ाओ	फोड़ा
पदाति	पाइक्को	पायक
प्रभूत	बहुत्त	बहुत
स्तोकं	थोकं	थोक
कर्ण	कन्न	कान
वार्ता	वत्त	वात
अग्रे	अग्गे	आगे
दुग्ध	दुद्ध	दूध
नृत्य	णच्च	नाच
पुस्तकम्	पोत्थओ	पोथी
गम्भीरम्	गहिरम्	गहिरा
यष्टि:	लट्ठी	लाठी

हमारी मातृभाषाका परंपरागत यथार्थ नाम भाषाही है, ठीक जैसे कि अनादि कालसे चले आते हमारे धर्म्मका नाम धर्म्म है। अन्य जितने धर्म्म हैं सबकी एक एक संज्ञा विशेष है। जैसे बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त, अनेक पंथी, वा मुसलमान, खृस्तान आदि। आजकल जब बहुत विभेद बढ़ा, तो निज समूहके समान प्रतिद्वन्द्वियोंके सम्मुख कुछ लोग उसे सनातन धर्म्म कहते हैं, परन्तु वह भी समूहवाची सा हो गया है। ऐसेही भाषा शब्द भी उसी सनातन धर्म्मके तुल्य है। पहिले देववाणी भी केवल भाषाही कहलाती थी*। जब वह सामान्य जनोंकी भाषा न रही, वरञ्च प्रधान भाषा प्राकृत हुई, तो उसका नाम देववाणी, वैदिक भाषा और संस्कृत हुआ और यह भाषाही कहलाती रही। जब इसके भी भेद हो चले और प्रान्तिक भाषायें नये नये रूप बदलकर नवीन नामोंको धारण कर चलीं, तो वह आर्ष प्राकृत वा महाराष्ट्री, योंही भिन्न भिन्न प्रान्तोंके नामोंसे प्रान्तिक भाषायें पुकारी जाने लगीं। किन्तु हमारे मध्य देशकी प्रधान भाषा भाषा ही कहलाती रही, जिसके पश्चिमी छोरपर शौरसेनी, पूर्वी सीमापर मागधीका अधिकार था, योंहीं दक्षिणमें आवन्ती दाक्षिणात्या और उत्तरमें उदीचीका प्रचार था। बीचके पूर्वी भागकी भाषाको अर्द्धमागधी भी पुकारते थे। योंही पश्चिमीको अर्द्ध शौरसेन वा नागर। परन्तु ये सब विशेषण उन्हीं भाषाओंके प्रचारके साथ हुए जैसे कि आज व्रजभाषा, मिश्रित भाषा, हिन्दी, नागरी, खरी बोली, अथवा उसके अनेक भेद, जो बहुधा आज केवल

---

* पतञ्जलिने महाभाष्यमें संस्कृत शब्दोंको वैदिक ही कहा है—जैसे "केषां शब्दानां ? लौकिकानां वैदिकानां च।"

विभेद बढ़ानेहीके लिये बढ़ाकर कहे जाते हैं। क्योंकि स्थानिक बोलियां भाषा नहीं कहलायेंगी। भाषा वही है कि जिसमें उन सब स्थानों वा प्रान्तोंके सभ्यजन आपसमें मिलकर एक दूसरेसे बातें करते हों वा जिसका कोई पृथक साहित्य हो। यों तो इस महादेशकी बोलियोंके सम्बन्धमें यह कहावत है कि—"दस बिगहापर पानी बदले, दस कोसपर बानी।"

अस्तु, हमारी भाषा और सब प्रान्तिक भाषाओंसे प्रधान * और प्राचीन † है, तथा एक लेखे यही सबकी जननी है। क्योंकि सामान्यत: संस्कृत और विशेषत: प्रधान वा महाराष्ट्री प्राकृतसे इसका अद्यावधि साक्षात् सम्बन्ध वर्त्तमान है। पीछेसे पड़ा इसका 'हिन्दी' नाम भी यही साखी देता है, अर्थात् वह भाषा कि जो समस्त हिन्द वा हिन्दोस्तानकी हो। अवश्य ही यह शब्द बहुतही विवादग्रस्त और विदेशी है। तथा एक प्रकारसे हमारी प्रचलित साधुभाषाके अर्थमें तो नितान्त भ्रामक है, क्योंकि इसकी व्याप्ति बहुत विस्तृत है। सामान्य रूपसे यह भारतकी भाषामात्रका वाची है। यदि हम इसे अपनी भाषामें रूढ़ि मान लें, तौ

* डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्र कहते हैं कि, हिन्दी अत्यन्त महत्वकी भाषा है। यह हिन्दू जातिके सबसे सुशिक्षित लोगोंकी भाषा है।

† सुप्रसिद्ध बीम्स साहिब (Beams) कहते हैं कि— "आर्य्योंकी सबसे प्राचीन भाषा हिन्दी ही है और इसमें तद्भव शब्द सभी भाषाओंसे अधिक है।

भी यह ठीक अर्थ नहीं देता। वरञ्च अपनी शाखास्वरूप अनेक प्रान्तिक भाषाओंमें भ्रम डालता है और बिना विशेषणके अर्थका ठीक ठीक बोध नहीं होता।

बहुतेरे लोग हिन्द, हिन्दोस्तान, हिन्दू और हिन्दी नामोंको अति आग्रहसे अपनाना चाहते और उसपर अपना विशेष अनुराग दिखाते हैं। परन्तु जो अपना हुई नहीं है, वह अपनानेसे अपना कैसे होगा। कोई हिन्दवसे हिन्दू सिद्ध करते, तो कोई शिवरहस्य * वा मेरु तंत्रके नवीन प्रक्षिप्त श्लोकोंके † आधारपर उसका विचार करते हैं। कोई हिंसा वा हीनाचार दूषक अर्थ कर इसे प्रशंसावाचक मान , तो बहुतेरे सिन्धु शब्दके उच्चारण भेदसे, पारसियोंसे 'स'के स्थानपर 'ह' बोलनेका उदाहरण देकर, सिन्धु नदके इस पारके देशको हिन्द कहकर इसके अर्थमें कुछ हीनता नहीं मानते, और महाराणा उदयपुरके हिन्दूपति बादशाहकी पदवीका उदाहरण देते अपनेको हिन्दू धर्म्मावलम्बी कहनेमें कुछ भी दोष नहीं मानते हैं। परन्तु हमारी समझमें नहीं आता है कि कौन सा इसमें ऐसा गुण है कि जिससे हम अपने देश, जाति, धर्म्म और भाषाके मूल, वा नामहीमें इतना विवाद वा अशुद्धि रक्खें और बिसमिल्लाहही गलतकी मसलको सच कर दिखलायें।

* हिन्दूधर्म्मप्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे।

† हिन्दूधर्म्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्त्तिन:। अथवा— हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये।

क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि न यह हमारे यहांका शब्द है और न हमारे पुराने संस्कृत ग्रन्थोंमें कहीं इसका व्यवहार ही हुआ है। यह हिन्द वा हिन्दू शब्द पारसी भाषाका है और चाहे आरम्भमें सामान्यत: यह सिन्धु नद पारवाले देश वा उसके निवासी मनुष्योंहीका वाचक क्यों न माना गया हो, परन्तु कुछ दिनों पीछे, विशेषत: मुसल्मानोंके भारतविजयके अनन्तर यह शब्द घृणावाचक अवश्य ही माना गया। इसके अर्थके साथ काफ़िर, काला *, गुलाम और चोरका † सम्बन्ध अनिवार्य्य है। काफ़िर-का अर्थ धर्म्मविरोधके कारण स्वाभाविक है। काला रङ्ग भी ईरानी और अफगानों-का कुछ होता ही है, परन्तु अरबवालोंसे कहीं कम। आगे यहांसे जो हिन्दू पकड़ कर जाते थे, वहां गुलामीके लिये बेचे जाते और गुलाम कहलाते थे। आज भी अफ्रिका आदि विदेश और टापुओंमें यहांसे कुली जानेके कारण हिन्दुस्तानी नाम सुनकर वहां-वाले कुली ही समझते और प्राय: उतना ही उनका मान और स्वत्व भी स्वीकार करते हैं। ट्रान्सवालवाले इसके उदाहरण हैं। मारिशस आदिके प्रवासियोंकी दशा सब-पर विदित है। किन्तु हम नहीं समझ सकते कि, चोर और डाकूसे हिन्दुओंका क्या सम्बन्ध है? कहिये कि हमारे भाई भी तो अपनेको आजतक हिन्दू कहते आये हैं। तो यह कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। ये दैवी सृष्टिके मनुष्य हैं। इतने सहनशील, भोले और उदार हैं कि कभी किसीका प्रतिवाद करना तो स्वभावहीसे नहीं जानते। अगले दिनों हमारे भाई खुशामदके मारे अपनेको काफ़िर छोड़ क्या क्या न लिख गये हैं। जिनकी फ़ारसी किताबें देखनेसे सर हेनरी इलियटके कथनानुसार यह नहीं लक्षित होता कि ये किसी आर्य्यवंशी लेखककी लिखी हैं।

देशके राजाका दिया नाम भी लेना ही पड़ता है। मुसल्मानी राजत्वकालमें लोग अपनेको हिन्दू न कहते, तो क्या करते। 'सर' (Sir) और 'नाइट्' (Knight)की भांति पहले हमारे भाई मिरज़ा और मियां-की भी पदवी पाते और प्रसन्नतासे स्वीकार करते थे। जैसे मिरज़ा मनोहर और मियां तानसेन। अब भी पञ्जाबके कई उच्चकुलके आर्य्य सन्तानोंके नामके पहिले मियां शब्द विराजता है। यथा, मियां रामसिंह आदि। अङ्गरेजोंके आनेपर भी वे गोरे और साहिब और हम काले कहलाये। अपने मूसे अपनेको अनेक भारतीय आज भी काला कहते हैं, विशेषत: अङ्गरेजोंके शागिर्दपेशे लोग। जेता जातिके लोग जित जातिवालोंको घृणाकी दृष्टिसे सदैव देखते आये हैं। मिष्टर दादा भाई नौरोजजीको सालिसबरीने काला आदमी कहा था। पार्लियामेण्टके मेम्बर

---

* अगर आं तुर्क शीराजी बदस्त आरद दिले मारा।
बखाले हिन्दुअश बखशम समरकन्दो बोखारारा ॥

† हिन्दू दर महाविरे फारसियां बमानी दुज़्द व राहजन मीआयद—गयासुल्लोग्गात।

होनेकी बधाईकी कविता "मङ्गलाशा"में मैंने भी उन्हें काला कहा है। जैसे,—

कारो निपट न कारो नाम लगत भारतियन।
यद्पि न कारे तज भागि कारो विचारि मन॥
अचरज होत तुमहुँ सन गोरे बाजत कारे।
तासों कारे कारे शब्दहुपर हैं वारे॥
अरु बहुधा कारनके हैं आधारहि कारे।
विष्णु कृष्ण कारे, कारे सेसहु जग धारे॥
कारे काम, राम, जलधर जल बरसन वारे।
कारे लागत ताही सन कारनको प्यारे॥
तासों कारे ह्वै तुम लागत औरहु प्यारे।
यातें नीको है तुम कारे जाहु पुकारे॥
यहै असीस देत तुम कहँ हम सब कारे।
सफल होहिँ मनके सबही संकल्प तुम्हारे॥
वे कारे घन से कारे जसुदाके वारे।
कारे मुनिजनके मनमें नित विहारन हारे॥
मङ्गल करैं सदा भारतको सहित तुम्हारे।
सकल अमङ्गल मेटि रहैं आनँद विस्तारे॥

महाराणाओंका अपने नामके साथ इस शब्दका स्वीकार केवल मुसल्मानोंहीके अर्थ था। जैसे कि बादशाह, यह उनकी बराबरीके सूचित करनेके अर्थ उन्हींके भाषाका शब्द रक्खा गया। "हिन्दू पति बादशाह" वहांपर केवल "यावदार्य्य-कुल-कमल-दिवाकर वा प्रकाशक" का मानो अनुवाद था। फारसी उर्दूमें आर्य्य शब्द शुद्ध शुद्ध लिखा भी नहीं जा सकता। अन्य भाषामें हिन्दू शब्द भी इतना बुरा नहीं जँचता, जितना कि हमारी भाषामें। अस्तु, उसी हिन्द अथवा हिन्दूसे यह हिन्दी शब्द भी उन्हीं लोगोंसे व्यवहृत किया गया था, जिसका अर्थ हिन्दोस्तानका निवासी वा भाषा है। पहिले मुसल्मान जब इस देशमें आये, अपनी भाषाके अन्य शब्दोंके साथ इसे भी अपने साथ लाये। इससे आगे यहां इसका नाम व निशान भी न था। वे इस देशकी भाषामात्रको हिन्दी कहने लगे, चाहे वह पञ्जाबी होती वा गुजराती, भाषा वा व्रजभाषा, अथवा राजपुतानेकी वा मध्यदेशनिवासियोंकी बोली। सारांश, उस समय भी न इसमें देश वा स्थान विशेषकी विशेषता मानी गई थी और अब भी इस नामके साथ कोई उचित विशेषता नहीं लग सकती। क्योंकि भारतके सबी देश और प्रान्तकी हिन्दी भिन्न भिन्न प्रकारकी माननी पड़ेगी। हमारे मध्य देशके भिन्न भिन्न अञ्चलोंमें भी जो अनेक प्रकारकी स्थानिक भाषायें बोली जाती हैं, उन सबीको हिन्दीही कहते और कहनेके अर्थ वाध्य होना पड़ेगा। तब उस भाषाका, जो सबी ठौरके सभ्यसमाजकी भाषा है और जिसमें परस्पर एक प्रांतके नागरिक जन दूसरे देश वा प्रांतके लोगोंसे वार्त्तालाप करते अथवा जिसमें आज पुस्तकें लिखी जातीं और समाचारपत्र छपते, कुछ विशेष नाम अवश्य ही होना उचित है। मैं सदासे उसे नागरी भाषा ही कहता और लिखता आया हूं। वरश्च आनन्दकादम्बिनीके आरम्भहीके अंकमें मैंने "नागरी भाषा वा इस देशकी बोलचाल" शीर्षक एक लेख लिखना आरम्भ किया था। कुछ लोग इसे आर्य्यभाषा भी

कहते हैं। परन्तु वास्तवमें यह नाम भी ठीक नहीं है। मेरी समझमें इसका भारतीय नागरी भाषा नाम होना चाहिये।

कितने कहते हैं कि नागरी तो वर्ण-मालाका नाम है, भाषाका नहीं। किन्तु उन्हें जानना चाहिये कि भाषा और अक्षरका नित्य सम्बन्ध है। संस्कृत वा पारसी, उर्दू वा अँगरेजीमें लिखो, कहनेसे उसी अक्षरका बोध होता है, जिसमें वह भाषा लिखी जाती है। जैसे, उर्दू वा अँगरेजीके अक्षर अपने दूसरे नाम रखते हुए भी इन भाषाओंके साथ इन्हींके अक्षरका अर्थ देते हैं। वैसेही नागरी वर्णमालाका सम्बन्ध नागर वा नागरी भाषाके साथ दोनों प्रकारसे अटल हो। जैसे कि पालीके अक्षर और भाषा दोनोंका एक शब्दसे बोध होता है।

महाशयो! राजधानीसे भी भाषाका घनिष्ट सम्बन्ध होता है। क्योंकि जो राज-भाषा होती, वही प्रायः नागरी वा साधु भाषा भी मानी जाती है। आरम्भमें देव-वाणी नागरी थी और गाथा वैदिक अपभ्रंश प्राकृत ग्राम्यभाषा थी। जब संस्कृत नागरी हुई, तब आर्षप्राकृत सामान्य भाषा मानी जाती थी। जहांतक अयोध्या, प्रतिष्ठानपुर वा दिल्ली राजाधनी रही, तहांतक प्रायः यही क्रम वर्त्तमान था। जनपदकी वृद्धिके साथ साथ आर्षप्राकृतका भी विस्तार और विकास हुआ। मथुराकी राजधानीने शौरसेनीकी, पाटलीपुत्रने मागधी और पालीकी, योंही उज्जयिनीने आवन्तीकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। तौभी इन सबोंके प्रधान अंशोंसे अलङ्कृत हो वह आर्षप्राकृतही महाराष्ट्री नामसे इस महादेशकी प्रधान भाषा, नागरी वा राष्ट्रभाषा बनी अपना अधिकार जमाये थी। जैसे कि उसीका दूसरा रूप हमारी वर्त्तमान भाषा उसके स्थानपर आज अपना आधिपत्य रखती है, जिसका पूर्व रूप वा नाम नागर था। अर्थात् जब प्रान्तीय प्राकृतोंके अपभ्रंश प्रचलित हुए, तब मध्यदेशीय परिष्कृत भाषाका नाम नागर पड़ा, जिससे नागर जातिसे कुछ सम्बन्ध नहीं, वरञ्च नाग-रिक जनोंकी नागरी भाषासे तात्पर्य्य है। प्रान्तिक प्राकृतें तब व्याकरणोंके नियमोंसे नियन्त्रित होकर केवल ग्रन्थोंही में रह गई थीं। पिछले समयके साहित्यकी भाषा हमारी प्राचीन भाषा ही थी, वही नागरी वा राष्ट्रभाषा थी। यदि उस समय भारतकी कोई प्रधान राजधानी होती, वा यहांका कोई चक्रवर्त्ती राजा होता तो उसकी भी बहुत उन्नति होती। हुई भी हो, तो उसका पता नहीं, क्योंकि उस समयका साहित्य दुर्लभ है। जब कि लोगोंके प्राणोंके लाले पड़ रहे थे, साहित्यकी उन्नति और रक्षाकी किसे सूझ रही थी। हमारी भाषाके कुछ कवियों वा उनके ग्रन्थोंके जो नाम भी सुने जाते हैं, तो वे देखनेमें नहीं आते। जैसे कि—वैक्रमाब्द ७७० में हुए पुष्पकविका काव्य, वा ८१२ के चित्तौ-राधीश महाराणा खुमानका रासौ, योंही केदार, कुमारपाल और अनन्य दासादिके

काव्य अति दुर्लभ हैं। निदान महाराज पृथ्वीराजके कवि चन्दबरदाईका रासौ ही हमारी भाषाका अति प्राचीन ग्रन्थ लभ्य होता है, जिसकी भाषाको सम्यक् प्रकारसे समझनेवाले आज बहुत कम लोग मिलेंगे। तौ भी यह हमारा एक अमूल्य रत्न है। वही वैक्रमाब्दकी बारहवीं शताब्दी पर्य्यन्तके साहित्य वा भाषाका भण्डार है। भाषा ही उसका भी नाम था। जो क्रमशः सँवर और सुधरकर मध्यकालीन भाषा वा उस समयकी प्रधान नागरी भाषा थी, जिसका नाम पीछेसे व्रजभाषा भी रक्खा गया और जिसके साहित्यमें एकसे एक चमकीले बहुमूल्य रत्न अद्यावधि हमारे अभिमान और सन्तोषकी सामग्री हैं। आज भी जिसके साहित्यका स्रोत मन्दगतिसे प्रवाहित होता हमारे देशके असंख्य सहृदय साहित्यरस-तृषितोंके परितोषका हेतु है।

आजतक हमारी भाषाका कई बार संस्कार हो चुका है। पहला संस्कार देव-वाणीका हुआ, जिसमें मिले लोकभाषा अथवा मूल प्राकृतके व्यर्थ और भद्दे प्रयोग जो व्यवहारमें आते थे, निकालकर वह परिष्कृत और शुद्ध करके संस्कृत बनाई गई। दूसरा जब कि प्राचीनभाषासे प्रान्तिक प्राकृतोंके भद्दे अंग निकालकर साधु प्रयोग मात्र, योंही संस्कृतके भी केवल कोमल और रोचक शब्दोंहीसे सम्बन्ध रखकर व्रजके मधुर मुहाविरे और मनोहर शैली स्वीकृत हो, साहित्यके लालित्यका हेतु मानी जाकर उस समयकी प्रधान नागरी भाषा बनी। यहांतक केवल स्वदेशी ही शब्दोंकी कांटछांट होती रही। किन्तु विदेशियोंके आनेजाने और राज्याधिकार पानेसे अब हमारी भाषामें विदेशी शब्दोंका भी अधिक समावेश हो चला। मानो हमारी वर्त्तमान भाषाके जन्मके साथ ही इसका भी जन्म हो गया। क्योंकि चन्दके पृथ्वीराजरासोमें भी अनेक विदेशी शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है, जिसकी संख्या भी न्यून नहीं है। निदान ज्यों २ मुसल्मानोंका अधिकार यहां बढ़ता गया, हमारी भाषामें उनके शब्दोंका भी अधिकार बढ़ता गया। चन्द बरदाईने अपने महाकाव्यकी भाषाके सम्बन्धमें लिखा है,—

उक्ति धर्म्मविशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया॥

कुरान शब्द अनुप्रासके गुणके कारण कविने प्रयोग किया है, जिसका तात्पर्य्य अरबी, फ़ारसी आदि मुसल्मानी शब्दोंसे है। सारांश, पीछेसे भाषाके लक्षण और गणनामें पारसी भी रक्खी गई। जैसे,—

संस्कृतं प्राकृतं चैव सूरसेनं च मागधम्।
पारसीकमपभ्रंशम् भाषाया लक्षणानि षट्॥

काव्यनिर्णयमें भिखारीदासने लिखा है,—

व्रज भाखा भाखा रुचिर,
कहैं सुमति सब कोय।
मिलैं संस्कृत पारस्यो
पै अति सुगम जु होय॥

योंही अन्यने भी—

अन्तरवेदी नागरी गौड़ी पारस देस ।
अरु अरबी जामैं मिलै मिश्रित भाषा वेश ॥

निदान, पारसी भाषा भी क्रमश: अपनी सहचरियोंके सहित मानो उपभाषा रूपसे अब स्वीकृत हुई और हमारी भाषाकी मौसेरी बहिन वह पैशाची पुत्री पुन: आकर अपने जन्मस्थान हिन्दोस्तानमें बस गई, जिसका वहिष्कार अब एक प्रकारसे दुस्वार है। आगे लोग साहित्यमें केवल पद्य लिखते थे। गद्य केवल सामान्य व्यवहारमें आता था। कविता वा छन्दोंमें अधिकतर विदेशी शब्दोंका समावेश भी असम्भव है, क्योंकि कवि जब अपनी भाषामें किसी शब्दका अभाव पाता, वा अन्य भाषाका शब्द उसे किसी स्थानपर विशेष उपयुक्त वा अर्थप्रद लखाता, तबी वह उसका प्रयोग करता है, और प्रयोग करके भी उसे अपनासा बना लेता है, कि जो पढ़ने वा सुननेमें कर्कश वा अनोखा नहीं जँचता और न उससे प्राय: उसकी भाषा दूषित ही होती है। किन्तु गद्यलेखक ऐसा न कर प्राय: स्वपरिचित शब्दोंसे विना विचारके काम लेता चला जाता है। अत: उसकी असावधानीसे प्राय: भाषाका रूपही बदल जाता और वह भद्दी और विभिन्न सी हो जाती है। इसी कारण पहिले छन्दोंमें विदेशी शब्द मिलकर भी कुछ हानि न कर सके और भाषाका रूप बिगड़ न सका। किन्तु जबसे गद्य लिखनेकी अधिक चाल निकली, हमारी भाषाके कई रूप और नाम बन गये। जैसे बोलचालकी हिन्दी, लिखनेपढ़नेकी हिन्दी, साहित्यकी हिन्दी, शुद्ध हिन्दी, अशुद्ध हिन्दी, नागरी, उर्दू, हिन्दुस्तानी, खरी बोली, इत्यादि।

महाशयो, भारतमें राज्यविप्लवके साथ साथ भाषामें भी विप्लव आरम्भ हुआ है। जहां केवल एक जातिके लोग रहते थे, दूसरे दूसरे देशके लोग भी आ बसे। राजाकी जातिके होनेसे उनकी प्रधानता भी हुई। यहांवालोंसे उनसे नित्यकी बातचीत और व्यवहारसे भाषामें बड़ा परिवर्त्तन हो चला। अगले दिनोंमें भिन्न भिन्न छोटीछोटी प्रान्तिक राजधानियोंकी प्रान्तिक भाषायें अपने अपने प्रान्तोंमें राज करती रहीं। उन्हें अधिक विस्तृत होनेका अवसर भी न था। परन्तु अब विदेशी राजाका एक साम्राज्य होनेके कारण विदेशके भी भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लोगोंके एकत्र होनेसे एक ऐसी भाषाका विस्तार हो चला कि, जो उनकी राजधानीकी एकस्थानिक भाषा थी और जो नित्य विदेशी शब्दोंके बोझसे दबी जाती थी। विदेशी मुसल्मान और स्वदेशी आर्य्यसन्तान चाहे वे देशके किसी प्रान्तके क्यों न होते, राजधानीकी स्थानिक भाषाहीमें राजदर्बारमें बोलते और उसी भाषामें नित्यके कामकाजके सम्बन्धमें लिखते पढ़ते थे। वे भारतके किसी अन्य प्रान्तमें भी जाते, तौ भी इसी नियमको निभाते थे। यही उस स्थानिक भाषाके राष्ट्रभाषा बन जानेका भी कारण हुआ।

यद्यपि मुसल्मानोंका राज्य यहां दृढ़

हुआ, तौ भी हमारी भाषाको तबतक लाभ छोड़ हानि नहीं पहुंची थी। परन्तु राज-भाषा पारसीके नीचे, हिन्दी नामसे हमारी भाषाहीमें अधिकांश राजकाज होता रहा और किसी प्रकार इसके रंगरूपमें विशेष अन्तर नहीं आया। मुसल्मान लोग आपस-में तो अपनी ही भाषामें बोलते थे और यहां वालोंसे हमारी भाषामें। योंही इस देशके लोग स्वभावतः, आपसमें अपनी निज ही भाषामें बोलते और लिखते पढ़ते थे। किन्तु हमारे भाई अपनी हानिका श्रीगणेश प्रायः स्वयं ही करते आये हैं। अकबरके समय उसके मन्त्री राजा टोडरमलने राजस्वविभा-गका नया प्रबन्ध करनेके साथही साथ इस देशवालोंको फारसी पढ़नेपर बाध्य किया। कदाचित् उनका यह विचार था कि, बिना राजभाषाके सीखे हमारे भाई राज्यके बड़े बड़े पदोंपर नियुक्त न हो सकेंगे। राजभाषामें प्रवीण हो वे अवश्य ही कुछ अच्छे अच्छे पद प्राप्त कर सकें। परन्तु उससे हमारी भाषाकी उन्नतिमें बाधा पड़ी। ज्यों ज्यों फारसी पढ़नेका प्रचार बढ़ा, इधरसे रुचि घट चली। राजभाषा होनेके कारण सब छोटे बड़े फारसी पढ़ चले। केवल ब्राह्मण और धार्म्मिक आर्य्यसन्तान संस्कृत और बन्दीजन काव्यादिका पठन पाठन और काव्यरचना करते रहे। उनके संसर्गसे भद्रसमाजमें औरोंको भी इसका अनु-राग न्यून न था। बहुतेरे साधु महात्मा और वैष्णव, विशेषतः वल्लभ सम्प्रदायके लोग, अपने भजन और विष्णुपद इस भाषामें रचते रहे। पहिले बादशाही दर्बारमें भी इसका बड़ा आदर और सम्मान था। भाषाके कवित्त रचे, पढ़े, सुनाये और गाये जाते थे। अकबर बड़ा उदार, गुणग्राहक, नीतिनिपुण और विद्याप्रेमी था। सबी भाषाके बड़े बड़े विद्वान और कवि उसकी राजसभाको सुशो-भित करते थे। हमारी भाषासे भी उसे बड़ा अनुराग था। इस भाषाके भी अनेक सुकवि सदैव उसके मनोविनोदकी सामग्री थे। उसके प्रधान अधिकारियों, आमात्यों और पार्षदवर्गोंमें भी भाषाके सुकवि वर्त्त-मान थे। जैसे कि राजा बीरबर और अब्दु-र्रहीम खानिखांना आदि। स्वयं भी वह भाषाकी अच्छी कविता करता था। उसकी कुछ भाषाकवितायें आज भी उपलब्ध होती हैं। जैसे कि—

"शाह अकब्बर एक समै,
चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिँ।
आहट सों अबला निरख्यो,
चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिँ॥
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी,
सुभई छबि यों ललना अरु लालहिँ।
चम्पक चारु कमान चढ़ावत,
काम ज्यों हाथ लिये अहिबालहिं॥

अथवा—

शाह अकब्बर बालकी बांह
अचिन्त गही चलि भीतर भौने।
सुन्दरि द्वारहि दृष्टि लगायकै
भागिबेकी भ्रम पावत गौने॥
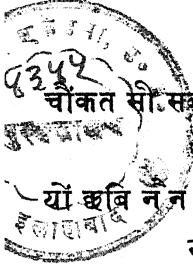
चौंकत सी सब ओर विलोकत

संक सकोच रही मुख मौनै।

यों छबि नैन छबीलेके छाजत

मानो बिछोह परे मृगछौनै॥

यों ही राजा वीरबरके मरनेपर उनके शोकमें उसका बनाया यह सोरठा है,—

"सब कछु दीनन दीन,

एक दुरायो दुसह दुख।

सोउ दै हमहिं प्रवीन,

नहिं राख्यो कछु वीरबर॥"

राजा वीरबर अपनी वर्ष गांठपर सर्व्वस्व दान कर देते थे। युद्धपर जाते समय भी सब कुछ दान कर गये थे।

सारांश, अकबरका शान्त राज्य हमारी भाषाका मानो स्वर्णमय युग था। जितने अच्छे कवि उसके समयमें हुए, फिर न हुए। विद्याप्रेमी राजा होनेसे विद्याका प्रचार और साहित्यकी पुष्टि होती ही है। उसके सुयशको सुनकर सब प्रकारके गुणी दूर दूर देश और प्रान्तोंसे आकर एकत्र हो गये थे। फारसीकी भी उसके समय बहुत उन्नति हुई। फैज़ी और अबुलफ़जल आदि उसके दर्बारमें एकसे एक धुरन्धर विद्वान बड़े सम्मानको पाकर उस भाषामें अनेक बहुमूल्य रत्न भर गये और संस्कृतके भी अमूल्य रत्नों-का पारसीभाषान्तरके रूपमें संग्रह किये। उसके प्रधान राज्याधिकारी और पार्षदोंमें भी उससे न्यून विद्या प्रेमी न थे। राजा वीरबर-होने केशवदासको एक कवित्तपर कई लाख रुपये देने चाहे, पर उसने नहीं लिया। वह कवित्त जो उनकी प्रशंसामें था, यों है,—

"पावक पच्छी पसू नग नाग,

नदी नद लोक रच्यो दस चारी।

केसव देव अदेव रच्यो

नर देव रच्यो रचना न निवारी॥

रचिकै नरनाह बली बरबीर

भयो क्ृतकृत्य महाव्रतधारी।

दै करतापन आपन ताहि

दियो करतार दोऊ करतारी॥

जयपुराधीश महाराज मानसिंहने भी इस दोहेको सुन तीन बार पढ़ाकर ३ लाख रुपये दिये थे।

"बलि बोई कीरतिलता करन करी द्वै पात।
सींचो मान महीपने जब देखी मुरझात॥"

वास्तवमें राजाका सत्कार कविके उत्साह-का हेतु होता ही है। यदि विक्रम वा भोज न होते, कालिदासादिके काव्यमें यह अमृत न टपकता। यदि महमूद ग़ज़नवी प्रत्येक शेरके लिये एक अशर्फी फ़िरदौसीको देने न कहता, तो शाहनामा सा ग्रन्थ न बनता। महाराज जयसिंहसे प्रत्येक दोहेके अर्थ एक एक सहस्र मुद्रा पानेकी आशा न होती, तो बिहारीके इतने दोहोंमें यह स्वा-रस्य सर्वथा दुर्लभ होता। यदि एक कवित्त-को चौसठ बार सुनकर शिवाजी भूषणको ६४ हाथीपर ६४ तोड़े रुपयेके धरकर न देता, तो भूषणकी कवितामें यह ओज कब आता? वह कवित्त यह है—

"चारौ दिसा दलके बल जीतिकै
पच्छिम चंगुल दाबिकै नाखे।
रूप गुमान हरयो गुजरातको,
सूरतको रस तूरिकै चाखे॥
पंजन दाबि मलेच्छ मले,
भजि वेई भजे जो अधीन ह्वै भाखे।
सौरंग है शिवराज बली
जिन नौरँग मैं रंग एक न राखे॥

यही सम्बन्ध पृथ्वीराज और चन्द बरदाई, इन्द्रजीत और केशव, तथा नव्वाब खानिखानां और पण्डितराज जगन्नाथादिका भी समझना चाहिये। लोग ऊपरके दोनोंको सुनकर आश्चर्य्य करेंगे, किन्तु अभी कलकी बात है कि, यशवन्त यशोभूषण ग्रन्थके लिये महाराज जोधपुरने कविराज मुरारिदानको एक लाख रुपये दिये हैं। तौभी यही कहना होगा कि आज हमारी भाषाका गुणग्राहक राजा कोई नहीं है, क्योंकि किसी राजाके यहां कोई सुकवि वा सुलेखक सुनाई नहीं देता। अङ्गरेजी गवर्नमेण्टकी तनिकसी कृपाके परिणामसे हमारी भाषामें बहुतेरे ग्रन्थ बने हैं। चाहे उनमेंसे अधिकांश बहु-मूल्य न भी हों और चाहे वे उसके प्रधान कर्म्मचारियोंके दुराग्रहयुक्त आदेशके अनुसार होनेसे हमें वास्तविक फलप्रद न होनेसे अच्छे न जँचे। हैदराबाद और रामपुरके राज्यों द्वारा उर्दू भाषाकी बहुत अधिक वृद्धि हुई और अनेक अच्छे ग्रन्थ बन गये हैं। यद्यपि अब समयने पलटा खाया है; दूसरे दूसरे प्रकारसे कुछ नरपतियोंमें हमारी भाषाके प्रचारकी अभिरुचि हुई है—श्रीमन्महाराज सयाजी राव गायकवाड़ जिनके शिरोमणि हैं—तौ भी प्राचीन रीतिके अनुसार अच्छे सुलेखक और सुकवियोंके अर्थ इस देशमें कोई आश्रय नहीं है। पत्र और पुस्तकें बेंचकर लाभ उठानेवाली व्यापारिक प्रणाली उच्च हृदयके लोगोंमें प्रायः अनहोनी है कि जिन्हें आप अपनी ही सुध नहीं रहती और जो किसी दूसरे ही ध्यानमें चूर रहते हैं।

अस्तु, अकबरसे लेकर शाहजहांके राजत्व कालतक यही दशा वर्त्तमान थी। देशमें शान्ति थी, राजा प्रजामें ईर्षा द्वेषका भाव भी घट चला था। हमारे साहित्यकी गति भी पूर्ववत् थी। शाहजहां भी अकबरका प्रतिरूप था। वह भी भाषा-कविता करता था। यथा औरङ्गजेबके अत्याचारोंसे दुखी होकर उसने यह कवित्त बनाया था;—

"जन्मतही लख दान दियो
अरु नाम धरयो नवरङ्ग विहारी।
बालहिं सों प्रतिपाल कियो
अरु देस मुलुक्क दियो दल भारी॥
सो सुत बैर बुझै मनमैं
धरि हाथ दियो बँध सारि मैं डारी।
शाहजहां बिनवै हरिसों
बलि राजिवनैन रजाय तिहारी॥

यद्यपि साहित्यकी भाषामें अनेक सुकवियोंके द्वारा एक प्रकार उन्नति ही होती रही, तौभी बोलचालकी भाषामें बहुत भेद पड़ गया था। क्योंकि प्रथम तो

अनेक प्रदेश और प्रान्तोंके मनुष्योंके एकत्रित होनेसे मूल भाषाके मुहाविरे बदल चले, और न केवल विदेशी शब्दोंहीकी भरमार होने लगी, वरञ्च विदेशी भावोंका भी सन्निवेश हो चला था। ऐसा क्यों न होता, जब कि सभ्यसमाजमें एक नवीन भाषाका अधिकतासे प्रचार हो गया। द्वारद्वारपर मौलवी लोग बैठ गये। पण्डित और गुरुजीकी गद्दी उनके दखलमें आ गई। विद्यारम्भ मुहूर्त्तके समय श्रीगणेशको जगह बिस्मिल्लाहुररहमानुर्रहीमका घोष होने लग चला। सभ्यताका रंग बदला। कहा गया है कि, "यथा राजा तथा प्रजा" और "राजा हि युगमुच्यते।" अब लोगोंको ईरानी चालढाल भा चली। क्या पोशाक लिबास और क्या अदब व कवायद, सबमें नया रंग ढंग। गुफ़गूमें भी नई तराश व खराश आई। ऐन, गैन, शीन, काफ़ और जे, ज्वादका स्वाद जबान चख चली और कान इनके आशना हुए। गांव गिरांवके सब कार्य्य सदासे कायस्थोंके हाथ थे। क्या राजा और क्या जमींदार सबके दफ़रका काम यही करते थे। सामान्य लिपिका नाम ही कैथी था, जैसे कि देवनागरी बभनी कहलाती थी। जिस भाँति ब्राह्मणोंसे संस्कृतका सम्बन्ध था, कायस्थोंसे वैसेही देशी भाषाका, जो मौलवियोंके पूरे चेले बन गये थे। अब वे संस्कृतको शंसकीरत, ब्राह्मणोंको बरहमन, समुद्रको समन्दर और सूर्य्यनारायणको सूरजनारायन कहने लग पड़े थे। इनके गुरू यदि गुरबख्श थे, तो चेले चीनीपरशाद हो गये, जिनकी मीठी बातें सुन लोग ऐसे मोहित हुए कि, हुजूर और गरीबनवाजको छोड़ श्रीमान् और महाराज शब्द सुनना भी गवारा न करते। सबी भद्र समाजमें इन्हीं गुरू चेलोंका राज सा हो गया, जिस कारण नित्यके व्यवहारकी भाषा बिलकुल ही बिगड़ गई। अधिकांश शिक्षितोंके खत किताबतमें भी फारसीका प्रचार हुआ। गुप्त बातें लोग फारसीहीमें करते। जैसे आजकल अङ्गरेजीका विस्तार हो रहा है। चार शिक्षितों, विशेषत: विद्यार्थियोंको, अपनी भाषामें भी बोलते समय जैसे सामान्य स्वदेशियोंको उनका आशय समझना कठिन होता है। कुछ कुछ ऐसी ही दशा तब उपस्थित हो चली थी, जिसे हमारी भाषाका नवीन कायापलट कहना भी अन्यथा नहीं है। क्योंकि संस्कृत प्राकृतऔर फारसीको छोड़कर भी तब कई प्रकारकी भाषाएं प्रचलित हो गई थीं। अर्थात् एक बोलचालकी सामान्य भाषा, जो दिल्ली और आगरेकी सम्मिलित अनेक अन्य देशी शब्दों और मुहाविरोंसे मिश्रित थी। जिसकी अब प्रधानता होने लगी थी और जो सभ्य वा नागरी भाषा बन राष्ट्रभाषा बनती हुई, अपनी माता पुरानी प्रधान भाषाका नाम व्रज भाषा देकर उससे पृथक हो चली थी, जिसके दो भेद थे। एक पारसी शिक्षितोंकी भाषा, जिसका नाम रेखता था और जिसमें विदेशी शब्द अधिक होते थे। दूसरी जिसे

विदेशी लोग हिन्दी कहते थे और जिसमें विदेशी शब्द न्यून होते, केवल मुहाविरात ही गये थे। योंही साहित्यकी तीन भाषाएं थीं, अर्थात् एक तो वह मुख्य भाषा जिसे अब लोग व्रजभाषा पुकारने लगे थे, जो अपने उसी पुराने रंग, रूप और अक्षरोंमें आजतक चली आती है। दूसरी जो नवीन प्रचलित मिश्रित भाषाकी शैलीमें विदेशी भावों और छन्दोंमें थोड़ी बहुत कविता बन चली थी और जो नागरी अक्षरोंमें भी लिखी जाती थी। तीसरी जो कुछ विशेष विदेशी शब्दोंके मेलसे फारसी ही अक्षरोंमें लिखी जाती थी, जिसे मुसल्मानोंकी हिन्दी बोलचालकी भाषा कहनी चाहिये कि, जिसका नाम आज उर्दू कविता वा शायरी है। ये पांचों क्रम अद्यावधि कुछ थोड़े बहुत परिवर्त्तनके सहित प्रचलित हैं।

पारसी अक्षरोंमें तबतक प्रायः गद्य और पद्य भी पारसी भाषाहीमें लिखे जाते थे। तौभी कुछ कुछ अंशमें उर्दूमें भी कविता हो चली थी। किन्तु उर्दूमें गद्यका व्यवहार तो नहींके तुल्य था। उभय प्रकारके अक्षरों और भाषाओंमें गद्य लिखनेकी चाल अङ्गरेजी राज्य और यन्त्रालयोंके प्रचारके संग ही प्रचलित हुई, जिसकी अब निरन्तर वृद्धि हो रही है। सुतरां पूर्वोक्त दोनों भिन्न भिन्न अक्षरोंमें लिखी जानेवाली उभय प्रकारकी भाषाओंके दो दो रूप हो गये। जैसे हमारी भाषाका मिश्रित रूप कि जिसमें अरबी, फारसी वा तुर्की और अब अङ्गरेजीके भी शब्द अधिकतासे काममें लाये जाते और जो हिन्दी कहलाती है, जिसे उर्दूकी छोटी बहन कहना चाहिये। दूसरी वह कि जिसमें यथाशक्ति देशी शब्दोंसे काम लिया जाता और उन शब्दोंको छोड़ कि जो हमारी भाषाहीके रंगमें रंग चुके हैं, अपरिचित और बेडौल विदेशी शब्दोंका सन्निवेश नहीं किया जाता, जिसे साधु वा नागरी भाषा कहते हैं। उसीको इसका अन्तिम संस्कार वा सुधार कहना चाहिये।

हम ऊपर कह आये हैं कि, हमारी भाषाके प्रधान तीन रूप हैं। उसमें प्रथम प्राचीन रूप कि जो विक्रमीय १२वीं शताब्दीतक प्रचलित था, उसके न जानें कितने कवि हुए होंगे कि जिनकी कविता वा जिनके नामका भी पता अब नहीं है। तौभी उसके प्रधान कवि चन्द बरदाईका बनाया महाकाव्य पृथ्वीराजरासो आज हमें उपलब्ध होता है। उसकी कविताका रूप और गुणका आख्यान यद्यपि संक्षेपमें भी नहीं हो सकता और यद्यपि उसके प्रबन्धके आनन्दका अनुभव भी अब हम यथार्थ रीतिसे नहीं कर सकते, तौभी कह सकते हैं कि वह हमारे सब कवियोंका राजा वा गुरू है। क्योंकि पिछले कवियोंने अनेक अंशोंमें न केवल उसका अनुकरण ही किया है, वरञ्च कुछने तो प्रत्यक्ष चोरी भी की है। उसमें महाकविके सबी गुण वर्त्तमान थे। वह न केवल संस्कृत वा प्राकृतोंका अच्छा पण्डित ही था, वरञ्च अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता और प्रायः

पुराने साहित्यसे पूर्ण परिचित था। वह जिस विषय वा रसका वर्णन करता है, उसमें अपनी योग्यताका पूर्ण परिचय दे देता है। क्या प्राचीन इतिहास और क्या धर्म्म, क्या नीति और क्या ज्योतिष, क्या वेदान्त और क्या योग, सबीको यथावसर उसने उचित स्थान दिया है एवं काव्यका कोई अंश अछूता नहीं छोड़ा। शब्दोंकी सजावट और अर्थकी गम्भीरताके सहित सुहाती उपमा और उत्प्रेक्षाओंको अपनी कई शैलीकी भाषा और विविध छन्दोंमें दिखलाता वह सहृदयोंके मनको सहज ही लुभाता है। उसकी रचनाके सम्बन्धमें जिन अंशोंसे हमें विरोध है, यहां उसके आख्यानकी कुछ आवश्यकता भी नहीं है। यद्यपि स्थानका संकोच है, तौभी हम यहां उसकी कविताके कुछ उदाहरण देते हैं। यथा,—

दशावतारका नामस्मरण।

चौपाई। मछ्छ कछ्छ वाराह प्रनम्मिय।
नारसिंघ वामन फरसम्मिय।
सुअ दसरथ्थ हलद्दर नम्मिय।
बुद्ध कलंक नमो दह नम्मिय॥

अनङ्गपालको पृथ्वीराजका उत्तर कि दिल्ली हम नहीं फेरेंगे,—

"जलद बूंद परि धरनि,
कबहुँ जावै न नभ्भ फिर।
पवन तुट्टि तरु पत्र,
तरुन कग्गै सु आइ थिर॥
तुटि तारक आकास,
बहुरि आकास न जाअै।
सिंघ उलंघि सबजह,
सोइ फुनि हनि नह घाअै॥
अप्पिअ सु पहमि तुम उदक सह,
सो पाअो दूजे जनम।
तप्पौ सु जाइ बद्री तपह,
मत विचार राजस मनम॥"

यही मानो उसकी सामान्य भाषा है। अब सरल भाषा भी देखिये —

जैसे दिल्लीके सम्बन्धमें—

दूहा।

अनङ्गपाल तूंअर तहां, दिल्ली बसाई आनि।
राज प्रजा नर नारि सब, बसे सकल मन मानि॥

पृथ्वीराजकी बाल्यावस्था—

रजरंजित अञ्जित नयन, घूंठन डोलत भूमि।
लेत बलैया मात लषि, भरि कपोल मुष चूमि॥

उसकी यौवनशोभामेंसे।

पाव विराजत सीसपर,
जरकस जोति निहाय।
मनों मेरुके सिषरपर,
रह्यो अहप्पति आय॥
श्रवन विराजत स्वातिसुत,
करत न बनै बखान।
(मनु) कमलपत्र अग्रज रहै,
ओस उडग्गन आन॥
कंठ माल मोतीनकी,
सोभत सोभ विसाल।
मेरु सिषर पारस फिरत,
जानि नछित्रन माल॥
मिस भीने सु मयंक मुख,
निपट विराजत नूर।

मनो वीर उर कामकी,
उगी आनि अंकूर ॥
शब्द चित्र यथा कृष्णचरित्रमें ।
मधुरिपु मधुरित मधुर मुख,
मधु संमत मधु गोप ।
मधुरित मधुपुर महिल सुष,
मधुरित नयन स ओप ॥

युद्ध वर्णन—

गाथा—

बज्जे रन रंनतूरं, गज्जे गहर सूर षल चूरं ।
मंडे निजर करूरं, छंडे मरन मोह सासूरं ॥

चौहान वीरोंका युद्ध—

भुजंगी—

बढ़े बान चहुआन चालुक्क षेतं ।
महा मन्त्र विद्यागुरं सुक्र जेतं ॥
घने घोर नीसान गज्जे गहारं ।
उठे जानि प्रासाद वर्षा प्रहारं ॥
बजी भेरि भंकार नफ्फेरि नादं ।
छुटी बान जंत्री उड़ी गैन भागी ।
महादेव वीरं चरं निद्र भागी ॥
तड़क्कन्त विज्जू करव्वाल सादं ॥
सहब्बाइ सिंधू सुरं हर्ष वीरं ।
नचें ताल संभाल वेताल श्रीरं ॥
नचैं नृत्य नीसान नारद्द धाई ।
चढ़ी व्योम विम्मान अपछरि सुहाई ॥
जके जष्ष गंधर्वकी दिग्गहारी ।
प्रलै कालयं षवाल ष्यालं विचारी ॥
दुवं दिग्गपालं दुवं छत्रधारी ।
दुवं ढाल ढिंचाल मल्लं करारी ॥

हिन्दू मुसल्मानोंके युद्धसे—

त्रोटक—सारंग चच्यौ कविचंद भनं ।
रन मंकिय वीर नफेरि घनं ॥
छनन कहि घंटन घंटनकौ ।
तनन कहि भेरि भयंटनकौ ॥
घनन कहि घुघ्घर पष्ष रनं ।
ठनन कहि आइ प्रसह्र घनं ॥
बर चिक्किय चक्कि मिले पलटे ।
दिवि घुघ्घुर रेनिय अस्स घटे ॥
तमके तम तेज पहार उठे ।
बहुरे किधु पावस अभ्भ बुठे ॥
कविचंद सुअंसुय साव धरे ।
तय नेत्त जु गंग समीर षरे ॥
दोउ दीन अनंदिय तेग छुटी ।
सु बनै चहुआनय सार टटी ॥

उसके दूसरे रूप व्रजभाषासे तो आज हम सभी परिचित हैं, जिसका समय वैक्रमाब्दकी १६वीं शताब्दी मानना चाहिये । उसके सत्कवियोंकी संख्या बतलानी तो कठिन है। तौ भी कुछ प्रसिद्ध कवियोंके नाम दिये देते हैं। उनमें प्रधान आर्य्य जातीय सुकवियोंकी कई श्रेणी हैं। जैसे—कबीर, कमाल, विद्यापति, नान्हक, दादू, नाभा आदि, जिनकी भाषाएं कुछ पुरानी, मनमानी और प्रान्तविशेषकी बोलियोंसे मिश्रित हैं। दूसरे समूहमें मीराबाई, सूरदासादि अष्टसखा, नागरीदास, हितहरिवंश, तानसेन आदि हैं जो अधिकांश प्रायः भजन और राग रागिनियोंके प्रणेता हैं। तीसरेमें केशव, नरहरि, तुलसी, देव, भूषण,

मतिराम, बिहारी, भिखारीदास, आनन्दघन, पद्माकर, कविन्द, पजनेस आदि हैं, जो पुष्ट व्रजभाषा और मिश्रित भाषाके कवि हैं। चौथेमें देवस्वामी, बेनी, प्रवीन, ठाकुर, सेवक, महाराज रघुराज सिंह, द्विजदेव, हरिश्चन्द्र आदि हैं कि, जो पिछले दिनोंके पुरानी और कुछ कुछ नवीन श्रेणीके भी कवि हैं।

योंही मुसल्मान कवियोंमें जायसी, मुबारक, रहीम, नबी, रसखान, आलम और नेवाज; योंही नजीर, निजामी, मौज ये सब भाषा वा व्रजभाषा तथा उर्दूके कवि हैं। टकसाली व्रजभाषाके कवि सूरदास, नन्ददास, हितहरिवंश, वा देव, रहीम, रसखान, दास, आनन्दघन और बिहारी आदिहीकी कही जाती है, जिनमें बिहारी और देव आदर्श रूप है। यद्यपि इसके उदाहरणकी आवश्यकता नहीं, तौभी कुछ देना ही उचित है। जैसे, श्री सूरदास जी—

कुँवर जल भरि भरि लोचन लेत।
मानहुं स्रवत सुधानिधि मोती,
उरगन अवलि समेत॥

अथवा—

गज निरख्यो फहरानि बसन की।
लग्यो ललकि मुख कमल निहारन
भूलि गई सुधि ग्राह ग्रसनकी॥

महाकवि देव—

देस विदेसके देखे नरेसन,
रीझकी कोउ न बूझ करेगो।
तासों तिन्हैं तजि जानि गिह्यो गुन,
सो गुन सौगुनो गांठि परेगो॥
बांसुरीवारो बड़ो रिझवार है,
देव जो नेक सुढार ढरेगो।
सांवरो छैल वही तो अहीरको
पीर हमारे हियेकी हरेगो॥
नाहिने नन्दको मन्दिर ह्यां,
वृखभानको भौन कहां जकती हौ।
हौ हीं अकेली तुहीं कवि देवजू,
घूँघटतें केहिको तकती हौ॥
भेंटती भोरी भटू केहि कारन,
कौनकी धौं छविसों छकती हौ।
काह भयो है? कहा कही? कैसी हो?
कान्ह कहां है? कहा बकती हौ?

नेवाज—

सुनती हौ कहा भजि जाहु घरै,
बिधि जाहुगी मैनके बाननमें।
यह बंसी नेवाज भरी बिख सों,
बिख सो बगरावति प्राननमें॥
अबहीं सुधि भूलिहो भोरी भटू!
भभरौ जनि मीठी सी ताननमें।
कुलकानि जो आपनी राखी चहौ,
दै रहौ अँगुरी दोउ काननमें॥

रसखान—

जो मुसल्मानसे परमवैष्णव हुआ। जिसके विषयमें कहा गया है, कि—"इमि मुसल्मान हरिजननपै कोटिन हिन्दुन वारिये।"

मानुख हौं तो वही रसखान,
बसौं मिलि गोकुल गांवके ग्वारन।

जौ पसु हौं तो कहा बस मेरो,
चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन ॥
पाहन हौ तौ वही गिरिको,
जो कियो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तौ बसेरो करौं
वा कलिन्दिजाकूलकदम्बकी डारन ॥

महाकवि बिहारी लाल—

रह्यो चकित चहुंधा चितै चित मेरो मति भूल।
सूर उदै आये रही दृगन सांझ सी फूल ॥
हम हारीं कै कै हहा पायन पार्‍यो प्योरु।
लेहु कहा अजहूँ किये तेह तरेरे त्योरु ॥
बिछुरे जिये सकोच गुनि मुखसौं कढ़े न बैन।
दोउ दौरि गरैं लगी किये निचौं हैं नैन ॥
मैं तपाय त्रय ताप सों राख्यो हियो हमाम।
मत कबहूँ आवैं इहां पुलकि पसीजे स्याम ॥
हाहा बदन उघारि दृग सफल करैं सब कोय।
रोज सरोजनिके परै हँसी ससीकी होय।

रहीम—

रहिमन राज सराहिये जो बिधुके बिधि होय।
कहा निगोड़ो तरनि यह उबत तरैयन खोय ॥
धूरि उड़ावत सीसपै कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज रिषिपतनी तरी तिहि ढूँढ़त गजराज ॥
जो गरीब सों हित करैं धनि रहीम वे लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥

अब बतलाइये कि, यह लालित्य और माधुरी दूसरी किस भाषामें लभ्य है? उर्दू विचारोंको तो इसका स्वप्न भी असम्भव है।

ब्रजभाषामें बहुतेरे इसी श्रेणीके कवि हुए हैं, जिनकी कविताके उदाहरण अथवा उनकी समालोचना करनेको यहां स्थान नहीं है। इसीसे केवल इतनाही कहना यथेष्ट है कि, यदि देववाणी वा संस्कृतको आर्षभाषाके स्थानपर हमारी भाषामें चन्द-की कविता है, तो सूर व्यास और तुलसी बाल्मीकि हैं। यदि केशव श्री हर्ष, तो बिहारी कालिदास हैं; योंही यदि माघको कविताका स्वाद देनेवाला देव है, तो भारवि भिखारी दास हैं। यदि रहीमको पण्डित राज जगन्नाथ कहें, तो आनन्द घनको गोव-र्द्धनाचार्य्य और हरिवंशको जयदेव कह सकते हैं। यह केवल आंशिक उपमाएं हैं नहीं तो जितनी संस्कृतसे हमारी भाष छोटी है, उतने ही उसके कवियोंसे हमार कवि भी छोटे समझिये। कुछ लोग सूरको तुलसीसे छोटा कवि कहते हैं, जिसे हम स्वीकार नहीं कर सकते। सागरकी थाह सहज ही कैसे लग सकती है? उसमेंसे रत निकालना कठिन कार्य्य है। तुलसीदास जीकी कविता सब लोग जानते हैं, क्योंकि उसका प्रचार बहुत है। सूर सागर अभी पूरा छप भी न सका, केवल एक वा दो ही पूरे ग्रन्थ भारतमें उपलब्ध होते हैं। क्या यह हमारी अर्थलज्जाका विषय नहीं है फिर उसपर कैसे समालोचना की जा सकती है। तौ भी आगेके लोग साफ कह गये हैं कि—"सूर सूर तुलसी ससी उडगन केसवदास।"

योंही—"जो कुछ रहा सो अन्हरैं भाखा,
कठवी कहेसि अनूठी।

बचा रहा सो जोलहा कहिगा,
अब जो कहै सो झूठो ॥"

किन्तु वास्तवमें ये दोनों तुल्यही मान्य हैं। इसमें छोटे बड़ेका विचार करना ही व्यर्थ है। ब्रजभाषाके पिछले कवियोंमें गिरिधरदास (भारतेन्दुके पिता) और द्विजदेव (अयोध्या नरेश महाराज मानसिंह) और सेवक बहुत अच्छे कवि हुए।

शुद्ध ब्रजभाषामें कविता करना कुछ सहज नहीं है। उसमें बड़ी प्रवीणताकी आवश्यकता पड़ती है। उसके समझनेमें भी सामान्य जनोंको कुछ कठिनता पड़ती है। उसीसे सरल कवितामें सुकवि जन भी मिश्रित भाषाको काममें लाते थे। अत: उसी ब्रजभाषाका एक उपभेद मिश्रित भाषा भी है, जिसमें दूसरी दूसरी भाषाओंका भी मेल रहता, जैसे उर्दू, फारसी अथवा प्रान्तिक बोलियोंका। इस प्रकारकी कविता करनेवालोंमेंसे प्रधान कवि जायसी, तुलसीदास और रहीम हैं। जैसे पद्मावतमें—

जायसी—

चौ०—सावन बरसु मेंह अति पानी।
भरनि परी हौं बिरह झुरानी ॥
लागु पुनरबसु पीउ न देखा।
भइ बाउरि सुनि कन्त सरेखा ॥
रकतकी आंसु परै भुंइ टूटी।
रेंगि चलै जनु बीरबहूटी ॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला।
हरिअरि भुम्मि कुसुंभी चोला ॥
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा।
बिरह झुलाइ देइ झकझोरा ॥
बाट असूझ अथाह गंभीरी।
जिउ बाउर भा फिरै भंभीरी ॥
जग जल बूड़ जहां लगि ताकी।
मोरि नाउ खेवक बिनु थाकी ॥

दो०—परबत समुद अगम बन
बीहड़ घन अरु ढांख।
किमि करि भेटौं कंत तुम
ना मोहिं पाँव न पाँख ॥

गोस्वामी तुलसीदास—

चौ०—जननिहिं बिकल बिलोकि भवानी।
बोली युत बिबेक मृदु बानी ॥
अस बिचारि सोचहु जनि माता।
सो न टरै जो रचै बिधाता ॥
करम लिखा जो बाउर नाहू।
तौ कत दोष लगाइय काहू ॥
तुमसन मिटहिं कि बिधिके अङ्का।
मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥

छं०—

जनि लेहु मातु कलंक करुना
परिहरहु अवसर नहीं।
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे
जाब जहं पाउब तहीं ॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल
सकल अबला सोचहीं।
बहु भांति बिधिहि लगाइ दूषन
नयन बारि बिमोचहीं ॥

अबदुर्रहीम खानिखानां—

बरवै—का बढ़ि भयउ सेमरवा फूलेहु फूल।
जौ पै स्याम भंवरवा नहिं अनुकूल॥

वा—

टूटि टाट घर टपकत खटियौ टूटि।
पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लूटि॥

हमारी भाषाका तीसरा रूप, जिसे उसकी युवावस्था कहेंगे, यही वर्त्तमान रूप है, जिसके चार वा पांच भेद हम ऊपर कह आये हैं और जिसका आरम्भसमय ईस्वीकी उन्नीसवीं शताब्दी बतलाया जाता है। किन्तु हम जब विचार करते हैं, तो यद्यपि इसके गद्यका ग्रन्थ इससे पूर्वका नहीं पाते, तौभी जो पुराने पद्योंमें इस भाषाका रूप हमें मिलता है, वह इस बातका साक्षी है कि, यह भाषा उस समयसे बहुत पूर्व प्रचलित हो चुकी थी। क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो उनके काव्योंमें इसकी झलक न आती। योंही जिसका सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण तो उर्दू भाषा ही है। क्योंकि विदेशी शब्दोंके बाहुल्यको छोड़ हमारी वर्त्तमान भाषासे उसमें और तो कुछ भेद हुई नहीं है।

उदाहरण, जैसे कबीर—

मनका फिरत दिन गया गया न मनका फेर।
करका मनका छोड़कर मनका मनका फेर॥
चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटनके बीचमें साबित गया न कोय॥
आये एकै देससे उतरे एकै घाट।
अपनी अपनी चालसे हो गये बारह बाट॥
मूरखको सिखलावते ज्ञान गाठका जाय।
कोइला होत न ऊजला सौ मन साबुन लाय॥

अथवा—

पंडित ज्ञानी क्यों न पिओ छान पानी।
उसी सूतका बना जनेऊ उसी सूतकी धोती।
उसी सूतका बना दुपट्टा पगियहि
छूत लगानी॥

अब इससे दो बातोंका पता चलता है। एक तो यह कि, हमारी वर्त्तमान भाषा लल्लूजी लालके समयसे कई सौ वर्ष पूर्वसे प्रचलित थी। दूसरे यह कि, उस भाषामें उसी समयसे कुछ कुछ कविता भी होती थी। आज कालके लोगोंके इस कथनमें कुछ भी सार नहीं है, जो खरी बोलीको खड़ी बोली लिखते और कहते हैं कि यह इजादिबन्दा है, वा स्वर्गीय बाबू अयोध्याप्रसादकी उत्तेजनासे इसका आरम्भ वा अधिक प्रचार हुआ है। हम अनेक प्राचीन कवियोंकी इस चालकी बहुतेरी कविताएं दिखला सकते हैं कि, जिसकी भाषा वर्त्तमान नागरी अथवा उसीसे मिलती जुलती है। किसी किसीमें पारसीके शब्द भी मिले हैं और किसीमें नहीं। किसीमें कुछ व्रजभाषाका पुट पड़ गया है, तो किसीमें कुछ संस्कृतके भी छींटे आ गये हैं। यह दोनों प्रकारके मेल कवितामें ग्राह्य हैं। परन्तु आजकलके, खरी हिन्दीके—जिसे नागरी ही कहना उचित है—कवि इसपर राजी न होंगे। क्योंकि वे चाहते कि ठीक ठीक जैसा हम बोलते हैं, उसी रीति भाँतिसे कविता भी करें, जिस

कारण उन्हें बड़ी कठिनताका सामना करना पड़ता और कविताके सहज स्वारस्यसे उनकी रचना भी प्राय: शून्य रहती है। सबी भाषाओंमें बोलचाल और कविताकी भाषामें भेद रहता है, परन्तु खेद है कि, हमारे वर्त्तमान नागरीके कवि इस भेदको मिटाना चाहते हैं। अब इसके कुछ सुविज्ञ कवि खड़ी बोली वा हिन्दी नामको नापसन्द करके अपनी कविताकी भाषाको बोलचालकी भाषा कहने लगे हैं; किन्तु वे बोलचालकी भाषामें कविता कर नहीं सकते हैं। कवितामें बोलचालकी भाषाका आना तो बहुत बड़ा गुण है, पर उनकी कविताएं या तो संस्कृत सी पढ़ी जातीं, या उर्दू सी सुनी जाती हैं, जिसका प्रधान कारण यह है कि, वे अधिकांश या तो संस्कृतके छन्द या उर्दू पारसीके छन्दोंमें ही अपनी कविता करते हैं। क्या हमारी भाषाके इतने छन्दोंमेंसे कोई भी उनके कामका नहीं है? अथवा इनसे उन्हें द्रोह है? उनकी कविताओं अथवा गद्यके लेखोंमें चाहे संस्कृत, उर्दू, फारसी वा अङ्गरेजीका कुछ अंश भले ही आ जाय, परन्तु व्रजभाषाका कोई शब्द, पद वा मुहाविरा कदापि नहीं आने पाता। हम नहीं जानते कि, इससे लोगोंको क्यों इतनी चिढ़ है। यदि उन्हें इससे चिढ़ न होती, तो निस्सन्देह उनकी और प्राचीनोंकी इस शैलीकी कवितामें कुछ भी भेद न होता। सब भाषाओंके कवियोंका यह नियम है कि, वे पुराने कवियोंका अनुकरण करते हुए आगे बढ़ते हैं। परन्तु शोक! इन्होंने उनका सर्वथा बहिष्कार कर दिया और यही कारण है कि, ये उनकी सम्पादित स्वतन्त्रताओं और सुभीतेसे वञ्चित रहे, जिनकी एक एक मात्रा और अक्षरोंमें तीन तीन चार चार शब्दोंका काम सहजमें निकल आता और रचनामें बड़ी सरलता और सरसता आती है। जैसे, देखि और देखन आदि।

आगेके लोग इस बोलचालकी भाषाको विशुद्ध वा साधु भाषा अथवा प्रशस्त पद्य रचनाके योग्य नहीं मानते थे, इसीसे जब कुछ लोग निम्नश्रेणी अथवा छोटे दरजेकी कविता करते थे, तो इसी भाषाको काममें लाते थे। विशेषकर जब वे उसे सामान्य जनोंके हेतु बनाते, अथवा सरसताको छोड़ते और सरलतासे सम्बन्ध जोड़ते थे। यही कारण है कि, प्राय: क्या प्राचीन और क्या मध्य कालीन एवं कुछ नवीन समयके भी निम्नकोटिके पद्य इस भाषामें बने पाये जाते हैं। जैसे चूरनवालोंकी बानी, बिरहे और पचड़ोंके बहुतेरे बन्द, स्वांग वा भगतके पद्य और ख्याल, चौबोले, सैर आदिक। यथा—

राम राम कहना अच्छा ही काम है।
बेमिहनतका दाना खाना हराम है॥

अथवा—

सदा भवानी दाहिने सनमुख रहैं गनेस।
पांच देव रच्छा करैं ब्रह्मा विष्णु महेस॥
राम नामकी लूट है लूट सकै तो लूट।
अन्त काल पछतायगा जब तन जैहै छूट॥

नागरी दास—

प्रेम उसीको झलक है ज्यों सूरजकी धूप ।
जहां प्रेम तहां आप है कादिर नादिर रूप ॥
इश्क चमन महबूबका वहां न जाये कोय ।
जाये सो जीये नहीं जिये तो बौरा होय ॥

कबीर—

द्वार धनीके पड़ रहे धका धनीका खाय ।
एक दिन धनी नेवाजही जौ दर छोड़ि न जाय ॥
कहते हैं करते नहीं वे भी बड़े लबार ।
अन्त फजीहत होयँगे साहिबके दरबार ॥

गीत, जैसे कबीर—

कंकड़ चुनचुन महल उठाया
लोग कहैं घर मेरा है ।
ना घर मेरा ना घर तेरा
चिड़िया रैन बसेरा है ॥
जगमें राम भजा सो जीता ।
कब सेवरी कासीको धाई
कब पढ़ि आई गीता ।
जूठे फल सेवरीके खाये
तनिक लाज नहिं कीता ॥

सूरदास—

अँखियाँ हरि दरसनकी प्यासी ।
बिन देखे वह सुरति साँवरी मनमें
रहत उदासी ॥

तुलसीदास—

जय जय भागीरथ नन्दिनि
मुनि चय चकोर चंदिनि ।
सुर नाग विबुध बन्दिनि
जय जह्नु बालिका ॥ वा—

जय जय जग जननि देवि
सुर नर मुनि असुर सेवि ।
भक्ति मुक्ति दायिनि भय हरनि कालिका ॥

बाबू हरिश्चन्द्र—

सांझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं
कुछ तेरा है ॥ वा—
डंका कूचका बज रहा
मुसाफिर चेतो रे भाई ॥

अथवा—

अग्नि वायु जल पृथ्वी नभ
इन तत्वों ही का मेला है ।
इच्छा कर्म्म सयोगी ईंजन
गारड आप अकेला है ।
जीव लाद खींचत डोलत औ
तन इस्टेशन झोला है ।
जयति अपूरब कारीगर जिन
जगत रेलको रेला है ॥

लखनऊवालोंकी ठुमरी—

आ जा सँवलिया गले लगा लूं,
रसके भरे तेरे नैन रे ।
साँवली सूरत मोहनी मूरत
बिन देखे नहिँ चैन रे ॥

रेखता और लावनी, तो प्रायः इसी भाषामें बनाई जाती है, यदि उसमें अप्रचलित पारसी और अरबीके शब्द न आये, तो वह भी नागरी ही है। इसकी संख्या हमारी भाषामें अति अधिक है, इसीसे उनके उदाहरण नहीं दिये ।

कवित्त, जैसे—

यारको मिला दे या तो यारको दिखा दे,
कवि राम खत लिख दूं तावे जिन्दगी
गुलामीका ॥

इन सबके सुननेसे यह नहीं बोध होता कि, यह हमारी भाषाकी कविता नहीं है। परन्तु आजकलकी बनी नागरी कविताएं सुननेमें बहुत ही विभिन्न और अजनबी सी जँचती हैं। आप कहेंगे कि नहीं, जिन्हें तुम लिख गये हो, उनमें व्रजभाषाकी छाया लखाती और कहीं कहीं उर्दू या संस्कृतकी भी झलक आती है। यद्यपि ऐसा तो नहीं है, तौभी आप उसे निकाल सकते हैं।

अस्तु, खरी बोलीकी कविता वा गद्यका उत्तम उदाहरण लोग रानी केतकीकी कहानीमें देख सकते हैं। छन्दोंसे उसके हमें अवश्यही कुछ सम्बन्ध न रखना चाहिये। पर भाषा तो उसकी अति ही सरस और सुहावनी है। जैसे,—

रानीको बहुत सी बेकली थी।
कब सूझती कुछ भली बुरी थी॥
चुपके चुपके कराहती थी।
जीना अपना न चाहती थी॥
कहती थी कभी अरी मदनबान।
है आठ पहर मुझे वही ध्यान॥
यहां प्यास किसे भला किसे भूख।
देखूंहूं वही हरे हरे रूख॥

इसके तीन भेद हैं—एक संस्कृत शैली, जिसकी मुख्य कवियोंमें पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू मैथिलीशरण गुप्त आदि हैं; दूसरी उर्दूकी शैली, जिसके कवि पण्डित अयोध्यासिंह और लाला भगवान दीन आदि हैं; योंही तीसरी मध्य शैली जिनके प्रधान कवि पण्डित श्रीधरपाठक और पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र आदि हैं।

अब इसके सम्बन्धमें हमें नागरी भाषाके कवियोंकी सेवामें केवल इतनाही विनीत निवेदन है कि, व्रजभाषा और नागरीमें केवल क्रिया आदिका ही कुछ भेद है। आप उसे सुधार लें, परन्तु प्राचीन कवियोंके कैंड़ेको न छोड़ें। यथाशक्ति छन्द प्राचीन भाषा हीके रखें। भाषाको सरल बनायें और उसमें भाषापन लायें; योंही छोटे छोटे प्रबन्ध छोड़कर बड़े बड़े ग्रन्थ बनायें, जिनमें कई रसोंका सन्निवेश हो, ऋतु और स्वाभाविक सौन्दर्य्यका वर्णन हो।

महाशयो! एक समय था, जब संस्कृत इस समस्त भारतभूमिकी सामान्य लोकभाषा, राजभाषा और राष्ट्रभाषा थी। दूसरा समय वह था, जब इसके जाननेवाले केवल कहीं कहीं कुछ बचे थे और प्राकृत राष्ट्रभाषा और राजभाषा थी। फिर जो समयने पलटा खाया तो प्राकृत बिगड़कर अनेक अपभ्रंशोंमें विलीन हो गई और संस्कृत पुनरपि विस्तृत हो सारे देशमें प्रधान साहित्यभाषा और धर्म्मकी भाषा बन गयी और बौद्धधर्म्मके साथ ही मानो प्राकृतका नाम भी भारतसे जाता रहा। दूसरा समय व्रजभाषाका आया कि, जिसे पिछले दिनोंकी एक प्रकार संस्कृतके नीचेकी उपराष्ट्रभाषा

कह सकते हैं। क्योंकि संस्कृत और प्राकृत-के पीछे यहां क्या धार्मिक ग्रन्थ और क्या साहित्यके अङ्गोंकी यही प्रधान भाषा थी। भारतके प्रायः सबी प्रान्तोंमें इसका कुछ न कुछ प्रचार अद्यावधि वर्त्तमान है, विशेषतः मध्यदेशमें तो मानो इसका आज भी राज्य है और जीवित भाषा रूपसे यह एक बड़े भागमें व्यवहृत हो रही है। यदि संस्कृत प्राचीन साहित्य सिन्धु है, तो यह भी सिन्धु नद है; यदि उसका सम्बन्ध हमसे अटल है, तो इसका भी अनिवार्य्य है; यदि उसमें हमारे प्रातःस्मरणीय पूर्वज असंख्य अमूल्य रत्न भर गये हैं, तो इसमें भी बहुमूल्य छोड़ गये हैं। उसका अवहेलन करते जो आज हमारे अनेक भाई दिखलायी दे रहे हैं, वे बहुत ही बेतरह बहक रहे हैं। इसका निरादर कर वे पीछे पछतायेंगे और उसी चनेकी खायेंगे। दूसरे सूर, तुलसी, बिहारी और देवको वे कहां पायेंगे कि जिन्हें ब्रह्माने अनूठे बनाया था। अवश्य हमारी साम्प्रतिक नागरी भाषा वृद्ध्युन्मुख है। वह और अंशोंमें चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न कर ले, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, वह अब ऐसे महाकवि न पायेगी, वरञ्च इन्हींके अभिमानपर सदा सतरायेगी और इन्हींके भोले भावोंसे मुस्कुरायेगी। वैसी माधुरी इसमें कदापि आनेवाली नहीं कि, जिसे उन्होंने जन्मभर खूनेजिगर पी पी कर जमा की है। यह भाषा उनके समयकी ही है, उन्होंने भी इसकी चाश्नी ली, पर चीख चीख कर छोड़ दिया। मुसल्मान सुकवियोंने भी, जो आरम्भहीसे इस भाषाके संवारने और सुधारनेमें लगे रहे, भाषाकी कविताके योग्य उसे न समझा। उनकी कविताशक्ति भी हमारे देशी सुकवियोंसे न्यून न थी। पर जब उन्होंने भी भाषा लिखनेको लेखनी उठाई, तब उसी प्राचीनशैलीका अनुसरण किया।

जैसे कि, सबसे प्राचीन प्रसिद्ध मुसल्मान कवि खुसरूकी यह पारसी और भाषाकी मिलावटकी मशहूर गजल—

ज़े हाले मिसकीं मकुन तगाफुल,
दुराय नैना बनाय बतियां।
कि ताबे हिजराँ न दारम ऐ जां,
न लेहु काहे लगाय छतियां।
शबाने हिजराँ दराज़ चूँ जुलफो
रोजे़ वसलत चु उम्र कोतह।
सखी पियाको जो मैं न देखूँ तो
कैसे काटूँ अन्धेरी रतियां।

आज भी लखनऊवाले, जिन्हें अपनी जबान्दानीका अभिमान है, ठुमरियोंकी भाषामें उसीकी पैरवी करते हैं। निदान उससे सर्वथा सम्बन्ध त्याग देना इतनी बड़ी भारी भूल है कि, जिसका ठिकाना नहीं।

अस्तु, हम अपनी भाषाके पद्यके चार वा पांच प्रकारके भेदोंको उनके उदाहरणोंके सहित दिखला चुके। गद्यके भी प्रधान दो भेद हैं। एक जो प्रायः पारसी अक्षरोंमें अधिकांश अरबी, पारसी शब्दकी मिलावटसे लिखा जाता और जिसे उर्दू कहते हैं। दूसरा जो देवाक्षरमें अधिकांश स्वदेशी

शब्दोंके ही मेलसे लिखा जाता और जिसे हिन्दी वा नागरी कहते हैं।

पारसी अक्षरोंमें लिखी जानेवाली हिन्दी अथवा उर्दूके भी दो भेद हैं। अर्थात् एक पुरानी भाषा, जिसमें कुछ देशी शब्द भी आते और जो कुछ कुछ व्रजभाषाकी भी छाया रखती देहलीकी रेखता वा उर्दू कहलाती है। दूसरी लखनवी उर्दू, जिसे पारसीकी बच्ची कहना चाहिये और क्रिया आदिको छोड़ जिसका शेष सब पारसीकाही रूप रहता है। हम दोनों स्थानोंके कवियोंकी कविताओंके कुछ कुछ नमूने देते हैं। जैसे देहलीका पुराना कवि सौदा —

कितना शिगुफ़ा रू है कि मानिन्दे आरसी।
छातीके जिसके सामने खुल जाते हैं केवाड़॥
उठ जानेमें है रोक मजा यारसे लड़कर।
मिलते हैं तो फिर छातीको छातीसे रगड़कर॥
कहता था यह सौदा वह न चाहेगा कहाँतक।
जा बैठूंगा दरवाजे प अब उसके मैं गड़कर॥

अथवा जफर—

मेरे दिलमें था कि कहूँगा मैं,
यह जो दिल प रंजो मलाल है।
वह जब आ गया मेरे सामने,
न तो रञ्ज था न मलाल था॥

नजीर—आगरेवाला—

जो औरको फल देवेगा
वह भी सदा फल पावेगा।
गेहूँसे गेहूँ, जौसे जौ,
चाँवलसे चाँवल पावेगा॥
जो आज देवेगा यहां,
वैसाही वह फल पावेगा।
कल देवेगा, कल पावेगा,
कल पावेगा, कल पावेगा॥
कलजुग नहीं करजुग है यह,
यां दिनको दे और रात ले।
क्या खूब सौदा नकद है,
इस हाथ दे उस हाथ ले॥

अथवा —

हर इक मकांमें जला फिर दिया दिवालीका।
हर इक तरफको उजाला हुआ दिवालीका॥

लखनऊका प्रसिद्ध कवि आतिश —

नसीमे नौ बहारीकी तरह आये हो गुलशनमें।
तमाशाए गुलो सर्वो सनोवर देखते जाओ॥
पर हैं उनके गुमां कैसे कैसे।
कलाम आते हैं दर्मियां कैसे कैसे॥

नासिख —

काविशे गम दूर हो मेरे दिले वीरांसे क्या।
खार जाते हैं कहीं सहराका दामां छोड़कर॥
लगा दे शोलए आरिज़से
गर वह आग गुलशनमें।
कबाबो सीख समझें
बुल बुलें शाखे नशेमनको।
वह सकीर आतिशे गम है
कि अपनी आहि सोजाने
तलाई एक दममें कर दिया
जञ्जीर आहनको॥
आवाज है मानिन्दे मजामीर गलेमें।
तहरीर है गोया तेरी तकरीर गलेमें॥

पं० दयाशङ्कर नसीम—

हर शाखमें है शिगूफा कारी।
समरा है कलमका हमदे वारी॥
नसीम इस चमनमें गुले तरकी सूरत।
फटे कपड़े रखते हैं पर्दा तुमारा॥
जञ्जीरे जुन कड़ी न पड़ियो।
दीवानेका पांव दरमियां है॥

मीर हसनको कविता अवश्य ही सरल और सरस है, जैसे,—

मुसाफिरसे भी कोई करता है प्रीत।
मसल है कि जोगी हुए किसके मीत॥
बरस पन्दरह या कि सोलहका सिन।
मुरादोंकी रातैं जवानीके दिन॥
कहां यह जवानी कहां फिर य सिन।
मसल है कि है चांदनी चार दिन॥

ऐसी हिन्दी, जिसे उर्दू और नागरी दोनों कह सकते हैं,—

झुके आपसे उसके झुक जाइये।
रुके आपसे उससे रुक जाइये॥

नागरीके प्रथम गद्यलेखक लल्लूजी लाल हैं, क्योंकि उनसे पहिलेके किसी लेखकका नाम नहीं सुना जाता। अवश्य ही लोग आगे भी गद्य लिखते ही रहे होंगे, परन्तु छापेखानोंके अभावसे सामान्य गद्यग्रन्थ कैसे प्रचारमें आते। तब क्यों कोई प्रेम-सागर सा बड़ा ग्रन्थ हाथोंसे लिखता और उसका इतना प्रचार होता। जो हो, उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दीके आदिमें प्रेमसागर बनाया, जिसकी रचनाकी प्रशंसा करनी ही होगी, क्योंकि वह प्रायः केवल कानसे सुनी बोलीके लिखनेवाले थे। उन्होंने विदेशी शब्दोंसे अपनी भाषाको बहुत बचाया। मानो यही हमारी भाषाका अन्तिम संस्कार है कि, जो उर्दूसे उसे भिन्न रूप देता है। तौभी यह मानना पड़ेगा कि, उनकी भाषा एक रीतिसे बालभाषा है, इसी कारण वह निरी सीधी सादी और कुछ खुर्दुरी है; जिसे टकसाली भाषा नहीं कह सकते। इसी भांति उनके पीछेके पादरी लोगों वा अन्यों-की भाषाएं भी उसी कोटिकी हैं। अतएव उसके दूसरे सुलेखक राजा शिवप्रसादजीको ही उसका परमाचार्य्य अथवा आदि सुलेखक वा ग्रन्थकार कहना चाहिये। क्योंकि जैसी अनोखी और पुष्ट भाषा उन्होंने लिखी, आजतक फिर कोई न लिख पाया। जिस काटछाँटका कैड़ा वह बना गये, वह उनकी बहुत बड़ी योग्यताका साक्षी है। ठेठ हिन्दी शब्दोंकी सजावट, सुगम संस्कृत और पारसी आदि शब्दोंकी मिलावटसे जैसी सुथरी, सुन्दर और चुस्त इबारतकी धारा उनकी लिखावटमें आई, फिर किसीकी लेखनीसे न निकल सकी।

क्या नागरी अर्थात् अधिकांश विदेशी शब्दोंसे शून्य उच्च और क्या सामान्य बोल-चालकी सरल भाषा तथा नीम उर्दू वा उर्दू उनकी सबी शैलियां समान रीतिमें सुहावनी और मनलुभावनी होती थीं, जिसका प्रमाण उनकी पुस्तकें हैं। विशेष कर भूगोल हस्तामलक अथवा गुटकामें उनकी

लिखित पुस्तकें और इतिहास तिमिर-नाशक, विशेषत: उसका तीसरा भाग।

एक दिन मैं अपने अभिन्नहृदय माननीय मित्र भारतेन्दुसे संयोगात् कह उठा कि, मैंने सबकी लिखी हिन्दी पढ़ी, परन्तु जो स्वाद मुझे राजा साहिबकी लिखावटमें मिलता है, दूसरोंकीमें कदापि नहीं। वह मुसकुराकर बोले, कि, "क्या कहें, वैसी लच्छेदार इबारत कोई लिखी नहीं सकता, पसन्द कैसे आवे? सचमुच उनके कलममें जादूका असर है।" अवश्य ही वह सरल उर्दू शब्दोंके मेलको बुरा नहीं समझते थे और अप्रचलित संस्कृत शब्दोंके भरनेके विरोधी थे। वह केवल ठेठ बोलचालकी हिन्दीके पक्षपाती थे। एक दिन भारतेन्दुके साथ मैं उनके घर पर गया, तो और बातोंके साथ हिन्दीकी लिखावटकी बात चली, तो कहा कि, "आप लोग क्या पाणिनिका जमाना लाना चाहते हैं? इबारत वही अच्छी कही जायगी कि जो आम-फह्म और खासपसन्द हो।" बाबू साहबने कहा कि, हुजूर क्या किया जाय, अरबी फारसीके अल्फाजके मेलसे तो उर्दू हिन्दीमें कुछ भेद ही नहीं रह जाता।" कहा कि, "भेद तो दरअस्ल हुई नहीं है, लोग दोनों तरफसे खींच तान करके भेद बढ़ा रहे हैं।"

पिछले दिनों राजा साहिब अपनी भाषामें उर्दूपन अधिक ला चले थे, जिसके कारण शायद उनके अफसर डाइरेक्टर शिक्षा विभाग हुए हों, अथवा सर्कारी कचहरियोंमें उर्दूके स्थानपर हिन्दीके प्रचारके अर्थ बहुत उद्योग करके भी हताश हो, कदाचित् उन्होंने यह सिद्धान्त कर लिया था कि, अब हिन्दीकोही उर्दू बना चलो। क्योंकि राजभाषासे प्रजाको परिचित कराना अति ही आवश्यक है। जो हो, उन्होंने पाठ्य-पुस्तकोंमें अपनी भाषाकी शैली बदल दी। तृतीय भाग इतिहास तिमिरनाशकके अन्तकी भाषा खरी, वरञ्च उच्च कोटिकी उर्दू कही जा सकती है, जिसे कम लियाकतके मुदर्रिस तो प्राय: समझ भी नहीं सकते, पढ़ाते क्या? वैसा ही उन्होंने अपनी भाषाके लिये एक व्याकरण भी बनाया, जिसमें फारसी और अरबीके नियम और गर्दान लिखकर अवश्य ही हमारी भाषामें एक अच्छी वस्तु छोड़ गये, पर उस कामके लिये उपयुक्त नहीं, जिसके लिये उनका श्रम था। यह तो अनहोनी बात थी कि, दूसरे वर्णों द्वारा दूसरी दूसरी भाषाओंका सम्यक् ज्ञान हो सके। कविवचनसुधामें बहुत दिनोंतक उसकी समालोचना हुई थी। फजीहत रायके नामसे बाबू हरिश्चन्द्र लिखते थे। उस लेखमालाका एक शीर्षक ही था कि—"भला यह व्याकरण पढ़ावेगा कौन?"

हमारी गवर्नमेण्ट यह चाहती है कि, एकही भाषा दो भिन्न भिन्न अक्षरोंमें लिखी जाय, परन्तु यह कब सम्भव है। परिणाम यह होता है कि, हिन्दी उर्दू बनती जाती है। क्योंकि पारसी अक्षरोंमें हिन्दीके शब्द

तो पढ़े ही नहीं जाते, इसीसे हिन्दीका गला घोंटा जाता है। निदान जबतक सर्कार अपनी इस भूलको न सुधारेगी, प्रजाकी दशा न सुधरेगी और न हमारी भाषाका उद्धार होगा।

बाबू हरिश्चन्द्र आरम्भमें उन्हींके अनुकरणकर्त्ता हुए। वे राजा साहिबको अपना गुरु मानते थे। कुछ दिनों दोनोंकी भाषाएं एकसी थीं। परन्तु पीछे दोनोंकी शैलियां भिन्न भिन्न हो गयीं। वे विदेशी शब्दोंपर झुके और ये स्वदेशी शब्दोंपर। वे कदाचित् गवर्नमेण्टकी इच्छासे लाचार थे, क्योंकि तबसे आजतक पाठ्य पुस्तकोंकी भाषा उर्दू मिली ही देखी गयी। बहुतेरोंने इधर नयी नयी पुस्तकें लिखीं, परन्तु भाषा उनकी निरी उर्दू ही है। योंही लेख भी सर्वथा सूखे और निर्जीव से जिनमें राजा साहिबकी उर्दू मिली भाषाकी शतांश भी रोचकता और पुष्टता नहीं। कुछ अन्य लोग भी इसी भ्रममें पड़कर अपनी भाषामें उर्दूपन ला चले। कदाचित् उन्होंने समझा कि, पारसी अरबी शब्द भर देनेसे ही इबारत दिलचस्प हो जायगी। परन्तु सिर्फ इसी एक बातसे उस नबातकी मिठास कब आ सकती थी।

अस्तु, राजा साहेब केवल पाठ्य पुस्तकोंको ही लिख गये और वे केवल अच्छा गद्य ही लिख सकते थे, परन्तु बाबू हरिश्चन्द्रने साहित्यका कोई भाग ही अछूता न छोड़ा और सबमें अपनी समान योग्यता दिखलाकर सबी रुचिके लोगोंके मनमें स्थान किया। न स्वयं उन्होंने ही लिखा, परन्तु औरोंसे भी लिखवाया एवं लोगोंमें लिखनेपढ़नेकी रुचि फैलायी। लिखनेमें वे स्वयं इतने अभ्यस्त और सिद्धहस्त थे कि, यदि यह कहें कि, यावज्जीवन उनकी लेखनी चलती ही रही, तौभी अयुक्त न होगा। वास्तवमें वह सदैव लिखने ही पढ़नेमें व्यस्त रहते थे, और विचित्रता तो यह कि सैकड़ों मनुष्योंमें बैठे भांति भांतिका गप्पाष्टक होता, तौभी उनकी लेखनी चली ही जाती थी। इसीसे वे इतनी थोड़ी अवस्थामें इतने ग्रन्थ लिख सके। चार सामयिक पत्रोंका सम्पादन भी करते थे; अर्थात् कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन वा हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, बालाबोधिनी, (जो बरस ही छ महीने चली) और भगवद्भक्तितोषिणी (यह दोई चार संख्या छप सकी)। सबमें प्रधान कविवचनसुधा थी, जो प्रथम मासिक, फिर साप्ताहिक हुई और जो उनकी ख्यातिकी प्रधान सामग्री थी। उससे आगे नागरीमें दो एक पत्र और भी छपते थे, परन्तु वह गिनतीके योग्य नहीं थे। अतः प्रथम पत्र यही कहा जा सकता है। पहिले उसमें केवल कवित्तोंका संग्रह, फिर कालके सब प्रकारके ग्रन्थ, फिर समाचार आदि छपने लगे। उस समय जितने अच्छे लेखक थे सबी उसमें लिखते थे, जिनमेंसे कई पीछेसे पत्रसम्पादक हो गये और अपने अपने नये पत्र निकाल चले।

बाबू हरिश्चन्द्र न केवल अनेक प्रकारके

गद्य ही लिख सकते थे, किन्तु कविता भी सबी चालकी करते थे। उनके पिता उनसे भी अच्छे कवि थे; किन्तु केवल पुरानी चालकी व्रजभाषके ही। उनके रचित ४० ग्रन्थ हैं। जिनमें उनकी प्रौढ़ कवित्वशक्तिका परिचय मिलता है। यथा—

तोयज बरन दोय लोयन लसैं ललाम
जोय जोय होय रही रतिमति हारी सी।
समर समर जीति लेवेकी अमरपति
नाजुक कमर असि असिल सुधारी सी।
गिरिधरदास महँ महँ महँकति देह
लहकति कान्ति विज्जुपांति उंजियारी सी।
सारी जर तारी भारी भूखन सँवारी नारी
कीरति कुमारी प्यारी दीपति दिवारी सी।
चम्पक चमेलिन सों चमन चमत्कार
चमू चँवरीक चितवत चोरैं चित हैं।
चांदीके चबूतरा चहूँघा चमचम करैं,
चन्दन सों गिरिधरदास चरचित हैं।
चारु चांदतारेको चन्दवा चारु चांदनी सो,
चामीकर चोवन पैं चञ्चला चकित हैं।
चुन्निनकी चौकी चढ़ी चन्दमुखी चूड़ामनि,
चाहन सों चैत करैं चैनके चकित हैं।

जरासन्धवध महाकाव्य :—

धुंकार धौंसनकी बढ़ी
हुंकार भूमिपतीनकी।
टङ्कार वर कोदण्डकी
झङ्कार त्यों भेरीनकी॥
ललकार तीरनकी परम
चिक्कार घोर रदीनकी।
धुनि भरी दस दिसि हौंसननि
भीसन तुरंग तुरकीनकी।

बाबू हरिश्चन्द्र सबी कुछ लिख सकते थे। परन्तु समाचारपत्र सम्पादक वैसा कोई फिर आजतक न हो सका। हंसी दिल्लगीके मजमून तो वह ऐसा लिखते थे, कि कैसा कुछ। उन्होंने हमारी भाषामें सामयिक लेख और कविताकी चाल चलाई, स्वदेशानुराग उत्पन्न किया और जातीयताका बीजारोपण किया। इस अंशमें वे सर्वथा अनूठे हुए।

राजा साहिब यदि कन्सर्वेटिव थे, तो बाबू साहिब लिबरल। वे यदि सदैव राजाके पक्षपाती थे तो ये प्रजाके। वे यदि अपनी उन्नतिको प्रधान समझते, तो ये देश और जातिकी उन्नतिको। इसीसे उनसे और इनसे क्रमश: वैमनस्य भी बढ़ा। उन्होंने इनकी वृद्धिमें बड़ी हानि की और इन्होंने उन्हें देशकी आंखोंसे गिरा दिया। अन्ततक इन दोनोंका बैर बढ़ता ही गया और मेल न हुआ।

जो हो, ये दोनों काशीवासी गुरु और चेले हमारे समान सम्मानके भाजन हैं, क्योंकि हमारी वर्त्तमान भाषाके यही दो प्रधान संस्कारक वा परिपोषक हैं। इस देशरूपी खेतमें जो हमारी भाषाका बीज छिप रहा था, उसे लल्लू लालरूपी वर्षा ऋतुने अङ्कुरित किया, तो शिवप्रसाद शारदने उसे बेल बूटेका आकार दिया और हरिश्चन्द्र वसन्तने उसमें फूल फल दिखलाये अथवा यों कहें, कि यदि लल्लू लाल उसके जन्मदाता तो राजा साहिब उसके पालन-

कर्त्ता हैं, क्योंकि उन्होंने इस भाषाको ऐसा रूप दिया कि जिससे वह उर्दू से टक्कर लेनेमें समर्थ हुई, जिसे पढ़कर लोग लेखका आनन्द पाने लगे और यह समझ सके कि उर्दूको छोड़ हिन्दीमें भी लेखलालित्य दिखलाया जा सकता है। बाबू साहिब मानो उसके शिक्षक थे कि, जो उसे अनेक गुणोंसे युक्त कर लोगोंको दिखला सके, अथवा राजा साहिबकी जगाई भूखको वह भांति भांतिकी भोजन सामग्री देकर वाचकवृन्दको तृप्त कर सके।

परन्तु खेद! कि आज हमलोग जो अपनी भाषाका रूप देखते हैं, वह इन दोनोंकी लिखावटसे भिन्न है। शैलियां दोनोंकी आज भी प्रचलित हैं। लेखकोंकी संख्या भी अधिक है। ग्रन्थ भी बहुतसे प्रकाशित होते हैं। तौभी लोग यही कहते कि, हमारी भाषामें अच्छे ग्रन्थ नहीं हैं, अच्छे लेखक नहीं हैं। क्या यह वास्तवमें सच है? और यदि सच है, तो इसका कारण क्या है? हम यह कहेंगे कि, हमारी भाषाकी ऐसी दशा हो गई है कि, जबतक कोई संस्कृत, व्रजभाषा, उर्दू, फारसी और अब अङ्गरेजी भी न जाने, वह अच्छा लेखक नहीं हो सकता। क्योंकि जबतक संस्कृत और व्रजभाषा न जानेगा, सुन्दर शब्दोंको न पावेगा और न प्राचीन सङ्गठनशैलीसे अभिज्ञ होगा, एवं प्रमाण और उदाहरणोंके लानेसे भी वञ्चित रहेगा। उर्दूके विना मुहाविरे ठीक न होंगे और भाषा भी प्रायः अशुद्ध होगी; क्योंकि आजकलकी हमारी भाषामें बहुतेरे शब्द अरबी फारसीके बिना आये न रहेंगे और उनका अशुद्ध प्रयोग जानकारोंको असह्य होगा। अंगरेजी अब सबसे अधिक आवश्यक हो गई है। इसके विना वर्त्तमान समयमें कुछ कार्य्य हो नहीं चल सकता। इसीसे उन लोगोंके पीछेके जो लेखक हुए उनमें जो जितनी ही अधिक भाषाओंके ज्ञाता थे, वे उतनीही अच्छी भाषा लिख सके।

काशी हमारा सदाका विद्यापीठ है। वहांसे यदि संस्कृतकी धारा बहती थी, तो उसकी बची हमारी भाषाकी सोतीका भी वहांसे निकलना परम स्वाभाविक है। भारतेन्दुके अस्त होनेपर जो वहां काशी नागरी प्रचारिणी सभा खुली, मानो वह आज भी उनकी प्रतिनिधि बनी बहुत कुछ उनके कियेकी लाज रख रही है। उसने कई काम ऐसे किये कि, जो हमारी भाषाके हितैषियोंके धैर्य्यके हेतु हैं। विशेषतः पृथ्वीराजरासोका प्रकाशित करना, हिन्दी कोशका निर्माण, प्राचीन भाषा ग्रन्थोंकी खोज और उनमें कुछका उद्धार करना। सम्मेलन-स्थापनका सुयश भी उसीको मिला और यह भी उसके बड़े कामोंमें है। आज ईश्वरकी कृपासे यह जिसका तृतीय अधिवेशन है, मानो काशीक्षेत्रसे जो हमारी भाषाका नया अङ्कुर उगा था, वह क्रमशः इतना बड़ा वृक्ष हो गया कि जिसकी छाया आज भारतकी सीमाओंतक पहुंची है। एक दिन

वह था कि जब उसके एकमेव हितैषी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दका, किसी अंगरेजी कविके कथनानुसार—

जुग जुगात छोटे से तारे,
अचरज मोहि अहै तू क्या रे।
धरनी सों अति ऊपर ऐसे,
चमकत नभ में हीरक जैसे—

काशी आकाशसे कुछ प्रकाश फैल चला था कि, साथ ही उसके उसका अनुयायी भारतेन्दु भी उगा एवं अपनी द्वितीयाकी सूक्ष्म कलाकी मन्द ज्योत्स्ना उद्योगके सङ्ग साहित्यसुधासिञ्चनमें प्रवृत्त हुआ और हमारे नवीन भाषाशस्यको लहलहा चला, जिसका उद्योग पूर्ण सफलताको प्राप्त हो आज मानो द्वादशीकी मयङ्कमरीचिमालासे भारतको उँजाला कर रहा है।

महाशयो! क्या राजा शिवप्रसादके इतिहासतिमिरनाशकका नाम आज चरितार्थ नहीं हो रहा है? क्या यह हिन्दी-इतिहासका उजला पृष्ठ नहीं है? तब जहां दोचार भी हितैषी वा सेवक इसके न थे, आज सहस्रोंकी संख्या आपके सम्मुख उपस्थित है, तौभी क्यों कुछ लोग कहते कि हिन्दीकी वास्तविक उन्नति नहीं हो रही है? क्या यह सच है? यदि सच है, तो हम पूछेंगे कि, क्या उसके देश भारतकी हीनावस्था नहीं है? क्या आर्य्य राजराजेश्वरोंके समयका सा सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि और स्वच्छन्दता आज इसे प्राप्त है? आप कहियेगा कि नहीं। फिर भी क्या पिछले दिनोंसे आज इसकी किसी अंशमें कुछ भी उन्नति नहीं हो रही है? आप अवश्य ही कहेंगे कि हां, होई रही है। उसी प्रकार हमारी भाषाकी अनेक अंशोंमें अवश्य ही उन्नति हो रही है। ईश्वरकी कृपासे जब इसकी पूर्ण उन्नति हो जायगी, तब निश्चय रखिये कि, भारतकी भी पूर्ण उन्नति दिखलाई पड़ने लगेगी।

आप आज यूरोप और अमेरिकाके नये देशों और उनकी आश्चर्य्य उन्नति, विद्या और सभ्यताकी चमकदमक देख भारतकी हीनावस्थापर उदास हैं। किन्तु यह नहीं सोचते, कि ये कलके लहलहाते पौधे हैं, जबसे ये उगे हैं, भारत तबसे बिगड़ता बिगड़ता भी अभी इस दशापर स्थित है। यही दशा उसके अन्य अङ्गोंकी भी जानिये। आप उसी प्रकार कदाचित् भारतकी कुछ भाषाओंके मिलानसे भी अपनी भाषाकी हीनावस्थापर विषाद प्रकट करते हैं, किन्तु यह नहीं विचार करते कि, जितना उनका आज साहित्य है, आपकी भाषा उतना तो कीड़े मकोड़े और दीमकोंको अर्पण कर चुकी है। योंही वे भी उन्हीं नये देशोंके समान कलके पौधे हैं कि जो आज हमारी पुरानी भाषाके आगे अपने रङ्गरूपपर अभिमान कर रहे हैं। जितनी विपत्तियां भारतपर पड़ीं, उसके एक अंशके भी पड़नेपर वे नये देश ऊजड़गाम हो गये होते। परन्तु यह सहस्रों वर्षोंसे सौ सौ सांसतोंको सहकर भी आजतक सांस लेई रहा है।

संसारके अनेक प्राचीन देश और जातियां जो इससे जेठी भी न थीं, कबी कालके गालमें विलीन हो गयीं, परन्तु यह जीता जागता ही है। वैसे ही आजकी नवीन प्रान्तिक भाषाओंकी लहलहाती शोभासे हमारी इस मूल भाषाकी क्या तुलना है? वृक्षके मुख्यस्तम्भसे पत्रावलियोंकी शोभा और संख्या अधिक होती ही है। वे जबसे जनमीं, सुखसे पलती और उभरती चली आईं, इधर इसके विधवाके अनुचित गर्भके समान प्रसव न होने देनेकी ही युक्ति की जाती रही।

आप बंगला, मराठी और गुजरातीकी उन्नति देखकर इसकी हीनावस्थापर खेद करते ऐसा कहते हैं? परन्तु क्या उस देशवालोंके से अधिकार आप भी रखते हैं? क्या उन्हीं लोगोंके समान हमें अपनी भाषाकी शिक्षा मिलती है? क्या उनके समान हमारी भाषा भी अपने देशके राज-कार्य्यालयोंमें प्रतिष्ठित है? फिर भला औरोंसे इसकी क्या तुलना की जा सकती है? जिस देशकी वह भाषा है हमारी सर्कारसे वहांकी एक दूसरी ही भाषा और वर्णावली स्वीकार की जाती है। एक मियानमें दो तलवारें घुसेड़ दी गई हैं। मानो पारसी अक्षरोंमें उर्दू भाषा अदालतोंमें मुसल्मानी बादशाहतकी यादगार सी बर्क-रार रक्खी गयी है। अब ऐसी दशापर, महाशयो! आप विचार करें कि, विना किसी सहारेके जो आपकी भाषा उन्नत हो रही है, यही आश्चर्य है। क्योंकि शिक्षा-विभागमें भी इसकी जड़ काटी गयी है। कहा जाता है कि, पाठ्य पुस्तकोंकी भाषा ऐसी रक्खी जाय कि, जो दो भिन्न भिन्न वर्णा-वलियोंमें लिखी जा सके अर्थात् नागराक्षर और पारसी लिपिमें भी। इसीलिये उर्दू और हिन्दी दोनोंका नाम छोड़कर साहिब लोगोंने इस देशकी भाषाका एक नया नाम हिन्दुस्तानी रक्खा है। न एतबार हो तो 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रटानिका' खोलकर देख लीजिये। इसका फल यह हुआ है कि हिन्दी पुस्तकोंकी भाषा उर्दू हो गयी। क्योंकि पारसी लिपिमें तो दूसरी भाषाके अक्षर लिखे ही नहीं जा सकते। यदि कोई लिखे भी तो उसका पढ़ना नितान्त असम्भव है। जो आजकल हमारे देश युक्तप्रान्त और पञ्जा-बके राजकार्य्यालयोंमें हमारी देशभाषाके नामसे पारसी अक्षरोंके सहित प्रचलित है, जिसके कारण नित्य प्रति हमारी जो हानि होती है, उसका ठिकाना नहीं है। जैसा कि मैंने अपनी "आनन्द बधाई" नामक कवितामें कहा है;—

पै भागनि सों जब
भारतके सुख दिन आये।
अङ्गरेजी अधिकार
अमित अन्याय नसाये॥
लह्यो न्याय सबही
कीने निज स्वत्वहिं पाई।
दुरभागनि बचि रह्यो
यही अन्याय सताई॥

लह्यो देसभाषा अधिकार
सबै निज देसन।
राजकाज आलय
विद्यालय बीच ततच्छन ॥
पै इत बिरचि नाम
उर्दू को "हिन्दुस्तानी।"
अरबी बरनहु लिखित सके
नहिं बुध पहिचानी ॥
"हिन्दुस्तानी" भाषा कौन ?
कहां तैं आई ?
को भाषत, किहि ठौर
कोउ किन देहु बताई ?
कोउ साहिब खपुष्प सम
नाम धस्यो मनमानो।
होत बड़न सों भूलहु बड़ी
सहज यह जानो ॥
हरि हिन्दीकी बोली अरु
अच्छर अधिकारहिं।
लै पैठारे बीच कचहरी
बिना बिचारहिं ॥
जाको फल अतिसय अनिष्ट
लखि सब अकुलाने।
राज कर्मचारी अरु
प्रजाबृन्द बिलखाने ॥
संसोधन हित बारहिं
बार कियो बहु उद्यम।
होय असम्भव किमि सम्भव,
कैसे खल उत्तम ॥
हिन्दी भाषा सरल चह्यो
लिखि अरबी बरनन।
सो कैसे ह्वै सकै
बिचारहु नेक बिचच्छन !
मुगलानी, ईरानी,
अरबी, इङ्गलिस्तानी।
तिय नहिं हिन्दुस्तानी
बानी सकत बखानी ॥
ज्यों लोहार गढ़ि सकत
न सोनेके आभूषन।
अरु कुम्हार नहिं बनै
सकत चांदीके बरतन ॥
कलम कुल्हाड़ीसों
न बनाय सकत कोउ जैसे।
सूआसों मलमलपर
बखिया होत न तैसे ॥
कैसे हिन्दीके कोउ
शुद्ध शब्द लिखि लैहै।
अरबी अच्छर बीच लिखेहु
पुनि किमि पढ़ि पैहै ॥
निज भाषाको सबद
लिखो पढ़ि जात न जामैं।
पर भाषाको कहौ
पढ़ै कैसे कोउ तामैं ॥
लिख्यो हकीम औषधीमें
'आलु बोखारा।'
उल्लू बनी मोलवी
पढ़ि 'उल्लू बेचारा ॥'
साहिब 'किस्ती' चहौ
पठाई मुनसी 'कसबी।'
'नमक, पठायो भई
तमस्सुकको जब तलबी ॥

पढ़त 'सुनार, 'सितार',
किताब, 'कबाब', बनावत।
"दुआ" देत हूं "दगा"
देनको दोष लगावत ॥
मेम साहिबा बड़े बड़े
मोती चाह्यो जब।
बड़ी बड़ी मूली पठवायो
तसिल्दार तब ॥
उदाहरन कोउ कहुं लगि
याके सकै गनाई।
एकहु सबद न एक भांति
जब जात पढ़ाई ॥
दस औ बीस भांति सो
तौ पढ़ि जात घनेरे।
पढ़े * हजार प्रकारहु सों
जाति बहुतेरे ॥
जेर जबर अरु पेश
स्वरनको काम चलावत।
बिन्दीकी भूलनि सौ सौ
बिधि भेद बनावत ॥
चारि प्रकार जकार
सकार, अकार तीन बिधि।
होत हकार, तकार, यकार,
उभय विधि छलनिधि ॥
कौन सबद केहि बरन
लिखेसों सुद्ध कहावत।
याको नियम न कोऊ
लिखित लेखहिं लखि आवत ॥

यह विचित्रताई जग
और ठौर कहुं नाहीं।
पञ्चमेली भाषा लिखि
जात बरन उन माहीं ॥
जिनसे अधम बरनको
अनुमानहुं अति दुस्तर।
अबसि जालियन सुखद
एक उर्दू की दफ़तर ॥
जिहि तें सौ सौ सांसति
सहत सदा बिलखानी।
भोली भाली प्रजा इहांकी
अतिहि अयानी ॥
भारत सिंहासन स्वामिनि
जो रही सदाकी।
जगमें अब लौं लहि न सक्यो
कोऊ छवि जाकी ॥
जासु बरनमाला गुन खानि
सकल जग जानत।
बिन गुन गाहक सुलभ
निरादर मन अनुमानत ॥
राजसभा सो अलग कई
सौ बरस बितावत।
दीन प्रदीन कुटीन बीच
सोभा सरसावत ॥
बरसावत रस रही ज्ञान,
हरि भक्ति, धरम नित।
सिच्छा अरु साहित्यसुधा
संवाद आदि इत ॥
किये न बदन मलीन
पीत अरु होत निरन्तर।
रही धीरता धारि
ईस इच्छापर निरभर ॥

---

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने एक शब्दको हजार प्रकारसे पढ़ा जाना सिद्ध किया है।

प्रथम तो कचहरियोंमें उर्दूके जारी रहनेसे सामान्य नौकरीपेशा लोग हिन्दी पढ़ते ही नहीं, इससे उन्हें उसकी कुछ भी योग्यता नहीं होती। उन्हें हमारी भाषाकी अच्छी पुस्तक वा समाचारपत्र दे दीजिये उसे वे पढ़ भी नहीं सकते, समझना तो दूर रहा। क्योंकि आजकलकी पाठ्य पुस्तोंकके प्रणेता कुछ उर्दूमें ही उसे लिखते। ऐसा न करनेसे पुस्तकें सर्कारसे स्वीकृत भी न हों। प्रणेता भी प्रायः नवशिक्षित ही होते कि, जिन्होंने इसी क्रमसे हमारी भाषा पढ़ी है। साहिब लोगोंकी पुस्तकोंके अनुवाद कभी इसी ठांचेके ढले होते। बहुतेरे यन्त्रालयोंसे प्रकाशित ग्रन्थ भी प्रचलित है कि जिनके प्रणेता थोड़ी योग्यता और थोड़े वेतनपर रख लिये जाते और जोड़तोड़ लगाकर बेगार टालनेके लिये वही पुस्तकें पाठ्य पुस्तकोंमें रक्खी जातीं। पुस्तकप्रणेताओंकी योग्यताकी परख इसीसे हो जाती कि, वे अपने ग्रन्थका एक नाम भी अपनी भाषामें नहीं रख सकते। ग्रन्थ उर्दू वा हिन्दीका और नाम अङ्गरेजी 'प्राइमर' और 'रीडर'। जहां राजा शिवप्रसाद सदृश विलक्षण विद्वानके बनाये भूगोल हस्तामलक, इतिहास तिमिरनाशक, गुटका और विद्याङ्कुर पढ़ाये जाते थे, वहां अब ऐसे कि जिन्हें देखकर हिन्दीके नाम रोना आता है। निदान ऐसी ही ऐसी पुस्तकोंको पढ़ जो हमारे देशके नवशिक्षित युवक निकलते हैं उन्हें प्रायः अपनी भाषासे नितान्त अनभिज्ञ ही समझना चाहिये। जब मूल शिक्षाहीकी यह दशा है, तो उससे योग्य शिक्षित कैसे उत्पन्न होंगे और जब किसी भाषाके अच्छे शिक्षित न निकलेंगे, तो उसकी उन्नतिकी आशा कैसे हो सकती है? शोक! थोड़े ही दिनके लिये सरकारने बङ्गको दो भागोंमें विभक्त कर दिया था, तो बङ्गाली प्रजाने आकाश पाताल एक कर दिया। लार्ड मार्लेके निश्चित और अटल सिद्धान्तको दोई चार बरसोंमें अपने सच्चे घोर आन्दोलनसे मिटाकर क्षणभङ्गुर बना दिया। उसमें उनकी क्या हानि थी? अवश्य ही सबसे बड़ी हानि उसमें भाषा और विद्यासम्बन्धी थी। किन्तु शोक, कि उसी हमारी भाषापर आज पचासों वर्षसे भांति भांतिके दुसह आघात हो रहे हैं। किन्तु हमारे देशवालोंके कानोंपर अभीतक जूं भी नहीं रेंगे! उन्होंने अपने देशमें निज भाषाकी शिक्षाके सम्बन्धमें कभी विचार भी नहीं किया जिससे उनका निरन्तर अधःपतन हो रहा है। हमारे देशके अभिमानके हेतु महामान्य श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखलेने जो अपना शिक्षासम्बन्धी बिल इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें पेश किया था और उसके पक्षमें गत वर्ष जब इस सम्मेलनने अपना मन्तव्य स्थिर करना चाहा था, तो कैसा उसका प्रतिवाद हुआ था? वही क्यों, देशके अनेक प्रान्तोंमें उसका विरोध किया गया था? फिर महाशयो! क्या इसे भी आप अपनी भाषाकी उन्नति ही मानेंगे? दूसरे प्रान्तोंकी

भाषाएं स्कूलोंको छोड़ कालिजोंकी उच्चतर शिक्षातक पहुंची हैं। क्या आप लोगोंने भी उसके अर्थ कुछ उद्योग किया है? रुपये पैसोंको छोड़ अभी कल सर्कारी नोटोंपरसे आपकी भाषा निकाली गई है; क्या आपको उसका कुछ दुःख हुआ? हुआ, तो क्या कुछ उद्योग हुआ? क्या एकदिन एक मन्तव्य? फिर क्या इतना ही पर्य्याप्त है? सच तो यह है कि, आप सन्तोषामृतहृदोंमें सहनशीलताकी लत लग गयी है। आपमें उपेक्षाकी मात्रा बहुत बढ़ गई है, जिस कारण आपकी जो हानि न हो थोड़ी है।

देशके सौभाग्यसे उदार हृदय न्यायमूर्त्ति महामान्य सर एण्टनी मैकडोनल हमारे देशके प्रान्तिक प्रभु होकर आये और हमारे मित्र माननीय मदनमोहन मालवीयने, ईश्वर उन्हें चिरंजीव रक्खे, लोहेके चने चाब कर किसी प्रकार अपनी मातृभाषाको राज-कार्य्यालयोंमें प्रवेशका अधिकार भी दिलाया, परन्तु क्या उसका कुछ भी फल हुआ? क्या इस अलभ्य लाभसे भी आप लाभवान हुए? जहां देखिये अभी उर्दू बीबीहीकी तूती बोल रही है।

सारांश, जबतक आपकी भाषाकी पूछ न होगी, उसका कोई ग्राहक न होगा। क्यों कोई उसकी योग्यता बढ़ानेके अर्थ श्रम करेगा? जबतक उसके सुयोग्य साहित्य-सेवियोंकी संख्या न बढ़ेगी, उसमें अनोखे सुलेखक और ग्रन्थकार कैसे निकलेंगे?

कुछ लोग कहते हैं कि, हमारी भाषामें अच्छे ग्रन्थोंका अभाव है। हम नहीं समझते कि, उनका क्या अभिप्राय है? क्या सचमुच हमारी भाषामें उसके परिज्ञानके अर्थ भी ग्रन्थोंका अभाव है। क्या चन्द, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, भिखारीदास, देव, प्रताप, सुखदेव, मतिराम, भूषण, जायसी, रहीम, नरहरि, रघुनाथ आदि अनेक प्राचीन बहुतेरे नवीन ग्रन्थकार और जैसे राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, बाबू हरिश्चन्द्र आदिके ग्रन्थ अपनी भाषाका परिज्ञान भी नहीं करा सकते? अथवा क्या इनकी शिक्षासे कोई लाभ नहीं होता?

कुछ लोग यह भी कहते कि, पुराने ग्रन्थ केवल कवितासम्बन्धी हैं और उनमें प्रायः शृङ्गाररस ही भरा पड़ा है। हम पूछते हैं कि, क्या कविता कोई कामकी वस्तु नहीं है? क्या कोई ऐसी भाषा संसारमें है जिसे अपनी कवितापर अभिमान न हो? भाषाका मुख्य रूप तो कविता ही दिखलाती है। सत्कवियोंके ही मुहाविरे तो साधु प्रयोगोंके साक्षी होते। कोषोंमें प्रायः कविताके ही प्रमाण संग्रहीत होते। कविता साहित्यसदनकी शोभा वरञ्च दीपक है। कविता ही भाषाके आकाशका सूर्य्य है। रहा यह कि शृङ्गार रसका इसमें आधिक्य है। परन्तु यही एक रस है जिसमें सञ्चारी, विभाव, अनुभाव सब भेदों सहित दर्शित होते हैं, अतएव रसराज कहाता है। इसका निरादर जगतकी किस भाषामें दिखाई पड़ता है? अधिकांश इसी रससे तो

संसारका साहित्य लबालब भरा हुआ है। आप कहेंगे कि, इसमें नायक नायिकाओंके भेदविभेद और उनके प्रेमप्रसङ्गसे घृणा है। यद्यपि यह दोष रसका नहीं है, वरञ्च कविका होता है, तो भी इसे जाने दीजिये और यद्यपि प्रेमप्रसङ्गको आप बुरा नहीं प्रमाणित कर सकते, तो भी आलम्बन विभागको छोड़ उद्दीपनको आप भी सराहेंगे। यदि आपको प्राकृतिक सौन्दर्य्यसे भी चिढ़ हो, तो इसे भी छोड़िये और सब रसोंकी जो सामग्री प्राचीन कवियोंने एकत्र कर रक्खी है, आप उसीसे अपना मनोरञ्जन कीजिये। वीर, करुण, शान्त आदि रस और भक्ति, धर्म्म, नीति, इतिहास, पुराण, आचार, मतमतान्तर, कथा, वैद्यक, ज्योतिष, काव्य, कोष, छन्द, अलङ्कार, योग, वेदान्त और विज्ञान आदिके ग्रन्थ भी इसमें न्यून नहीं है और लभ्य भी होते हैं। किन्तु हां, यदि ऐसे ऐसे समालोचकोंके ऐसे ही आलाप जारी रहें, तो लोगोंकी उपेक्षासे वे कुछ दिनोंमें कपूरकी भांति उड़ जायंगे।

साहित्यका संगठन समयके अनुसार हुआ करता है। उस समय, जबके बने वे ग्रन्थ हैं, इससे अधिकको लोगोंको आवश्यकता न थी। रुचि भी ऐसी ही अधिकांश लोगोंकी हो रही थी, विशेषत: हमारे देशके राजा बाबू और अमीरोंका शृङ्गारहीसे काम था; वही उनकी माता थी, उसीकी अधिक संख्या कवितामें पायी जाती है। आज समय दूसरा है, देशकी दुर्दशाने सबकी मुटाई झाड़ दी है, अक्ल ठिकाने आगयी है, अब वे बातें नहीं जंचती। इसीसे आजकी आवश्यकताको आजकालके सुलेखकों और ग्रन्थकारोंको पूरी करना चाहिये। वे ही इसके उत्तरदाता हैं। उन्हें अब अपने साहित्यके शून्य स्थानको भरना चाहिये। लोग इसके लिये सचेष्ट भी हो रहे हैं।

कितनोंका ही कहना है कि, हमारी भाषामें अब जो कुछ नये ग्रन्थ बने भी हैं उनमें प्राय: अनुवादकी संख्या अधिक है। किन्तु क्या अनुवाद कोई वस्तु नहीं और क्या इससे साहित्यको कुछ लाभ नहीं पहुंचता? ऐसी कौन सी उन्नत भाषा है जिसमें अनुवादकी अधिकता नहीं है? जबतक दूसरी दूसरी भाषाओंके उत्तम और अनूठे ग्रन्थोंका अनुवाद नहीं होता, तबतक किसी भाषाका स्थिर महत्त्व स्थापित हो नहीं हो सकता। अङ्गरेजी आदि विदेशी और बङ्गला आदि स्वदेशी भाषाओंके महत्त्वका अधिकांश आधार अनुवाद ही है। हां, अनुवादक और उसका मूल ग्रन्थ अच्छा होना अवश्य चाहिये। व्यर्थ ग्रन्थोंका अनुवाद तो निन्दनीय हुई है। हमारी भाषाको विविध भाषाओंके सद्-ग्रन्थोंके अनुवादकी अभी बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत और अङ्गरेजीके अतिरिक्त स्वदेशी भाषाओंमें भी अनुवादकी उत्तमोत्तम सामग्री भरी पड़ी है जिसका सञ्चय करना बहुत ही आवश्यक है। अस्तु।

महाशयो, आप लोगोंमेंसे जो अपनी भाषाके उद्धारके अर्थ उद्योगतत्पर हुए हैं,

उनका सबसे प्रथम यही कार्य्य है कि, वे अपने उदासीन भाइयोंको उपेक्षाकी निद्रासे जगावें और अपने स्वत्वोंकी रक्षाके अर्थ उन्हें तत्पर करें। शिक्षाके सुधारका प्रश्न सबसे अधिक महत्त्वका है, उसके अर्थ आपकी प्रथम चेष्टा होनी चाहिये।

क—हिन्दी टेक्स्टबुक कमेटियोंमें अपने सुयोग्य प्रतिनिधियोंके प्रवेशका यत्न कीजिये और करते ही चले जाइये। वर्त्तमान सुयोग्य समितियों और अन्य विद्वानोंसे सहायता लीजिये।

ख—केवल गवर्नमेण्टके ही आसरेपर न रह, जिसमें संस्कृत अङ्गरेजीके संग अपनी भाषाकी वास्तविक शिक्षा मिले, इसका प्रबन्ध कीजिये।

ग—ईश्वरकी कृपासे जब आपका काशी हिन्दू विश्वविद्यालय खुले, तो उसमें अपनी भाषाकी उचित और प्रौढ़ शिक्षाका प्रबन्ध कीजिये।

घ—खेदका विषय है कि, भारतभास्कर महामान्य श्रीमान् गोखले महाशयका शिक्षा-सम्बन्धी प्रयास सिद्ध न हो सका। किन्तु हर्षका विषय है, सरकार शिक्षाप्रसारका दृढ़ सङ्कल्प कर उद्यत हुई है। ऐसे समय उस शिक्षाके सुधार और उसको यथोचित लाभप्रद बनानेमें यत्नवान् हूजिये और साम्राज्यकी सहायता कीजिये।

ङ—उच्च शिक्षामें अपनी भाषाको भी पहुंचानेका प्रबल प्रयत्न कीजिये, जिसमें बी० ए० और एम० ए० की श्रेणियोंमें इसे भी स्थान मिले।

इसके लिये आपको प्रथमसे ही अपने साहित्यकी अङ्गपुष्टि करनी होगी। इसीसे सामान्य और उच्च शिक्षाके उपयोगी ग्रन्थोंके निर्माणका यत्न करना चाहिये, पुराने सद्ग्रन्थोंके अच्छे संस्करण निकालने चाहिये।

च—आप अपने इस सम्मेलनको पूर्ण परि-पुष्ट कीजिये। इसकी शक्तिको बढ़ाइये, परस्परके बैरविरोध और ईर्षाद्वेषको दूर रखिये और इसकी सम्मिलित शक्तिसे लाभ-वान् हूजिये। आप लोग बहुत पिछड़ गये हैं, आपको अभी बहुत कुछ करना है। आपने अभी किया ही क्या है? आप तो अभी उन्हीं सत्वोंसे हाथ धोये बैठे हैं, कि जिन्हें आपके पड़ोसी भाई मुद्दतोंसे भोग रहे हैं।

सर्वप्रथम आपको अपने प्रदेशके राज-कार्य्यालयोंमें अपनी भाषाके प्रवेशका उद्योग करना चाहिये। सरकारने भी इसकी आज्ञा दे रक्खी है। अब उसमें आपकी उद्योग-शिथिलता ही बनीबनायी बात बिगाड़ रही है। उसके अर्थ अब अत्यन्त तीव्रतासे यत्न कीजिये। आर्य्यजाति मात्रको इसपर प्रण कर लेना चाहिये कि, एक चिट्ट भी अपने अक्षरोंको छोड़ दूसरेमें कदापि किसी राज-कार्य्यालयमें न देंगे और न देने देंगे। ये अदालती अमले कहांतक विघ्न करेंगे? विघ्नसे न डरना चाहिये। राजर्षि भर्तृहरिकी

शिक्षाको अपना मूल मन्त्र बना लेना चाहिये। दूसरा कर्त्तव्य आपका उतने ही महत्त्वका अपनी भाषाकी शिक्षाके सुधारका है, जिसकी दुर्दशाका अन्त नहीं है और बिना जिसके सुधरे कोई सुधार अथवा निस्तार नहीं हो सकता। इसके लिये आपको कई प्रकारके उद्योग करने पड़ेंगे।

इति।

सभापति महाशयकी दीर्घ पर ललित और उपदेशपूर्ण वक्तृता समाप्त होते ही स्वा० का० समितिके मन्त्री बाबू राजेन्द्र-प्रसादने उन सज्जनोंके नाम पढ़ सुनाये, जिन्होंने तार वा पत्र भेजकर सम्मेलनके साथ सहानुभूति दिखलायी थी। उनके नाम परिशिष्ट (क)में दिये गये हैं।

इसके बाद पं० लोचनप्रसाद पाण्डेयने अपनी "बङ्गलाके प्रति हिन्दी" शीर्षक कविता पढ़ सुनायी और तत्पश्चात् विषय-निर्व्वाचनसमिति सङ्गठित हुई। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन एम० ए०, एल० एल बी०के प्रस्ताव तथा सब लोगोंकी सम्मतिसे यह निश्चित हुआ कि, विषयनिर्व्वाचनसमितिमें बाहरके सब प्रतिनिधि और कलकत्तेके उन सभ्योंको छोड़कर जो स्थायी समितिके सदस्य हैं, २६ सदस्य लिये जायं।

अन्तमें सन्ध्याको ६॥ बजे सभा विसर्जित हुई।

रातको ८॥ बजेसे १ बजेतक विषय-निर्व्वाचनसमितिकी बैठक हुई।

दूसरा दिन।

दूसरे दिन सम्मेलनकी बैठक ठीक १२॥ बजे आरम्भ हुई। प्रायः ढ़ाई हजार मनुष्योंकी उपस्थिति थी। सङ्गीतालयके अध्यक्ष सङ्गीताचार्य्य श्रीयुत मुन्शी भृगुनाथ जी वर्म्माके दलके लोगोंने बड़े ही मधुर स्वरमें सवाद्य निम्नलिखित गीत गाकर कार्य्यारम्भ किया।

गीत।

(१)

कामोद—झपताला।

विघ्नहर गौरीसुत जगत्मङ्गलकरन।
बुद्धिदायिनी गिरा पापहर सुरसरी॥
जगत्पोषक मनहु चतुर्भुज लक्ष्मीपति।
तिमिरहर दिवसपति दुष्टहर नरहरी॥
कुमतिहर साधुसङ्ग आत्मविज्ञानरङ्ग।
हरन सन्देह जग सरस लिपि नागरी॥
सेइये सर्व्वदा दयामयी मातु इव।
हिन्दीसाहित्य "भृगु" सर्वगुणआगरी॥

(२)

सिन्धुरा-धमार।

आज शुभ दिवस मङ्गरत सकल हिये
अस छायो सुखद विचार।
भारतवासी भ्राता हिलि मिलि
हिन्दी करत प्रचार॥
करि करि कृपा आये देश देशते
सम्मेलन हितकार।
स्वागत कलकत्तावासी "भृगु"
देत है बारम्बार॥

झंझोटी—जिला कहरवा।

सबसे विनय करों कर जोर
सभ्य सभामें पधारन वाले।
हिन्दी कहै पुकार पुकार
मैं सब विधि करूं उपकार॥
क्यों मोहि तजते हैं नरनार
श्रीभारतके रहनेवाले।
यह कैसी अविद्या छाई
सब अपनो भाव भुलाई।
कछू अद्‌भुत भेख बनाई
अन्यान्य भाषा भाषनवाले।
मानो गङ्गाजल छोड़
पीवें सोडा लिमिनेट घोर।
नासें कल्पवृच्छ बरजोर
आंक धतूर लगानेवाले।
सब मिलि करो मेरो उद्धार
तुम सब सच्चे जग हितकार।
'भृगु' भाषें बारम्बार
सबके मङ्गल चाहनेवाले।

इन सब साधारण कार्य्यों के हो जानेके उपरान्त प्रस्ताव उपस्थित करनेकी बारी आयी। सबसे प्रथम मान्यवर सभापति महोदयने निम्नलिखित दो प्रस्ताव किये, जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुए।

(१)

राजाधिराज पञ्चम जार्ज महाराजने इस देशमें पदार्पण करके अपनी भारतीय प्रजाको राजमहिषीसहित दर्शन देनेकी जो कृपा और प्रीति दिखायी है, उसके लिये यह सम्मेलन महाराजको सानन्द और सविनय अनेक धन्यवाद देता है।

सभापतिद्वारा प्रस्तावित।

[२]

पं० मोहनलाल विष्णु पंड्या,
पं० सखाराम गणेश देउस्कर,
पं० उमापतिजी द्विवेदी
(उपनाम नकछेदीरामजी)
पं०चन्द्रभूषण चतुर्वेदी साहित्यव्याकरणाचार्य्य
बाबू साधुचरणजी,
बाबू रतनचन्दजी वकील,
बाबू हरनामसिंह वर्म्मा,
पं० भगवानदीनजी मिश्र,
पं० बालगोविन्द तिवारी,
सेठ रामनारायण राठी,
माननीय वी० कृष्णस्वामी ऐयर,

इन हिन्दीहितैषी महानुभावोंकी मृत्यु-पर यह सम्मेलन शोक और उनके कुटु-म्बियोंके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता है।

सभापति द्वारा प्रस्तावित।

इसके अनन्तर साहित्याचार्य्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा एम० ए० ने अपना "हिन्दीमें विश्वकोषकी अपेक्षा" शीर्षक लेख पढ़ा। इनके बाद श्रीयुत काशीप्रसाद जाय-सवाल बी० ए० (आक्सन) बार-एट-ला-की अनुपस्थितिमें पण्डित जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदीने जायसवालजीके लिखे राजनीतिविषयक लेखका कुछ अंश पढ़ सुनाया। लेखपाठके अनन्तर आपने सूचना

दी कि, मेरे बाद अध्यापक श्रीयुत विनयकुमार सरकार महोदय एम० ए० "हिन्दू साहित्य प्रचारक" शीर्षक लेख पढ़ेंगे। सूचना देते हुए आपने कहा—"सरकार महोदय कलकत्ता विश्वविद्यालयके बड़े कृतविद्य सज्जन हैं। आप एम० ए० तककी परीक्षा बड़ी सफलतासे पास कर आजकल बंगाल नेशनल कालेजमें राष्ट्रनीतिके अध्यापक हैं। आपने बहुत सी बड़ी ही अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं और हिन्दी आपकी भाषा न होनेपर भी आप इसके बड़े हितैषी हैं।" इस सूचनाके बाद सरकार महोदयने लेखपाठ आरम्भ किया। कियदंश पढ़े जानेके बाद बाबू मुकुन्दीलाल वर्म्माने अवशिष्टांश पढ़ सुनाया।

लेखपाठके अनन्तर सभापति महोदयने गायनाचार्य्य पं० विष्णु दिगम्बरजीसे "सङ्गीत और साहित्य" विषयपर वक्तृता देनेका अनुरोध किया। गायनाचार्य्यजीकी वक्तृताका सारांश इस प्रकार है ;—

सङ्गीत और साहित्यमें क्या मेल है और इस मेलके न होनेसे देशकी क्या हानि हुई है, यह कहनेके लिये मेरा बड़ा उत्साह है। पर इसमें एक कठिनाई है। मैं महाराष्ट्रीय हूं, इस कारण मेरे शब्दोंमें कुछ भूलें हो सकती हैं। पर महात्मा सूरदासने कहा है ;—

बन्दौं श्री हरिपद सुखदाई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै,
अधोंको सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै गूंग पूनि बोलै,
रंक चढ़ै सिर छत्र धराई॥
सूरदास स्वामी करुणामय,
बारंबार नमो तेहि पाई।

यहां सूरदाससे मेरा भी कुछ सादृश्य है। अतएव अब मुझे कोई डर नहीं है। आप मेरी भूलचूक सब सुधार लेंगे।

सूरदासके साथ मेरा दूसरा सम्बन्ध भी है। मेरा आजका भाषण सङ्गीतके विषयमें है। सूरदासमें साहित्य और सङ्गीतका पूरा मेल था। सूरदास सङ्गीतके बड़े ज्ञाता थे। मैं सङ्गीतमें प्रवीण नहीं हूं, पर मुझे जातिका अभिमान है। सूरदासके विषयमें कहा गया है—

सूर सूर तुलसी शशी,
उड़गण केशवदास।
अबके कवि खद्योतसम
जहं तहं करहिं-प्रकाश॥

इससे कोई कविमण्डली मुझपर कहीं क्रुद्ध न हो जाय। आजकल घर घरमें कवि हैं, पर क्या कारण है कि, सूरदासके सदृश कोई कवि आज उत्पन्न नहीं होता? कारण यही है कि, अब सङ्गीत और साहित्यमें वह मेल नहीं है जो पहले था। एक समय था जब सङ्गीतवाले क्या देव क्या राक्षस सभीको मुग्ध कर देते थे। लोग कहते हैं कि, नारद मुनि लड़ाई फैलाया करते थे। बात यह है, कि उनकी वीणामें ऐसी शक्ति थी जिससे लोगोंके होश बिलकुल जाते रहते थे जब वे जैसा चाहते थे उनसे करा लेते थे।

साहित्य और सङ्गीतका मेल सोना और सुगन्धका मेल था। जबतक स्वरका प्रेम न हो भीतरसे शब्द नहीं निकल सकते। साहित्यमें सातों स्वरोंका मिलन होनेसे आनन्द होता है। वह न होनेसे उलटा पुलटा जमाना आगया था। सङ्गीतवालोंने साहित्यको खा डाला था। जब वे गाते थे तब उनके गीतमें शब्द नहीं निकलते थे। आ आ ई ई ऊ ऊ की ध्वनिके सिवा और कुछ सुनायी नहीं देता था। इस प्रकार अपना नाश होते देख साहित्य सङ्गीतसे अलग हो गया। साहित्यको जान पड़ा कि, सङ्गीत प्रतिष्ठित लोगोंके अध्ययन करने योग्य नहीं है। इससे इन दोनोंका सम्बन्ध टूट गया। पर अब फिर दोनोंके मिलकर काम करनेका समय आगया है। भारतकी उन्नतिके साथ साथ साहित्यकी उन्नति हो रही है। उसीके साथ अब सङ्गीतकी भी उन्नति होने लगी है। मैं चाहता हूं कि, साहित्य और सङ्गीतका सम्बन्ध स्थायी हो।

जबतक साहित्यकी उन्नति न होगी, तबतक सङ्गीतकी उन्नति नहीं हो सकती। कारण, शरीरको छोड़ आत्माकी उन्नति नहीं हो सकती और साहित्य और सङ्गीतमें शरीर और आत्माका सम्बन्ध है। जबतक साहित्य और सङ्गीत एक साथ न मिल जायं, तबतक जगतकी रचना अधूरी ही रह जायगी।

मेरा गन्धर्व महा विद्यालय सङ्गीतकी उन्नतिके लिये स्थापित हुआ है। आज बारह वर्षके बाद मुझे साहित्य-सम्मेलनकी बैठकमें सम्मिलित होनेका सुयोग मिला है। मैं समझता हूं कि, यह और बारह वर्षमें साहित्य और सङ्गीत एक होजानेकी अग्रिम सूचना है।

गत अक्तूबरमें मेरी मण्डली महाराष्ट्रसाहित्यसम्मेलनमें बुलायी गयी थी। उसी समय मैंने समझा था कि, साहित्य और सङ्गीतके एक होजानेका समय आ रहा है।

परन्तु वह बुलाहट कोई बड़ी बात न थी, क्योंकि मैं महाराष्ट्रीय हूं। पर इस सम्मेलनमें सम्मिलित होनेसे यह बात स्पष्ट जान पड़ती है कि, साहित्य और सङ्गीतकी एकता शीघ्र होनेवाली है। मैं पहले बांकीपुर जानेवाला था, पर कई कारणोंसे कलकत्ते आ पहुंचा अवश्य ही यह ईश्वरकी प्रेरणा थी कि, मैं इस समय कलकत्ते आ गया। आपका यह तीसरा सम्मेलन है और सङ्गीतका तीसरा स्वर गन्धार है, जो सब स्वरोंमें मधुर है। अतएव इससे भी साहित्य और सङ्गीतका मेल प्रकट हो रहा है। मुझे पहले बड़ा भय हुआ था कि, कहीं कोई मेरे तम्बूरेको सम्मेलनमण्डपमें घुसने न दे। पर जब मैंने इससे "भारत-मित्र"का सम्बन्ध देखा, तब मेरा भय जाता रहा। मैंने समझ लिया कि, जो भारतका मित्र है वह सङ्गीतका अमित्र कभी नहीं हो सकता।

महाशयो! मैं पहले ही कह चुका हूं कि, महाराष्ट्रसाहित्यसम्मेलनमें मुझे स्थान मिलना

कोई प्रशंसाकी बात न थी। पर हिन्दी सबसे विस्तृत भाषा है। इसके सम्मेलनमें स्थान मिलना मेरे लिये अवश्य ही बड़ी प्रशंसाकी बात है। स्वागतकारिणी समितिके सभापति महाशयने अपने भाषणमें हिन्दीप्रचारके कई उपाय बताये हैं। मैं चाहता हूं कि, उनके साथ गान भी जोड़ दिया जाय। हिन्दीगाना सब जगह सिखाया जाता है। मद्रास, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात,—सभी स्थानोंमें लोग हिन्दी गीत गाते हैं। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि, हिन्दीभाषा युरोपमें भी फैल जाय। मैं सब जगह हिन्दीमें ही भाषण करता हूं। महाराष्ट्रमें भी मैं हिन्दीमें बोलता हूं। पूनेमें लोगोंने मुझसे पूछा कि, तुम महाराष्ट्री क्यों नहीं बोलते, तो मैंने उत्तर दिया कि, हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी, इस कारण मैं हिन्दी ही बोलता हूं।

मैं आप लोगोंका बहुत समय लेना नहीं चाहता। केवल एक बात कहकर मैं समाप्त करता हूं। साहित्य और सङ्गीतका सम्बन्ध दृढ़ करनेके लिये कल इसी मण्डपमें मेरी मण्डलीका जलसा होगा और उससे जो आय होगी उसका आधा भाग मैं सम्मेलनको दूंगा। मैं लालच नहीं दिखाता, पर यह मेरी तुच्छ भेंट है। मैं सारी आमदनी दे देता, पर विद्यालयका काम भी आपका ही है और दूसरा कारण यह भी है कि, मैं विष्णु-दिगम्बर हूं। दिगम्बरसे और अधिक आपको क्या मिलेगा। अब मैं यह भजन गाकर समाप्त करता हूं—

जब जानकीनाथ सहाय करें,
तब कौन बिगाड़ करे नर तेरो।
सूरजमंगल सोम भृगुसुत,
बुध अरु गुरु वरदायक तेरो

इत्यादि

श्रीयुत पण्डित विष्णुदिगम्बरजीके आसनग्रहण कर चुकनेपर श्रीयुत पं० रामजी लाल शर्म्माने सम्मेलनके स्थायी कोषके लिये अपील की। आपने जो कुछ कहा उसका सारांश यह है :—

सज्जनो!

सभापति महाशयने मुझे आपसे कुछ निवेदन करनेकी आज्ञा दी है। मुझे आशा है कि, आप मेरी बातोंको कृपा कर सुनेंगे। पण्डित विष्णुदिगम्बरजीके व्याख्यानमें आपने हिन्दीके महत्त्वके विषयमें बहुत कुछ सुना है। आप स्वयं भी अनुभव कर रहे होंगे कि, हिन्दी एक दिन भारतकी राष्ट्रभाषा बनेगी। महाराष्ट्र आदिके लोग भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करने लगे हैं कि, यदि कोई भाषा भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा होनेकी योग्यता रखती है, तो वह हिन्दी ही है, और यदि कोई लिपि भारतकी राष्ट्र-लिपि हो सकती है, तो वह देवनागरी लिपि है।

ये बातें अब निश्चित हो चुकी हैं। अब केवल देखना है कि, यह कार्य्य कैसे सम्पन्न हो सकता है। जिस भाषाकी श्रीवृद्धि कर सूरदास, तुलसीदास, केशवदास आदि अपना नाम अमर कर गये हैं, जिसको अल-ङ्कृत करनेके लिये बहुतसे कवियोंने कठिन

परिश्रम किया है, उसकी उन्नतिके लिये आप सज्जन क्या करना चाहते हैं ?

अभी आपको हिन्दीमें बहुत से ग्रन्थ लिखाने हैं, प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन और नवीनोंका प्रकाशन करना है तथा हिन्दीके सम्पादक, लेखक और ग्राहकोंको उत्साहित करना है। यह सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन है, पर इतनेसे ही कुछ कुछ आशा होती है क्योंकि, सम्मेलनके प्रभावसे कई हिन्दू नरेशोंका ध्यान हिन्दीकी ओर गया है। मुझे आशा है कि, दस वर्षोंमें हिन्दीका स्वराज स्थापित हो जायगा। वह दिन दूर नहीं है, जब यहांके विद्यार्थी केवल हिन्दी पढ़कर सब विषयके ज्ञाता हो सकेंगे।

पर यह काम कठिन है। देवनागरी लिपिका प्रचार और हिन्दी साहित्यका भाण्डार पूर्ण करनेके लिये पैसेकी आवश्यकता है। आप जानते हैं, पैसेके बिना कोई कार्य्य नहीं चल सकता। सम्मेलनकी स्थायी समितिके निकट इतने पैसे नहीं हैं, जिससे इसका कार्य्य उचित रूपसे चल सके। मुझे बड़ा दुःख है कि, जिस भाषाका इतना प्रचार हो, उसकी एकमात्र समितिके निकट पूरी रकम न हो। आशा है कि, प्रत्येक हिन्दीभाषी और हितैषी क्षमतानुसार इसकी सहायता करेंगे।

हिन्दीप्रचारसे देशका क्या लाभ हुआ है, इस सम्मेलनने अप्रत्यक्षरूपसे कितना काम किया है, यह मन्त्रीकी रिपोर्टसे मालूम हो जायगा। गत नौ वर्षोंमें हिन्दीमें जितनी अर्जियां अदालतोंमें दी गयी थीं, स्थायी समितिके उद्योगसे उतनी एकही वर्षमें दी गयी हैं। इस विषयमें बहुत कुछ कार्य्य हो रहा है। पर कोष शून्य है।

हिन्दीप्रेमी सज्जनो! आपका कर्त्तव्य है कि, हिन्दी भाषाके प्रचारके लिये, सम्मेलनके प्रचार और सफलताके लिये; देशकी भलाईके लिये—क्योंकि एक भाषा और एक लिपिके बिना देशकी उन्नति नहीं हो सकती है—आप सचेष्ट हों। यदि कोई विदेशी पूछे कि, भारतकी कौन भाषा और कौन लिपि है, तो उसका उत्तर देते, कुछ नहीं बनता। इसी कलङ्कको मिटानेके लिये सम्मेलनका जन्म हुआ है। वह लोगोंको समझा देगा कि, हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा और देवनागरी इसकी लिपि है।

सज्जनो! आप जानते हैं कि, कांग्रेसका कार्य्य आगे क्यों नहीं बढ़ता? मैं समझता हूं, इसका मुख्य कारण यह है कि, देशमें जिनकी अधिक संख्या है उनकी कानोंतक यह बात नहीं पहुंचती है कि, कांग्रेस क्या चीज है। इस कारण जबतक सब कार्य्य ऐसी भाषा द्वारा न हो जिसे सबलोग समझ सकें, जबतक ऐसी कोई भाषा न हो सके जिसमें सब प्रान्तोंके लोग आपसके कार्य्य कर सकें, तबतक देशकी उन्नति नहीं हो सकती। अतएव हमें ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि, जिससे कांग्रेसके कामोंमें हिन्दी व्यवहृत होने लगे।

इस कार्य्यके संचालनके लिये पहले सम्मेलनमें निश्चित हुआ था कि, पैसा-फण्डके नामसे एक फण्ड खोला जाय और उसमें पैसे इकट्ठे किये जायं।

सज्जनो! मैं उसी पैसाफण्डके लिये अपील करनेको उपस्थित हुआ हूं। यह अपील भारतकी उस महानगरीमें हो रही है, जिसका नाम सारे भारतमें प्रसिद्ध है, जहांके धनकुबेरोंने बड़े बड़े अनुष्ठानोंमें सहायता दे अपना नाम आदृत कर रखा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि, मातृभाषाकी सेवाके लिये यदि इस यज्ञमें आहुति देना पड़े, यदि आपको पाकिट खाली करनी पड़े, तो आप पश्चात्पद नहीं होंगे। इस वृक्षको हरित, भरित, फलित और पुष्पित करनेके लिये सींचन करनेकी आवश्यकता है। आशा करता हूं, आप इस आवश्यकताको पूर्ण करेंगे। अभी तुरत ही विष्णु दिगम्बरजीने एक रातकी आयका आधा हिस्सा सम्मेलनफण्डमें देनेका वचन दिया है। इसके लिये उनको धन्यवाद है। मेरे कानोंमें ध्वनि आ रही है कि, और भी बहुतसे सज्जनोंने इस फण्डके लिये दान देना स्वीकार किया है। उनके नाम मन्त्रीजी आपको सुनावेंगे। आशा है, आप भी योग्यतानुसार यत्किञ्चित् देकर मातृभाषाकी सेवामें अग्रसर होंगे। (करतलध्वनि)

श्रीयुत पण्डित रामजीलाल शर्म्माके आसन ग्रहण करनेपर मन्त्री महोदयने रकमके साथ उन सज्जनोंके नाम पढ़ सुनाये जिन्होंने दान देना स्वीकार किया था। इसके अनन्तर बहुत से उपस्थित सज्जनोंने सम्मेलनके सहायतार्थ दान देनेका वचन दिया। बहुतसे सज्जनोंने तो उसी समय नगद रकमें दे दीं।

(दान देनेवालोंके नाम परिशिष्ट "ख"में देखिये।)

इसके अनन्तर श्रीयुत पं० वैजनाथजी चौबेने तीसरा प्रस्ताव उपस्थित किया।

तीसरा प्रस्ताव।

"करेन्सी नोटोंपर नागरी और हिन्दीको स्थान न मिलनेके विषयपर गतवर्ष जो मन्तव्य सम्मेलनने स्वीकार किया था तथा भारत-सरकारकी सेवामें भेजा जा चुका था उसके उत्तरमें अपने नं० २५७९ ता० १९ एप्रिल सन् १९१२ ई० के पत्रमें आश्वासन देकर भी सरकारने अबतक नोटोंपर नागरी और हिन्दीको स्थान नहीं दिया है, यह देखकर इस सम्मेलनको बहुत दुःख हुआ है तथा वह सरकारसे इस विषयपर विचार करनेकी पुनः प्रार्थना करता है और आशा करता है कि सरकार इस ओर शीघ्र ही ध्यान देगी।"

इस प्रस्तावके उपस्थित करनेमें आपने कहा:—

सज्जनो!

परमात्माकी सृष्टिमें एक आवश्यक नियम यह है कि, लोग एक दूसरेको सुभीता दें। यदि यह न हो, तो सृष्टिके सब कार्य्य बन्द हो जायं। एक २० फीट चौड़ी सड़क-

पर एक साथ २० आदमी नहीं चल सकते। इसी नियमके अनुसार गवर्न्मेंट और प्रजा दोनोंके कार्य्य हो रहे हैं। सरकारी नोट प्रजाके सुभीतेके लिये ही है। पर नोटोंपरसे हिन्दी लिपि उठ जानेसे यह सुभीता अब जाता रहा। भारतके प्राय: प्रत्येक प्रान्तके लोग हिन्दी लिपि जानते हैं, अतएव केवल इससे ही सर्वसाधारणका कार्य्य चल सकता है। दिहाती लोगोंके लिये तो हिन्दी लिपिका उठ जाना बड़ा ही दु:खद है, क्योंकि वे अब नोटोंको न पहचान सकेंगे। इससे सरकारको भी हानि पहुंचेगी। कारण, नोटोंका अधिक प्रचार तभी सम्भव है, जब उसे अधिक लोग पहचान सकें। इसलिये सरकारसे प्रार्थना है कि, वह इस विषयपर पुनर्विचार कर हिन्दी लिपिको भी नोटोंपर स्थान दे।

इस प्रस्तावका अनुमोदन श्रीयुत पं० सूर्य्यनारायणजी दीक्षित एम० ए० एल० एल० बी० ने और समर्थन श्रीयुत पं० इन्द्रनारायण जी द्विवेदीने किया। पं० इन्द्रनारायण जीने कहा कि, मैं दिहाती हूं, इससे मैं अच्छी तरह कह सकता हूं कि, नोटोंपरसे नागराक्षर उठजानेसे लोगोंको कितना कष्ट हो रहा है। सरकार शायद समझती है कि, लोग उर्दू लिपि जानते हैं। पर यह उसकी भूल है। दिहाती लोग साधारणत: नागरी लिपिको छोड़ और कोई लिपि नहीं जानते हैं। इस कारण आजकलके नोटोंको पहचानना उनके लिये बड़ा ही कठिन होगया है।

यह प्रस्ताव सर्व्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ। इसके अनन्तर बाबू शिवप्रसाद गुप्तने चौथा प्रस्ताव उपस्थित किया। प्रस्ताव इस प्रकार है :—

चौथा प्रस्ताव।

"इस सम्मेलनके विचारमें विज्ञान, शिल्प, इतिहास और व्यापार सम्बन्धी साहित्यकी हिन्दीमें बड़ी आवश्यकता है। सम्मेलन हिन्दी लेखकोंका ध्यान इन विषयोंकी ओर आकृष्ट करता है और हिन्दी साहित्य-सभाओंसे भी अनुरोध करता है कि, वे अपने उद्योगसे इन विषयोंपर पुस्तकें तैयार करावें।

सम्मेलनकी स्थायी समितिको इस आवश्यक कार्य्यमें यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करना चाहिये। वह पदक, प्रशंसापत्र आदि देकर ग्रन्थकारोंकी उत्साहवृद्धि करे तथा आवश्यकता होनेपर उन्हें पुस्तकप्रकाशनमें यथासम्भव सहायता दे।"

प्रस्ताव उपस्थित करनेमें आपने कहा :—

मुझे हर्ष है कि, आप लोगोंने मुझे किसी अन्य व्यक्तिसे प्रार्थना इत्यादि करनेका प्रस्ताव नहीं सौंपा है। मैं इसमें अपना गौरव समझता हूं कि, मुझे स्वयं अपने भाइयोंसे ही विनीत प्रार्थना करना है और यह मेरा सौभाग्य है।

मैं आपके सम्मुख इस प्रस्तावको उपस्थित करता हुआ, इसके सम्बन्धमें कुछ थोड़ी बहुत बातें कहनेकी आज्ञा चाहता हूं।

संसारकी बाल्यावस्थामें जब मानव-जातिका प्रादुर्भाव हुआ होगा, तब आपसमें एक दूसरेको अपने मनोभावका परिचय देनेकी आवश्यकता हुई होगी। मनके भाव कई प्रकारसे व्यक्त किये जा सकते हैं। बहुत सी मोटी बातें केवल संकेतोंहीसे जनायी जा सकती हैं, पर और विचारोंके बतलानेके लिये कुछ बोली या बातकी आवश्यकता पड़ती है। इसीको भाषाका आरम्भ कहना चाहिये। पर जैसे जैसे विचार बढ़ने लगे और मनुष्यका ज्ञान बढ़ने लगा, वैसे ही वैसे उनका परिचय देनेके लिये भाषाको प्रौढ़ करना पड़ा होगा और वैसे ही वैसे शब्दोंकी संख्या बढ़ती चली गयी होगी और धीरे धीरे जब केवल बोलनेसे ही सब कामका निकल जाना कठिन होता गया होगा, तो वैसे ही वैसे लिखनेका भी प्रचार प्रारम्भ हुआ होगा।

लेखनके प्रादुर्भावका एक और भी कारण हो सकता है और वह यह है कि, जब एक मनुष्यको अपने विचारोंको दूर-देशीय भाईपर प्रकट करनेका कारण उपस्थित हुआ होगा, तब विचारोंको लेखबद्ध करके उन्हें दूर देशमें भेजनेकी प्रथा प्रचलित करनी पड़ी होगी। इसके अनन्तर उन्हीं उत्तम विचारोंके समूहको आनेवाली सन्तानोंतक पहुंचानेके लिये और उन्हें चिरकालतक जीवित रखनेके लिये उन्हें इकट्ठा करके रखनेकी प्रथा चली होगी। विचारोंके इसी समूहके एकत्र लेखबद्ध स्वरूपको पुस्तक कहते हैं।

संसारके आगे बढ़नेपर ज्यों ज्यों मानव-जाति पुष्ट होने लगी होगी और उनके विचार गम्भीर और प्रतिभाशाली होने लगे होंगे, त्यों त्यों उन्हें संरक्षित रखनेकी अधिक अधिक आवश्यकता पड़ने लगी होगी। इसीसे शिलालेख, ताम्रपत्र आदि लेख तदनन्तर पत्तों और वृक्षोंकी छालोंपर लिखना आरम्भ हुआ होगा। कदाचित् इसी कारण कागजको संस्कृत भाषामें पत्र कहते हैं।

बहुत दिन पीछे चीनदेशनिवासी एक विज्ञानवेत्ताने एक पुस्तककी बहुत सी प्रतियां सुगमता और अल्प व्ययसे निकालनेके लिये छापेकी युक्ति निकाली। अब छापेकी सहायतासे एक पुस्तककी, बातकी बातमें, सैकड़ों वा सहस्रों प्रतियां निकल सकती हैं और इसका उपयोग भी हो रहा है। छापेहीकी बदौलत अब इतनी पुस्तकें निकलने लगी हैं कि, जिनमें यह छांटकर निकालना कि, कौन पुस्तक उपयोगी है, अत्यन्त कठिन हो गया है।

पुस्तकका काम अच्छे विचारोंको मनुष्यों-तक पहुंचाना है, जिसमें एक ही विचारके ऊपर हर एक मनुष्यको पृथक् पृथक् श्रम न उठाना पड़े, और जो ज्ञान एक बार प्राप्त हो चुका है, उससे सबको लाभ हो, उसको फिरसे प्राप्त करनेमें समय न लगे, और मनुष्यको, कमसे कम समयमें, अधिकसे अधिक ज्ञान प्राप्त हो सके। ऐसे उपायको शिक्षा कहते हैं।

ज्ञानकी आवश्यकता, प्रत्येक मनुष्यको

अपने जीवनको सुखी बनाकर और उसके महत्त्वको समझकर मानव जातिको उस लक्ष्यके निकट पहुंचाना है, जिसके लिये उसकी उत्पत्ति हुई है। यदि उपर्युक्त विचार सामने रखकर शिक्षाके भाग किये जायं, तो वह मानवजीवनके आवश्यकतानुसार ५ मोटे भागोंमें विभक्त हो सकती है;—

(१) जो प्रत्यक्ष रूपसे मनुष्यकी प्राणरक्षासे सम्बन्ध रखती है।

(२) जो परोक्ष रीतिसे मनुष्यकी जीवनरक्षामें सहायक होती है।

(३) जो सन्तानके पालनपोषण और शिक्षण आदिसे सम्बन्ध रखती है।

(४) जिसकी आवश्यकता समाजनीति और राजनीतिकी उचित व्यवस्थाके लिये होती है।

(५) जो और कार्य्योंसे अवकाश पानेपर मनोरञ्जनके लिये आवश्यक हो।

उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि, इन शिक्षाओंके लिये विज्ञानकी कितनी आवश्यकता है। शिल्प, इतिहास और व्यापार सम्बन्धी साहित्यकी भी आवश्यकता मनुष्यके जीवनको सुखी बनानेके लिये कम नहीं है। पर विज्ञानकी शिक्षा इन सब वस्तुओंसे अधिक आवश्यक है, क्योंकि विना उसकी सहायताके इहलोक और परलोकका काम भी पूरा नहीं बन सकता।

अब आप स्वयं विचार सकते हैं कि, आपके साहित्यमें विज्ञानसम्बन्धी पुस्तकोंकी कितनी कमी है और आपका साहित्य कैसा अपूर्ण, निर्बल और अधूरा है। हिन्दीमें ऐसी पुस्तकोंका बाहुल्य है कि, जिनके पाठसे केवल समय नष्ट होता है और अपवित्र विचार उत्पन्न होते हैं।

मेरा लक्ष्य आजकलके बुरे, घृणित उपन्यासोंकी ओर और हमारे देशके अच्छे कवियोंके उन काव्योंकी ओर है जिनमें केवल शृङ्गाररसका ही प्राधान्य है। कदाचित् कोई इससे यह समझे कि, मैं अपने प्राचीन कवियोंपर लाञ्छन लगाता हूं; सो ऐसा कदापि नहीं है। मैं शृङ्गाररसको बेकार नहीं समझता; उससे भी मनुष्यके प्रौढ़ जीवनपर प्रकाश पड़ता है, और यौवनकालमें मनके आह्लादके लिये उसकी कुछ न कुछ आवश्यकता है। पर हमारे साहित्यमें और रसोंका उतना बाहुल्य न देखकर मुझे खेदके साथ यह कहना पड़ता है कि, जिस कालमें हमारे प्रतिभाशाली, प्रातःस्मरणीय कवि हुए हैं उस समय मनुष्योंकी शृङ्गारहीसे अधिक प्रेम था और इसीलिये पूजनीय सूरदासजीतकको भी अपने भक्तिमय पदोंमें भी शृङ्गाररस लाना पड़ा है।

मैं आप लोगोंके सामने बोलनेके समय अपने देशकी आवश्यकता देखकर आपको कटुवचन कहकर अप्रसन्न करनेकी धृष्टता करूंगा। पर आपकी प्रसन्नताके लिये अपने सच्चे भावोंको छिपानेका पाप कदापि न करूंगा। मेरा निजका विश्वास है कि,

शृङ्गारके बाहुल्यने हमारी बड़ी हानिकी है; हमारे पुरुषार्थको कम किया है, हमारे मनुष्यत्व और वीरत्वको कम किया है और हमें एक जीवित जातिसे गिराकर अधमरा बना दिया है। देशका बल और गौरव उसके साहित्यसे जाना जाता है। जब हमारे यहां प्रचण्ड वीरभावकी कविताएं होती थीं, तब पृथ्वीराज, शिवाजी, राणाप्रताप सरीखे वीर पुरुष उत्पन्न होते थे, जिनका नाम लेकर आज हम अपनी बपौतीको स्मरण करते हैं।

हमारे यहां धर्म्म, वेदान्त, गणित इत्यादिकी भी बहुत सी पुस्तकें हैं।

आजकल उदरपोषणके लिये जो कठिनाइयां भिन्न भिन्न जातियोंके आपसमें संघर्षणके कारण उत्पन्न हो गयी हैं, उनके निवारणके क्या उपाय हैं? इस सम्बन्धमें हमारे यहां पुस्तकोंका नितान्त अभाव है। धर्म और वेदान्त हमारा पेट नहीं भर सकता। उनकी अधिक मात्रामें बढ़नेसे हमारा हाल जो हुआ है, उसे एक प्रतिभाशाली कविने बड़े सुन्दर शब्दोंमें कहा है:—

"अपरस, सोल्हा छूत रचि,
भोजन प्रीति छुड़ाय।
किये तीन तेरह सबै,
चौका चौका लाय॥
रचिकै मत वेदान्तको,
सबको ब्रह्म बनाय।
हिन्दुन पुरुषोत्तम कियो,
तोरि हाथ अरु पाय॥

महाराज वेदान्तने बड़ा ही उपकार किया। सब हिन्दू ब्रह्म होगये। किसीको इतिकर्त्तव्यता बाकी ही नहीं, ज्ञानी बनकर ईश्वरसे विमुख हुए, रूक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसीसे स्नेहशून्य हो गये। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धारका प्रयत्न कहां? बस जयशङ्करकी।"

प्रातःस्मरणीय बाबू हरिश्चन्द्रजीने उपर्युक्त सारगर्भित प्रहसनमें वेदान्तका खोखलापन अपनी ओजस्विनी भाषामें प्रकट किया है।

हमें यदि हिन्दीको सार्व्वभौमिक भाषा बनाना है, यदि हमारी यह इच्छा है कि, हमारी मातृभाषा "हिन्दी" सर्वाङ्गसुन्दर हो, उसके भंडारसे हर प्रकारकी आवश्यकता दूर करनेके लिये उससे सहायता मिलसके, तो मेरी अपील पढ़े लिखे नवयुवकोंसे है। भाइयो! लज्जा छोड़ दो, यह विचार मत करो कि, हिन्दीमें लिखनेसे तुम्हारी इज्जत घट जायगी, केवल गिटपिट ही करनेसे तुम सुशिक्षित न समझे जाओगे; जिनकी आंखोंमें तुम अपनी इज्जत बढ़ाना चाहते हो वे ऐसे मूर्ख नहीं हैं कि, तुम्हारी केवल गिटपिटसे खुश हो जायं, क्योंकि उन्हें भी अपनी मातृभाषासे प्रेम है। कोई मातृभाषाका प्रेमी कपूतोंसे कदापि नहीं खुश हो सकता।

जरा अपने बंगाली भाई, मराठे और गुजराती भाइयोंकी ओर आंख उठाकर देखिये। यदि उनमें अपनी मातृभाषाकी

और इतनी उदासीनता होती तो, आज उन्हें सिर ऊंचा करनेका अवसर न मिलता। यदि बंकिम बाबू, रमेशचन्द्र दत्त, नवीनचन्द्र, और रवीन्द्र ठाकुरको बंगलामें लिखनेसे लज्जा आती तो, आज बंगसाहित्य इस संसारमें नहीं तो कमसे कम सारे भारतमें प्रधान आसनपर न होता। जरा आंख खोलकर देखिये कि, संसारमें और भी कोई ऐसी जाति है, जिसमें पढ़े लिखे पुरुषोंको यह अभिमान हो कि, हम अपनी मातृभाषाको नहीं जानते? यह दुर्भाग्य केवल निपूत हिन्दीहीका है, क्योंकि उसीके बोलने-वालोंमें ऐसे सुशिक्षित लोग मिलते हैं, जो ऊंची शिक्षा पानेपर भी अपनी मातृभाषा नहीं जानते।

हमारे यहां अच्छी पुस्तकोंके पढ़ने वालोंका भी अभाव है और इसका कारण स्पष्ट है कि, अच्छी पुस्तकें कम हैं और पढ़े-लिखे लोग, जो गम्भीर पुस्तकें पढ़ सकते हैं, वे प्राय: अपने ज्ञानभंडारकी वृद्धिके लिये विदेशी भाषाकी ही सहायता लेते हैं। मुझे यह भी ज्ञान है कि, जब किसी चीजकी मांग बढ़ती है, तब वह चीज अधिक बनायी जाती है या उसका अधिक संग्रह करके मांग पूरी करनी पड़ती है। पर इसके विपरीत यह भी सत्य है कि, जब कोई व्यवसाय बाल्यावस्थामें रहता है, तब पहले वस्तुओंको एकत्र करके उन्हें दिखलानेकी आवश्यकता पड़ती है और ग्राहकोंको एकट्ठा करना पड़ता है और इस प्रकारसे जब धीरे धीरे उस वस्तुका प्रचार हो जाता है और उसकी ओर मनुष्योंकी रुचि और प्रवृत्ति बढ़ने लगती है, तब उसके लिये पहला सिद्धान्त लगाया जा सकता है। अभी हिन्दीकी अवस्था बाल्यावस्था है, इसमें यह सिद्धान्त नहीं लग सकता कि, जब पुस्तकोंकी मांग होगी तब वे लिखी जायंगी। इस विचारसे उनकी मांग कभी न होगी। अभी लेखकों-को उत्तम उत्तम पुस्तकें लिखनी पड़ेंगी, उनको छपानेमें अपनी गांठका पैसा खर्च करना पड़ेगा और उनको विनामूल्य या कम मूल्यपर बेंच घाटा सहकर उनका प्रचार करना पड़ेगा; तब कहीं थोड़े दिन बाद उपयोगी पुस्तकोंकी ओर लोगोंकी रुचि बढ़ेगी और उनकी मांग होगी। कार्य बड़ा कठिन है, पर न करनेसे भी नहीं बनेगा।

मेरा सविनय अनुरोध और निवेदन लेखकों, हिन्दीकी सभाओं, समाचारपत्रोंके सम्पादकों तथा अन्य विचारवान, विद्यानु-रागी, संस्कृत, अङ्गरेजी और अन्य भाषाओंके पण्डितोंसे है कि, अब आप लोगोंको अपनी आंखें खोलनी चाहिये और अपनी मातृ-भाषाकी पूर्तिके लिये लेखनी उठानी चाहिये। इसका विचार मत कीजिये कि, आपको हिन्दी आती है या, नहीं, क्योंकि बङ्किम बाबूने श्रीयुक्त रमेशचन्द्र दत्तसे सत्य ही कहा था कि, "तुम्हारे जैसा विद्वान् जो कुछ लिखेगा वही साहित्य बन जावेगा।" आवश्यकता अच्छे विचारोंकी है, अच्छा विद्वान जिस भाषामें लिखेगा, उसीमें

अच्छा विचार प्रकट कर सकता है और वही उत्तम साहित्य बन जायगा। सज्जनो! हिन्दीके भाण्डारको विज्ञान, शिल्प, इतिहास, व्यापार, कलाकौशल तथा अनेक अन्य आधुनिक विषयोंकी पुस्तकोंसे भर दीजिये और उस समयतक चुपचाप न बैठिये, जबतक आपकी भाषामें किसी विषयपर उन सब बातोंका भाव पुस्तकरूपमें न आ जाय, जिनका प्रादुर्भाव अथवा आविष्कार इस समयतक संसारके किसी कोनेमें भी हुआ हो।

नागरीप्रचारिणी सभा काशी, आरा, प्रयाग और इंडियनप्रेस, खड्गविलास प्रेस, वेङ्कटेश्वर प्रेस इत्यादि संस्थाएं और प्रेस इस ओर प्रशंसनीय कार्य्य कर रहे है। भारतमित्र, अभ्युदय, वङ्गवासी, सरस्वती इत्यादि पत्र भी जीजानसे प्रयत्न कर रहे हैं कि, यह लाञ्छना दूर हो। आर्य समाज और ईसाई समाज भी हिन्दीके भाण्डारको भरनेमें अपनी योग्यता और बलके अनुसार कार्य्य कर रहे हैं। यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है कि, हमारी मोहनिद्रा धीरे धीरे टूट रही है, पर जैसा कि उसका बेग होना चाहिये वैसा नहीं है। पञ्जाबमें दयानन्द ऐङ्गलो वैदिक कालेज, कन्या महाविद्यालय और गुरुकुलोंने जो उद्योग हिन्दीके प्रचारमें किया है, वह बड़ा प्रशंसनीय और सन्तोषजनक है। पर ओसके चाटनेसे प्यास नहीं मिट सकती। इसलिये मेरा सम्मेलनकी स्थायी समितिके प्रति यह सविनय निवेदन है कि, वह और कार्यों के साथ इस कार्य्यको भी मुख्य और प्रधान समझे कि, लेखकों और विद्वनोंकी एक समिति बनाकर या उनसे पृथक् पृथक् प्रार्थना करके उत्तम पुस्तकोंके लिखवानेका प्रयत्न करे। पर भाइयो, यह काम स्थायी समिति उसी समय कर सकती है, जब उसकी सहायता पूरे तौरपर धन देकर आप करेंगे; क्योंकि ऐसे कार्योंमें धनकी कितनी आवश्यकता होती है, यह आप लोगोंके सम्मुख, जिनमें यहांके सेठ, साहूकार और वणिक समाज भी उपस्थित हैं, कहना व्यर्थ है। आप समितिकी सहायता धनसे कीजिये; उसके स्थायी कोषकी पूर्त्ति उदारतासे दान देकर कीजिये, तो वह भी आपकी सेवा यथोचित रूपसे पुस्तकें भेंट करके करेगी।

इन उपयुक्त वाक्योंसे मैं इस प्रस्तावको आपके सम्मुख उपस्थित करता हूं और आशा करता हूं कि, आप इसको सब प्रस्तावोंसे अधिक आवश्यक समझ कर एक मतसे स्वीकार करेंगे।

इस प्रस्तावका अनुमोदन श्रीयुत बाबू विपिनचन्द्र पालने बंगलामें किया। आपने कहा—मैं हिन्दी नहीं बोल सकता। जब मैं धर्म्मप्रचारार्थ बंगालसे बाहर गया था तब मुझे हिन्दीमें बोलना पड़ा था। पर हिन्दीके धुरन्धर लेखकोंकी सभामें हिन्दी भाषण करनेकी योग्यता मुझमें नहीं है। यदि अधिकतर संस्कृत शब्द मिश्रित कर बंगला धीरे धीरे बोली जाय, तो आप उसे भली भांति

समझ सकते हैं। जब मैं यहां आया था तब मैं नहीं समझता था कि मुझे भी कुछ बोलना पड़ेगा। पर मनुष्यका भाग्य सदा पीछे पीछे चलता है। अतएव वक्ताके भाग्यने मुझे यहां भी नहीं छोड़ा। सज्जनो! मैं यह बात मुक्तकण्ठसे कहनेको तैयार हूं कि, बंगला भाषाकी जननी हिन्दी है। विद्यापति ठाकुरकी पदावली बंगभाषाकी आदि पुस्तकोंमेंसे समझी जाती है। पर जरा विचार कर देखिये तो मालूम होगा कि, इसकी भाषा हिन्दी है। बंगलाका हिन्दीसे सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। हिन्दी प्राकृतकी एकमात्र दुहिता है।

जिस विषयपर बोलनेकी मुझे आज्ञा मिली है, वह बड़ा कठिन है। उसमें आशा और कठिनाई दोनों है। मेरे पूर्व्व वक्ता केवल आशाके ही सम्बन्धमें बोले हैं। मैं भी उसीके विषयमें बोलूंगा, पर साथ ही मैं भयके विषयमें भी कुछ कह देना उचित समझता हूं। विज्ञान, शिल्प आदिमें यदि आप केवल यूरुपका ही अनुकरण करके अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझने लगे, तो उससे आपकी बड़ी हानि होगी, उससे आप पूर्णरूपसे ध्वंसप्राप्त होंगे। जब कभी हम विज्ञानके विषयमें बोलते हैं, तो टिण्डल (Tyndal), हक्सले (Huxley) आदि के ही नाम लेते हैं; यह भूल जाते हैं कि सत्य सार्वजनिक भी है और स्थानीय भी। यदि आप विज्ञानका अनुशीलन करना चाहते हैं, तो आप अपने मस्तिष्कसे काम लीजिये, अपने हाथ पांव चलाकर काम कीजिये, केवल अनुकरणसे कोई लाभ नहीं हो सकता। कलाकौशलादिकी उन्नति युरुपके statistics से नहीं हो सकती। युरुपवासी "रस"से "science of the beautiful" अर्थात् सौन्दर्य्य-तत्त्वका बोध करते हैं। उनके दिमागमें यह नहीं घुस सकती कि, कुरूपतामें भी एक प्रकारका रस है। बच्चोंकी मुसकुराहटमें एक प्रकारका रस है और विक्षिप्तके प्रलापमें दूसरे प्रकार का। इन रसोंके सम्यक् ज्ञान और अनुभवसे ही आपकी ललित कलाओंकी यथार्थ उन्नति हो सकती है।

मान्यवर सज्जनो! इस बातपर अवश्य ध्यान रखिये कि, शिल्पोन्नतिके विषयमें अंगरेजोंकी अन्धाधन्ध नकल करनेसे परिणाम बड़ा ही भयङ्कर होगा। अमरिकाके पूंजीवालों और मंजूरोंका झगड़ा यदि आप यहां भी प्रविष्ट होने दें, तो ख्याल रखिये कि, आपके धर्म, कर्म और जातीयता सबका लोप हो जायगा। हमारे देशमें भी एक समय विज्ञान और शिल्प था और अब भी कुछ है। हमें यह देखना होगा कि, पाश्चात्य शिल्पविज्ञानमें कौन कौन सी बातें हमारे देशके अनुकूल हैं। केवल उन्हीं सब बातोंके ग्रहण करनेसे हमारे शिल्प और विज्ञानकी उन्नति होगी, प्रतिकूल बातोंके ग्रहणसे नहीं। अतएव मेरा निवेदन है कि, शिल्पविज्ञानसम्बन्धी पुस्तक लिखनेके समय आप इन सब बातोंपर अवश्य ध्यान रखें। (करतलध्वनि)

बंगला दैनिकपत्र नायकके सम्पादक श्रीयुत पण्डित पांचकौड़ी बन्धोपाध्यायने इस प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा—संस्कृतमें एक वचन है—"एकां लज्जां परित्यज्य त्रिभुवनविजयी भव" इस कारण मै हिन्दीमें ही बोलूंगा चाहे मेरी भाषा शुद्ध हो या नहीं। मेरे मित्र श्रीयुत विपिनचन्द्रपालने इतिहासके विषयमें कुछ नहीं कहा है। इतिहास उन सबके मूलमें है। जबतक हमें मालूम नहीं कि, हमारे देशमें वेदान्त था, विज्ञान था, कलाकौशल था, तबतक हमें अपनी पूर्ण मर्य्यादा बोध नहीं हो सकती है। प्रकृत इतिहास वही है, जिससे जातिकी आत्मबुद्धिका उन्मेष हो। इतिहासकी चर्चा वही है, जिससे जातिकी उन्नति और अवनतिकी धारा मालूम हो। केवल सलाम करनेसे काम नहीं चलेगा, हां जी, हां जी, कहते रहनेसे इतिहास नहीं तैयार होगा। हमें यह देखना होगा कि, इतने लोग अढ़ाई दमड़ीके लिये—केवल गुलामीके लिये—क्यों लड़ रहे हैं ; हमें ढूंढ़ना होगा कि, हमारी जातिकी इतनी अवनति क्यों हुई है। ये सब बातें जिससे मालूम होंगी वही सच्चा इतिहास है। हम बर्बर या हबशी नहीं थे ; हमारे पूर्वपुरुष बड़े सभ्य थे। इतिहास इसका साक्षी है। आजकलके इतिहास हमें ये सब बातें नहीं बताते। वे केवल यही सिखाते हैं कि, तुम्हारे यहां अमुक अमुक विषयोंके ज्ञाता नहीं थे अथवा औरङ्गज़ेब का पुत्र अमुक था इत्यादि। परन्तु यह इतिहास नहीं है। इससे हमारा काम नहीं चल सकता। अतएव हमें अपना सच्चा इतिहास लिखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। बंगीय साहित्यपरिषद् इस काममें लगी हुई है। मेरे मित्र बाबू राधाकुमुद मुखर्जीने The history of Indian shipping and maritime activities from earliest time. (प्राचीनकालसे भारतके जहाज और सामुद्रिक उद्योगका इतिहास) नामक एक पुस्तक लिखी है। इसकी प्रशंसा अंगरेजोंने भी की है। आपको चाहिये कि इसी प्रकारके इतिहास लिखें। इसके बिना जातिका आत्मबोध नहीं होगा, उसकी पुष्टि नहीं होगी। बंगला भाषाकी पुष्टि इसीसे हुई है और हिन्दीकी भी पुष्टि इसीसे होगी। (करतलध्वनि)

यह प्रस्ताव सर्व्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

इस समय सम्मेलनकार्य्यालयके मन्त्री श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टण्डनने सूचना दी कि, बहुतसे सज्जनोंने आगामी सम्मेलनतक पुस्तक लिखकर सम्मेलन को भेंट करनेकी प्रतिज्ञा की है। उन्होंने विषय सहित उनके नाम पढ़ सुनाये।

पण्डित नर्म्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, एल० एल० बी०, ने तब पांचवां प्रस्ताव उपस्थित किया। प्रस्ताव इस प्रकार है :—

पांचवां प्रस्ताव

यह सम्मेलन नम्रतापूर्वक इस बातकी आवश्यकता और उपयोगिता सरकारके हृदयङ्गम कराना चाहता है कि, संयुक्तप्रदेशकी अदालतोंमें हिन्दी और नागरीको वही स्थान और

वही अधिकार दिया जाय जो उर्दू और फ़ारसी लिपिको प्राप्त है और हिन्दीभाषियोंके लाभार्थ, जिनकी संख्या उक्त प्रदेशमें उर्दू जाननेवालोंसे अधिक है, सरकारी गजट हिन्दीमें भी प्रकाशित किया जाय।

यह प्रस्ताव उपस्थित करते हुए आपने कहा :—

सभ्यगण!

मातृभाषा और देशोन्नतिके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। आजतक जिस समय जिन जिन देशोंकी उन्नति हुई है उस समय उनकी प्रचलित भाषाकी भी उन्नति हुई है। ग्रीस और रोमकी ओर दृष्टि फेरिये। पेरिक्लिसके समयमें ग्रीस बहुत उन्नत अवस्थामें था। उस समय वहाँ ग्रीक भाषाकी भी बड़ी उन्नति हुई थी। यही बात रोमके विषय में है और यही इङ्गलैण्डके विषयमें भी। आप अपने ही देशको देखिये। बंगाली भाइयोंने यहां सबसे अधिक उन्नति की है और इनकी भाषा भी सबसे अधिक उन्नत है। भारतके नामके अबतक बचे रहने का कारण इसकी प्राचीन भाषा ही है। आज भी भारत सुशिक्षित देशोंमें गिनाजाता है। कारण, इसकी भाषा संस्कृत आज भी बची है। सभापति महोदयने अपनी वक्तृतामें कहा है कि, संस्कृतके बाद प्राकृत हुई और बिपिन बाबूने कहा है कि प्राकृतकी एक मात्र दुहिता नागरी भाषा है। यदि इसकी उन्नति आप न करें, तो देशकी उन्नति करना असम्भव है। महाभारत में कहा है "जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"। जननीकी भाषा ही हमारी मातृभाषा है और यही मातृभाषा देशोन्नतिके मूलमें है। अतएव मातृभाषाकी उन्नति परमावश्यक है।

मातृभाषाके हितैषियो! संयुक्त प्रान्तकी भाषा हिन्दी है। पर राजाकी मददके बिना उसकी अवस्था बड़ी शोचनीय होरही है। उर्दूके बोलनेवाले कम हैं। पर गवर्नमेण्टकी सहानुभूतिसे उसे प्रधान स्थान प्राप्त है। इससे लोगोंको बड़ा कष्ट होता है। उर्दू साफ़ पढ़ी नहीं जाती। एक मनुष्यने म्युनिसिपल बोर्डके सेक्रेटरीके निकट अर्जी भेजी कि, "गलीमें पायखानेसे बड़ी तकलीफ़ है।" सेक्रेटरीने पढ़ा "गलेमें पायजामेसे बड़ी तकलीफ है।" इसलिये हमें उचित है कि, हम आन्दोलन करें, चेष्टा करें, संयुक्त प्रान्तकी अदालतोंमें हिन्दी भाषा और नागरीलिपिको वही स्थान दिलावें जो उर्दूभाषा और फ़ारसीलिपिको प्राप्त है। माडर्न रिव्युके किसी लेखमें निकला था कि, बंगविच्छेद आन्दोलनके जोरसे ही रद हुआ है। इसलिये हमें एकता और आन्दोलनकी आवश्यकता है। आप लोगोंसे भी एक विनय है। आप जानते हैं कि संयुक्त प्रान्तकी अदालतोंमें हिन्दीमें अर्ज़ीदावी देनेका अधिकार लोगोंको मिला है। यदि आप तबतक वकीलसे अर्ज़ीदावे दाखिल न करावें, जबतक आप यह न देख लें कि, वह हिन्दीभाषा और देवनागरी लिपिमें लिखी गयी है तो इससे बड़ा लाभ होगा जब सरकार देखेगी कि, जो कुछ अधिकार

दिया गया है, उसका पूरा उपयोग हो रहा है तो वह और भी अधिकार देनेको प्रस्तुत हो सकती है।

इस प्रस्तावका अनुमोदन प्रयागके वकील बाबू नव्वाब बहादुरने इन शब्दोंमें किया :—

महाशयो! दिहातियोंके पास सम्मन उर्दूमें भेजी जाती है, जिसको वे पढ़ नहीं सकते। इससे उन्हें बहुत सी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कायस्थ इस प्रस्तावपर अवश्य बिगड़ेंगे, पर कायस्थ कभी नेता नहीं हुए। ब्राह्मण बराबर नेता रहे। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि राह दिखलावें तो यह काम जल्द हो सकता है।

सम्मति ली जानेपर यह प्रस्ताव करतल-ध्वनिपूर्व्वक स्वीकृत हुआ।

श्रीयुत पं० महेशदत्तशुक्लने तब छठा प्रस्ताव उपस्थित किया जो इस प्रकार है :—

छठा प्रस्ताव

यह सम्मेलन पञ्जाबगवर्नमेंटसे प्रार्थना करता है कि, पञ्जाबके उन निवासियोंकी बड़ी संख्याकी सुविधाकेलिये जो अपना अदालती काम नागरीमें किया चाहते हैं, वह अपने प्रान्तकी अदालतोंमें उर्दूके साथ नागरी लिपिका भी प्रचार कर दे और यह आज्ञा दे दें कि, अदालतोंमें नागरीलिपिमें भी कागज़ात स्वीकार किये जायँ और सम्मन इत्यादि नागरीमें भी जारी हों और डिगरी, इजहार, फैसला इत्यादिकी नकल भी जो लोग नागरी लिपिमें चाहते हों उन्हें नागरीमें दी जाया करें।

आपने कहा कि हिन्दुओंके यहाँ सब संस्कार हिन्दीमें ही होते हैं। पंजाबमें भी यही बात है। पर पंजाब गवर्नमेण्टके सब कार्य उर्दूमें होते हैं। लोगोंको उसी भाषामें सुभीता होता है जिसमें उन्होंने लड़कपनसे शिक्षा पायी हो। इसलिये पञ्जाब गवर्नमेण्टसे प्रार्थना की जाय कि, जो लोग हिन्दीमें अदालती काम करना चाहें उन्हें वह हिन्दीमें ही सरकारी कार्य करनेकी अनुमति दे दे।

इस प्रस्तावका अनुमोदन श्रीयुत पण्डित मुरलीधर मिश्र, बी० ए०, एल० एल० बी०, ने किया। आपने कहा :—

सज्जनो!

पञ्जाबमें हिन्दीकी उर्दू और गुरमुखीसे प्रतिद्वन्द्वता करनी है। पञ्जाबसे ही हिन्दीकी विजय होगी; कारण, वहीं सबसे अधिक कठिनाइयाँ इसके प्रचारमें हैं। गुरमुखी १७वीं सदीके बादसे प्रचलित हुई है। गुरुनानकने भी इस बातका इशारा दिया था कि, सिखोंकी भाषा हिन्दी ही हो, पर वह समय अब नहीं रहा। पञ्जाबमें हिन्दीप्रचारका सर्वोत्तम समय यही है; कारण वहाँ बहुत सी फ़ौजें इस समय उपस्थित हैं और हिन्दीके लिये कार्य कर रही हैं। इनमेंसे कुछ ये हैं :—

१—हिन्दुओंकी सब कान्फरेंसोंका कार्य हिन्दीमें होता है।

२—आर्यसमाज हिन्दीका प्रचार कर रही है।

३—दयानन्द ऐंग्लो वेदिक कालेजके द्वारा हिन्दीका खूब प्रचार हो रहा है।

पञ्जाबगवर्नमेण्टकी रिपोर्ट पढ़नेसे मालूम होता है कि, गत वर्ष सबसे अधिक पुस्तकें नागरी लिपिमें निकली थीं।

इतनी फ़ौजोंके रहते हुए भी यदि हम सफल नहीं हुए तो हमारा दुर्भाग्य है। यही समय है, जब प्रत्येक हिन्दीप्रेमीको पञ्जाबकी लड़ाइयोंमें भाग लेना चाहिये; नहीं तो दश बर्षमें कार्य बड़ा कठिन हो जायगा।

सब लोगोंने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया।

अनन्तर श्रीयुत बाबू राजेन्द्रप्रसादने निम्नलिखित सातवां प्रस्ताव उपस्थित किया :—

सातवां प्रस्ताव

यह सम्मेलन बिहारसरकारसे प्रार्थना करता है कि, जो सरकारी कागजपत्र, सूचनाएं या पुस्तकें वहां कैथी अक्षरोंमें छपती हैं, अबसे वे सब नागरीमें छपा करें; क्योंकि यही लिपि सर्वव्यापी तथा सब श्रेणियोंके लोगोंकी परिचित है और कैथी इसीका एक रूपान्तर है जिसकी सृष्टि शीघ्र लिखनेके कारण हुई है, और छापेमें जिसके प्रयोगकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

आपने कहा कि, कैथी लिपि बहुत अधूरी है। उसमें न हिन्दीके शब्द अच्छी तरहसे लिखे जा सकते हैं, न उर्दूके। केवल एक ही सुभीता है,—जल्दी लिखनेका। पर छापेका विषय उपस्थित होते ही वह सुभीता भी अन्तर्हित हो जाता है। छापेमें कैथीके उतने ही टाइप बैठाने पड़ेंगे, जितने नागरीके। मैंने सुना है कि, सरकारी गजट भी पहले कैथीमें छपा करता था। पर अब वह बात नहीं है। इसलिये गवर्नमेण्टसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वह छापेमें उन सरकारी कागज़ोंको जो कैथीमें छपते हैं देवनागरीमें छापनेकी अनुमति दे।

पण्डित नन्दकुमारदेव शर्माने इसका अनुमोदन किया और यह प्रस्ताव सबकी सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

सन्ध्या होनेके कारण आजकी सभा विसर्जित हुई।

रातको ८॥ बजेसे ३॥ बजेतक विषय-निर्वाचन-समितिकी बैठक हुई।

तीसरा दिन।

प्राय: १० बजेके ३० मिनटपर विषय-निर्वाचन-समितिकी बैठक पुन: आरम्भ हुई और उसका कार्य्य १॥ बजे समाप्त हुआ।

इसी बीचमें थियेटरका हाल प्रतिनिधियों तथा दर्शकोंसे भर गया था, पर आज और दो दिनोंसे कुछ कम भीड़ थी।

डेढ़ बजे सभापति महाशय पहुंचे और उनके आते ही करतलध्वनिसे सभास्थल गूंज उठा। आसन ग्रहण करनेके अनन्तर सभापति महाशयने मलयपुरके छात्रद्वय श्रीमान् जनार्द्दन सिंह और पञ्चानन सिंहको प्रारम्भिक गान गानेका अनुरोध किया और लड़कोंने निम्नलिखित गान गाया :—

जय जय जय जन्मभूमि, जननी मम प्यारी।
जलकी जहं बहत धार, डोलत सीतल बयार,

गिरिवन शोभा अपार, अनुपम छवि वारी।
उपजत जहं विपुल धान, केसरफल फूल पान,
पच्छीगन करत गान, हरषित नर नारी।
शिल्प कला जहं प्रचार, तसर पाट सूत सार,
बनत वस्तु बेशुमार, सुन्दर सुख कारी।
प्रगटे जहं जनकराय, त्रिभुवनयश रह्योछाय,
हुं विदेह सब विहाय, ज्ञानी अति भारी।
चन्द्रगुप्त नृप महान, चानक सम नीतिमान,
भये जहां गुण निधान, जाऊं बलिहारी॥

इस गानको सुनकर सभी चित्रवत् हो गये। इसका प्रभाव इतना पड़ा कि करवीके उत्साही महन्तजीने लड़कोंको मिठाई खानेके लिये २) दिये, और बाबू शिवप्रसाद गुप्तने १ गिन्नी, पं० बैजनाथ चौबेने दो रुपये और समाचार पत्रोंके प्रतिनिधियोंने १) रुपया दिया। लड़कोंने ये रकम सम्मेलनकी स्थायी समितिको दे दी। इसपर बड़ाही आनन्द हुआ।

इसके बाद स्वा० का० स० के मन्त्रीने उस दिनके आये हुए पत्र तथा तार पढ़ सुनाए जिनमें सम्मेलनके साथ सहानुभूति दिखलाई गई थी। इनमें एक पत्र माननीय जस्टिस आशुतोषचौधरीका और दूसरा आसामके एक सज्जनका था, जिसमें उक्त महाशयने आसाममें हिन्दी प्रचारके विषयमें अपनी सहानुभूति और सहायता देनेकी प्रतिज्ञा प्रगटकी थी।

तत्पश्चात् सभापतिकी आज्ञासे प्रस्ताव पास होनेका कार्य आरम्भ हुआ—

आठवां प्रस्ताव।

यह सम्मेलन भावी हिन्दू विश्वविद्यालयके सञ्चालकोंसे सानुरोध निवेदन करता है कि, उक्त विश्वविद्यालयके पाठ्यक्रममें हिन्दीको उचित स्थान दिया जाय ; सम्मेलनके विचारमें आरम्भसे लेकर आठवीं कक्षा तक सब विषयोंकी शिक्षा हिन्दी द्वारा दी जानी चाहिये ; और कक्षाओंमें भी हिन्दी साहित्यको आवश्यक विषय रखना चाहिये।

प्रस्तावकर्त्ता—पं रामजीलाल शर्म्माने कहा—आपको शिक्षाकी उपयोगिता मालूम है। आप जानते हैं कि हिन्दी भाषा-भाषी बालक जब स्कूलमें जाते हैं तब उन्हें साधारण बातें भी दूसरी भाषामें पढ़नी पड़ती हैं। भाषा भी सीखनी पड़ती है और विषय भी सीखना पड़ता है। और मनुष्य अपनी मातृभाषामें जितनी अच्छी तरह किसी विषयको सीख सकता है दूसरीमें नहीं। अतः भारतवासियोंकी शिक्षा मातृभाषा हिन्दीहीमें होनी चाहिये। ऐसा करनेसे थोड़े समयमें और कम परिश्रमसे बहुत विषय सीखा जा सकता है।
इसलिये मैं सम्मेलनकी ओरसे भावी हिन्दू विश्वविद्यालयके सञ्चालकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं कि वे हिन्दीको उचित स्थान दें।

अनुमोदनकर्त्ता पं० निरञ्जनलाल चौबेने कहा—पाश्चात्य देशोंमें शिक्षा मातृभाषामें ही दी जाती है। इसीसे वहां उन्नति हो रही है। आज हम भी मातृभाषाकी सेवाके लिये यहां

उपस्थित हुए हैं। मैं पं० रामजीलालशर्म्माके प्रस्तावका अनुमोदन करता हुआ विश्वविद्यालयके सञ्चालकोंसे हिन्दीमें शिक्षा देनेका अनुरोध करता हूँ।

व्याख्यान दाताने एक कविता द्वारा मालवीयजीका गुणगान भी किया।

समर्थनकर्त्ता बाबू मथुराप्रसाद सिंह बी० ए० ने कहा :—हमारे सम्मुख बहुत बड़ा कार्य उपस्थित है। राष्ट्र तय्यार करना है इसके लिये मातृभाषा हिन्दीके साहित्यकी वृद्धि भी करनी है। इस कार्यके लिये हमें बालकपनसे ही लड़कोंको शिक्षा मातृभाषा द्वारा देनी चाहिए। अभी हमारे लड़के जो १८ वर्षमें सीखते हैं पश्चिममें ५ वर्षमें सीखते हैं। अतः हमें ऐसा विश्वविद्यालय बनाना चाहिये जिसमें सब शिक्षा हमारी भाषामें दी जाय और हमें पाश्चात्य देशोंके जैसा अल्प समयमें बहुत शिक्षा मिले। हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दी मुख्य भाषा रहे और अङ्गरेज़ी गौण। ऐसा करनेसे हमारे धार्म्मिक विचार भी न बदलेंगे और हम बेपतवारके जहाज जैसे इधर उधर भटकते न फिरेंगे। इन्हीं बातोंसे मैं उक्त प्रस्तावका अनुमोदन करता हूँ।

नवां प्रस्ताव।

यह सम्मेलन हिन्दीके सब पुस्तक प्रकाशकोंका गत वर्षके १२ वें मन्तव्यकी ओर ध्यान आकर्षित करता है, कि वे अपनी प्रकाशित पुस्तकोंकी एक एक प्रति यथा समय सम्मेलनके स्थायी कार्य्यालयमें बिना मूल्य भेजनेकी कृपा कर हिन्दी-साहित्यकी सम्पूर्ण सूची तथा उसकी सामयिक अवस्था और उन्नतिका विवरण प्रस्तुत रखनेके उद्योगमें सम्मेलनकी सहायता करते रहें। पत्र सञ्चालकोंसे भी प्रार्थना है कि, कार्य्यमें सहायता देनेके लिये अपने अपने पत्र उक्त कार्य्यालयमें बिना मूल्य भेजनेकी कृपा किया करें।

प्रस्तावकर्त्ता बाबू रामलाल वर्म्माने कहा—

यह प्रस्ताव नीरस होनेपर भी आवश्यक है। गत वर्ष ऐसा ही एक प्रस्ताव पास हुआ था। उसमेंके नवप्रकाशित शब्दके बदले इस वर्ष प्रकाशित शब्द रखा गया है। यह सम्मेलन पुस्तक प्रकाशकोंसे प्रार्थना करता है कि जैसे वे ३-४ प्रति सरकारको २-३ प्रति दफ्तरियोंको देते हैं उसके साथ ही यदि एक प्रति स्थायी समितिको देदें तो बड़ा लाभ हो। इसी प्रकार जहां सैकड़ों प्रतियां इधर उधर बांट दी जाती हैं वहां एक यदि स्थायी समितिको दी जाय तो उसे बरबाद न समझना चाहिये। मैं पुस्तक प्रकाशक हूँ और कहता हूँ कि मैं अपने यहांकी पुस्तकोंकी दो दो प्रतियाँ अबसे स्थायी समितिको दूँगा और जो अबतक छपी हैं उनकी एक एक प्रति देकर मैं सौ सवासौ पुस्तक देनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

अनुमोदनकर्त्ता पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदीने कहा—इस प्रस्तावकी उपयोगिताके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं जबसे आया हूँ सुनता हूँ कि हिन्दीकी पुस्तकोंका सब लोगोंको ज्ञान नहीं है अतः सब पुस्तक

प्रकाशकोंको उचित है कि प्रत्येक ग्रन्थकी एक एक कापी स्थायी समितिको भेज दें और रसीद मंगा लें। कई सज्जनोंने तो पुस्तकें प्रदानकी हैं और जिन्होंने नहीं दी है वे पुस्तकें प्रदान करनेकी कृपा करें।

यह प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

दसवां प्रस्ताव।

इस सम्मेलनके विचारमें हिन्दी-साहित्यकी उन्नतिका यह एक उत्तम साधन है कि प्रत्येक तीर्थस्थानपर और मुख्य २ देवालयोंमें हिन्दी पुस्तकालय खोले जांय इसलिये सम्मेलन तीर्थवासी हिन्दी प्रेमियों और मन्दिरोंके सञ्चालकोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट करता है।

इस उद्देश्य सिद्धिके लिये सम्मेलनकी स्थायी समिति मन्दिरोंके सञ्चालकोंसे, विशेषकर महन्त महाशयोंसे, पत्र व्यवहार करके वा अन्य प्रकारसे उचित प्रबन्ध करे।

प्रस्तावकर्त्ता प० बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी बी०, ए०, ने कहा—

भारतवर्षकी उन्नतिके कई साधन हैं जिनमें मातृभाषा हिन्दीकी उन्नति करना भी एक साधन है। इस कार्य्यके लिये हमें यत्न करना पड़ेगा। उपदेशक तो अन्यत्र कार्य करते ही हैं पर तीर्थ स्थानमें क्या होता है। जो स्थान समस्त देशके लोगोंकी दृष्टि में परम पुनीत समझा जाता है वहां अन्याय देख किसका चित्त दुःखित हुए बिना रह सकता है। इसको दूर करनेके लिये और धर्म्म स्तम्भ अटल बनानेके लिये हम तीर्थस्थानोंमें पुस्तकालय खोलें और सब लोगोंमें शिक्षाका प्रचार करें। हां, इस कार्यके लिये धनकी आवश्यकता है पर जहां हज़ारों लाखों रुपये पण्डोंको दिये जाते हैं वहां क्या इस कार्य्यके लिये प्रत्येक यात्री कुछ रुपये न देगा? वे अवश्य देंगे। हमारी प्रार्थना महन्तोंसे भी है कि वे इस कार्यमें सम्मेलनको सहायता दें।

समर्थनकर्त्ता पं० रामप्रसादमिश्रने कहा—

यह सब मानते हैं कि भाषाकी उन्नति बड़े महत्वकी है। हमारे सभापति महाशय यह सिद्ध कर चुके हैं कि हमारी भाषा सबसे पुरानी है और राष्ट्र भाषा कहानेकी योग्यता रखती है। हमारे देशमें धर्म्मका भाव नस २ में वर्त्तमान है। ऐसी हालतमें क्या यह अच्छा न होगा कि हम तीर्थस्थानोंमें भाषा-शिक्षाका उपाय कर रखें?

यह प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

ग्यारहवां प्रस्ताव।

यह सम्मेलन बीकानेर नरेशको हार्दिक धन्यवाद देता है कि श्रीमान्‌ने अपनी जुबिली के उपलक्षमें उर्दूके स्थानमें हिन्दीको राज्य-भाषा करदी है।

(ख) यह सम्मेलन श्रीमान् रीवांनरेशको हार्दिक धन्यवाद देता है कि, उन्होंने अपने राज्यमें उर्दूके स्थानपर हिन्दी भाषाको स्थान दिया है।

(ग) अन्य नृपतियोंको जो अपने राज्यमें

हिन्दी और नागरीका प्रचार कर रहे हैं, सादर हार्दिक धन्यवाद देता हुआ यह सम्मेलन उन हिन्दू नरेशोंकी सेवामें, विशेषकर काशीनरेशको, जिनका ध्यान अभी इस आवश्यक कार्य्यकी ओर नहीं गया है, सानुरोध प्रर्थना करता है कि यथा सम्भव अपने राज्यमें हिन्दीभाषा और नागरी लिपिके यथेष्ट प्रचारका सन्तोषजनक प्रवन्ध करके अपनी प्रजा-वत्सलताका परिचय देते हुए सुयशके भागी हों।

सभापति महाशयने प्रस्तावको उपस्थित किया। उनके बाद निम्नलिखित सज्जनोंने उसके समर्थनमें जो कहा उसका सारांश यों है—

बाबू मुकुन्दीलालवर्म्मा—हिन्दीसे हमारा माता और पुत्रकासा सम्बन्ध है। यह भाषा ऐसी है कि जिसके द्वारा बङ्गाली या मदरासी भी अन्य प्रान्तमें काम चलाते हैं। हमें ईश्वरको धन्यवाद देना है कि आज हिन्दू राजा लोग इसे अपनारहे हैं। श्री मान् रीवां नरेशने उर्दूके बदले हिन्दी जारी की है और यही बात बीकानेरमें भी हुई है। ये राजा दो प्रकारके कार्य्य करते हैं—एक तो अपनी मातृभाषा-का ऋण देते हैं दूसरे उन्हें अपने कामोंमें सुगमता होती है। हम चाहते हैं कि बरोदा नरेश तथा बनारस महाराजा हिन्दीको राज-भाषा बनावें।

उसके बाद पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, एल० एल० बी०,ने कहा कि अंग्रेज़ी जमाना न होता तो धन्यवाद देनेकी आवश्य-कता न थी। कालिदासने कहा है "प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि सपिता पितर-स्तासां केवलं जन्म हेतवः।" राजाका काम ही है प्रजाकी रक्षाके लिये उसकी भाषाका प्रचार करना। मैं उन्हें धन्यवाद देता हुआ बनारस महाराजसे अनुरोध करता हूँ कि वे हिन्दीको अपनावें।

राय लालबिहारी शरण बहादुर वकीलने कहा—महाराज रीवांके पुत्र राज्यमें तमाम घूमते फिरतेथे। प्रजाके साथ उनका पुत्रके साथ पिताकासा सम्बन्ध था पर जबसे उर्दू जारी हुई यह सम्बन्ध टूट गया। राजाकी बात प्रजाको समझानेके लिये एक मुनशीकी आव-श्यकता हुई। पुनः रीवां नरेशने हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिका प्रचार कराया है और अपनी प्रजाको अपनाया है। वहां अङ्गरेज़ोंके बदले हिन्दी तारीख लिखी जाती है। आशा है और राजा भी ऐसा ही करेंगे।

बारहवां प्रस्ताव।

इस सम्मेलनके विचारमें हिन्दी भाषामें सत्य, वीरता, परोपकार, देशभक्ति आदि उच्च भावोंकी ओर प्रवृत्त करनेवाले नाटकोंका खेलना सर्व साधारणके चरित्रको सुधारनेके अतिरिक्त उनमें हिन्दी भाषा और साहित्यकी ओर प्रेम उत्पन्न करनेका भी उत्तम साधन है। इसलिये हिन्दीमें रोचक और शिक्षाप्रद उत्तम उत्तम नाटकोंकी रचना और भिन्न भिन्न स्थानोंमें समय समयपर उनको आव-

श्यकताकी ओर ध्यान दिलाता हुआ यह सम्मेलन देशके सुशिक्षित सज्जनोंसे निवेदन करता है कि, नाटक खेलनेके प्रचलित दोषोंको दूर करने और उनको आदरयोग्य तथा सर्वसाधारणकी शिक्षाका साधन बनानेके लिये वे स्वयं सम्मिलित हुआ करें।

यह सम्मेलन नाटकमण्डलियोंका ध्यान भी इस ओर दिलाता है कि, देशके प्रति उनका कर्त्तव्य है कि, वे अपने नाटकोंको विचारवान् लेखकोंसे सर्वसाधारणके समझने योग्य सरल हिन्दीमें लिखवावें, जिससे उन नाटकोंका प्रभाव और गौरव हो तथा दर्शकोंपर उनका अच्छा प्रभाव पड़े।

प्रस्तावकर्त्ता पण्डित मुरलीधर मिश्र, बी० ए०, एल० एल० बी०, ने कहा :—

यह प्रस्ताव बड़े ही महत्त्वका है। इतने अल्प समयमें इसकी उत्कृष्टता दिखानेकी मुझमें शक्ति नहीं है। इसका कार्य्य केवल हिन्दीसाहित्यसम्मेलनका ही नहीं है, पर नेशनल कांग्रेस जैसी जातीय सभाओंका भी है।

जातीय गौरवका साधन शिक्षा ही है। यह शिक्षा नाटकोंद्वारा बहुत सुगमतासे दी जा सकती है। पण्डित विष्णुदिगम्बरने अपने व्याख्यानमें कहा था कि, सङ्गीतका साहित्यसे सम्बन्ध है। नाटक भी सङ्गीतका एक अङ्ग है। नाटक सर्वप्रथम भारतमें ही उत्पन्न हुआ था। इसके आदि आचार्य्य भरतने अपने नाट्यशास्त्रमें लिखा है कि, ब्रह्माजीने नाटकको पांचवें वेदके नामसे बनाया है। कालिदासने भी मालविकाग्निमित्रमें लिखा है।

"नाट्यं भिन्नरुचेजनस्य हि सदाप्य कं समाराधनम्"। जिस नाटककी उत्पत्ति ब्रह्मासे है, जिसका प्रभाव पांचवें वेदके समान माना गया है,जो भिन्न भिन्न रुचिके मनुष्योंको भी एकमात्र आनन्ददेनेवाला है, उसकी वर्त्तमान अवस्थाको अब देखिये। आजकल रासलीला और पारसी नाटक होते हैं, जिनमें केवल आशिक् माशूक़कीही बातें दिखलायी जाती हैं। लोग इनपर लट्टू रहते हैं। इसका प्रभाव कैसा बुरा पड़ता है,यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आप अपने लड़कोंको ऐसे नाटकोंके फाटकपर भी न जाने दें।

सम्मेलनने उचित समझा है कि, शिक्षित समुदाय इसमें सम्मिलित हो। शिक्षितका अर्थ है जो अपनी भलाई बुराई समझ सके। तभी नाटकोंका पुनरुद्धार होगा। परसाल सम्मेलनके अवसरपर "राणा प्रताप" नाटक खेला गया था, जिसमें पण्डित बालकृष्ण भट्ट आदि बहुत से सुशिक्षित लोग भी सम्मिलित थे। इस नाटकसे जो प्रभाव पड़ा था, वह सैकड़ों मिटिङ्गसे सम्भव नहीं था। इसमें वीरता कूटकूटकर भरी है और प्रतिज्ञापालनका भी उच्च आदर्श उपस्थित है। इसका "प्राण जाय पर वचन न जाई"उपदेश अनुकरणीय है। नाटकद्वारा देशकी एकता और जातीयता सुगम रीतिसे चिरस्थायी बनायी जा सकती है। देखिये बङ्गभाषामें कितने नाटक हैं और उनकी उन्नतिके लिये गिरीश बाबू जैसे विद्वान् लगे हुए थे। आपकी भाषामें नाटक कम हैं। आप उसकी वृद्धि करनेको यत्नवान् हों।

अनुमोदनकर्त्ता आनन्द स्वामीने कहा :—मैंने बम्बईमें ५ वर्षतक रहकर नाटकका प्रभाव देखा। फ्रान्समें भी ऐसा ही देखा। बम्बईमें 'कीचकवध' नाटक हुआ था जिसे गवर्नमेण्टने बन्द कर दिया। इसका प्रभाव बहुत पड़ा था। आप नाटककी उन्नति करें।

पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने इस प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा :—पार्सी नाटकोंसे केवल आचरण ही नहीं बिगड़ता परं काव्यमें भी भ्रष्टता आ जाती है। न उनका छन्द ठीक रहता है और न भाषा ही शुद्ध रहती है। जब मैं बङ्गालियोंके नाटकोंमें जाता हूं, तो कुछ न कुछ नयी बातें अवश्य सीख आता हूं। जहाँ करुण रस है वहाँ सचमुच करुण रसका आनन्द मिलता है। पर पार्सी नाटकोंमें जहाँ हँसना है, वहाँ भी रोना और जहाँ रोना, वहाँ भी हँसना। इन दोषोंको दूर करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि, शिक्षित लोग नाटकोंमें सम्मिलित हों। अभिनय करनेमें कोई लज्जाकी बात नहीं है। मैं स्वयं "नीलदेवी" नाटकमें पगला बनना चाहा था।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

इसके बाद सभापतिकी आज्ञासे श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डन, एम० ए०, एल० एल० बी०, ने सम्मेलन और स्थायी समितिकी नियमावली उपस्थित की। नियमावली पढ़नेके पहले आपने कहा कि, गत वर्ष यह निश्चय हुआ था कि, एक वर्षवाली नियमावलीपर समाचार पत्रोंमें आन्दोलन हो, फिर ५ मनुष्योंकी एक कमिटी उसपर रिपोर्ट दे। इसके अनुसार इसी मासकी १४ तारीखको सभा हुई। उस सभामें और रातकी विषयनिर्वाचनसमितिमें जिस प्रकार नियमावली ठीक हुई है, उसे मैं उपस्थित करता हूँ। बाबू शिवप्रसाद गुप्तने २७ वें नियममें परिवर्त्तन उपस्थित करते हुए कहा कि, मेरा प्रस्ताव है कि बचा सब धन स्थायी समितिको दे दिया जाय क्योंकि स्थायी समितिको आमदनीका जरिया केवल पैसाफण्ड ही है जिससे आवश्यक धन इकट्ठा होनेमें कठिनाई होती है। दूसरा कारण यह भी है कि, सम्मेलनके अधिवेशनके स्थानमें यदि एकसे अधिक सभाएं हों अथवा कोई सम्बद्ध सभा न हो तो ऐसी दशामें बचे धनका वितरण करना कठिन होगा। पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयीने इस उपप्रस्तावका अनुमोदन और पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़करने इसका समर्थन किया। बाबू राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०, ने उक्त उपप्रस्तावका विरोध करते हुए कहा कि, सम्मेलनमें इकट्ठे किये हुए धनका कुछ अंश स्थानीय सम्बद्ध सभाओंको अवश्य मिले। प्रथमतः बहुत सभाके रहनेसे झगड़ा उपस्थित होनेका भय दिखलाया गया है, वह अमूलक है। अभी बहुत कम ही स्थानमें एकसे अधिक सभाएं हैं। द्वितीयतः कोई बिना अपना स्वार्थ देखे काम नहीं करता है। यदि स्थानीय सभाको कुछ लाभ न होगा, तो वह सब धन उड़ा देगी कि, जिसमें उसका नाम हो। इससे सम्मेलनको लाभ नहीं होगा। तृतीयतः सम्मेलनका

कर्त्तव्य है कि, अधिवेशनस्थानमें केवल तीन दिन सभा ही करके सन्तुष्ट न हो जाय पर कुछ उसकी उन्नतिके लिये सहायता भी दे।

पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने इसका अनुमोदन किया। पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीने पुनर्बार बाबू राजेन्द्रप्रसादका खण्डन किया तथा पण्डित बैजनाथ चौबेने राजेन्द्र बाबूके पक्षका समर्थन किया। फिर भी बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनने अपने पक्षमें कहा कि स्थायी समिति सब सभाओंको आवश्यकता होनेपर धन देती है, अतः इस नियमका पास होना उचित है। इसके बाद बा० शिवप्रसाद गुप्तने अपना उपप्रस्ताव वापस लिया। तदनन्तर बाबू रामलाल वर्म्मा, पण्डित बैजनाथ चौबे और पण्डित रामानन्द द्विवेदीने कहा ;—इस प्रस्तावमें "सम्बद्ध सभा या सभाएँ"के स्थानमें "सभा या सभाएँ" रखा जाय।

अन्तमें बहुमतसे मूल नियम ज्यों का त्यों स्वीकृत हुआ।

पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीने सदस्योंकी संख्यामें यों परिवर्त्तन करनेका प्रस्ताव किया—

कार्य्यकारिणी समितिमें ६०के बदले ६५ सदस्य हों और निम्नलिखित प्रदेशोंकी सदस्य-संख्यामें यथालिखित परिवर्त्तन हो :—

बङ्गाल—५ से ८

मध्यप्रदेश—७ से ८

राजपुताना—६ से ७

इसके अनन्तर उपर्युक्त परिवर्त्तनोंके साथ संपूर्ण नियमावली स्वीकृत हुई।

श्रीयुत सत्यदेवजीने "पञ्जाबमें हिन्दीका प्रचार" नामक विषयपर बड़ी ओजस्विनी वक्तृता दी।

आपने कहा :—मेरे प्यारे भारतीय बन्धुओ!

जिस उद्देश्यको हम लोगोंने अपने सामने रखा है और जिसकी सिद्धिके लिये हम कटिबद्ध हुए हैं उसे आपको अच्छी तरहसे समझना होगा कि वह क्या है। जबतक हम अपने उद्देश्यको न समझ लें तबतक हम कुछ नहीं कर सकते। भारतके इतिहासमें आज जीवन मरणका दिन है। आपको यदि जीना है तो हिन्दी माताके उद्देश्यको अपने सम्मुख रखिये, आपको इस समय राष्ट्रीयताकी बड़ी आवश्यकता है और इसका एक प्रधान साधन हिन्दीभाषाकी उन्नति है। अतएव यदि आप राष्ट्रीयताकी उन्नति करना चाहते हैं तो हिन्दीकी उन्नति कीजिये। जब ईसाई मिशनरी अस्ट्रेलिया, अफ्रीका प्रभृति देशोंमें जाते हैं तब उनके मनमें केवल यही विचार उठता रहता है कि हम ईसा मसीहके उपदेशोंका कैसे प्रचार करें। आपमें ऐसे कितने हैं जो इन मिशनरियोंकी तरह केवल हिन्दी-प्रचार-पर ध्यान रख इसके झण्डेको हिन्दके एक सिरेसे ले दूसरे सिरेतक फहरानेको तैयार हैं? यदि कोई हैं तो उन्हें चाहिये कि वे इस समय मैदानमें निकल आवें।

जब मैं पञ्जाब गया था तब वहां मैंने देखा कि एक लड़का एक डब्बा हाथमें लिये

फिरता है, जिसपर उर्दू में लिखा है "नागरी प्रचारिणी सभा।" मैंने लड़केसे पूछा कि तुम इस डब्बेमें पैसे क्यों जमा कर रहे हो। उसने कहा कि नागरीप्रचारके लिये। मैंने कहा कि तुम नागरी प्रचार करना चाहते हो पर तुम्हारे डब्बेपर उर्दू लिखी है। लड़का चुप रह गया। वह नहीं समझता था कि नागरीप्रचार क्या है। इस प्रकार नागरीका प्रचार नहीं होसकता है। आपको उन प्रान्तोंमें, जहां नागरीका प्रचार नहीं है, जाना पड़ेगा और वहां दो तीन महीनोंमें उपदेशक तैयार करना पड़ेगा। आर्यसमाजकी चेष्टासे पंजाबमें नागरीकी उन्नति हो रही है। इसका प्रमाण वहांके हिन्दी समाचारपत्र हैं। हम चाहते हैं कि सारे पंजाबमें नागरीका प्रचार हो जाय। पर यह प्रचार केवल प्रस्तावोंके द्वारा नहीं होसकता। लहरमें बहते चले जानेसे काम न चलेगा, केवल show (बाहरी दिखलावे)पर ध्यान रखनेसे कोई लाभ नहीं होगा। हमें प्रकृत कार्यकी आवश्यकता है। हमें समझना चाहिये कि यह सम्मेलन हमारा धर्मस्थल है, हम धर्मके प्रचारक हैं, हिन्दी प्रचार हमारा धर्म्म है। आइये हम ईसाइयोंकी तरह अपने धर्मको भारतके इस छोरसे लेकर उस छोरतक फैला आवें; आइये इस धर्मके झण्डेको पेशावरतक सारे पंजाबमें फहरावें। सम्मेलन पंजाबमें घूमनेके लिये उपदेशक दे। मैं अपने खर्चेसे उसके साथ फिरकर हिन्दीका प्रचार करूंगा। परमब्रह्मसे प्रार्थना है कि वह इस देशका उद्धार करे।

सत्यदेवजीका व्याख्यान समाप्त होते ही स्थायी समितिके मन्त्री महोदयने इस बातकी प्रतिज्ञा की कि, सत्यदेवजी भारतवर्षके चाहे जिस किसी अंशमें हिन्दीका प्रचार करें, सम्मेलन उन्हें दो उपदेशक साथ काम करनेके लिये देगा।

इसके अनन्तर पण्डित सूर्यनारायण दीक्षित और पण्डित मुरलीधर मिश्र ने ५०), पं. वैजनाथ चौबेने ५१) और भागलपुर मारवाड़ी युवक समितिके सभापति बाबू लक्ष्मीनारायण डिडवानियाने ५०) हिन्दीप्रचारके लिये देनेकी प्रतिज्ञा की।

तेरहवां प्रस्ताव।

यह सम्मेलन पञ्जाब, युक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश, और बिहारकी प्रादेशिक तथा उन जातीय सभाओंके नेतृवर्गोंसे जिनका काम हिन्दीमें नहीं होता है, प्रार्थना करता है कि वे लोग अपनी अपनी सभाओंका काम हिन्दीमें करें और कार्यविवरण भी हिन्दीमें प्रकाशित करें, तथा अपनी जातिमें हिन्दीभाषा और नागरी लिपिका व्यवहार बढ़ावें।

सम्मेलन उक्त प्रदेशोंके जमीन्दारों और व्यापारियोंसे भी प्रार्थना करता है कि, वे अपने कागजपत्र और बहीखाते हिन्दीभाषा और नागरी लिपिमें लिखा करें।

इस प्रस्तावको कलकत्ता हाइकोर्टके भूतपूर्व जज श्रीयुक्त सारदाचरण मित्रने, निम्नलिखित वाक्योंमें उपस्थित किया—

सब भाषाओंकी पर्य्यालोचना करके देखनेसे मालूम होगा कि भाषाका पार्थक्य देश कालके अनुसार हुआ है। यूरोपमें भी भिन्न २ भाषाएं हैं। पर सभी स्थानोंमें साहित्यिक भाषा एक है।

स्काटलैण्ड, आयरलैण्ड, अमेरिका इत्यादि स्थानोंमें भिन्न २ भाषाएं हैं, पर सबकी साहित्यिक भाषा अंगरेजी है। आष्ट्रेलियाके एक कृतविद्य सज्जन यहां सरकारी कर्म्मचारी हैं। उनकी स्त्री एक दिन मुझसे कहती थी कि मेरे स्वामी अंगरेजी बहुत कम जानते हैं। वे I shall के बदले I will कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि देशके भेदसे भाषाका भेद अपरिहार्य है। पर साहित्यकी भाषा एक होनी चाहिये। भारतकी साहित्यिक भाषा हिन्दी है। तीन वर्ष पहले मैं छपरे गये था। वहां लोगोंसे मैंने बातें की, उनके पत्र पढ़े पर उनकी बोली मैं अधिकांश नहीं समझ सका। उनकी बोली विशुद्ध हिन्दी नहीं है पर उनकी साहित्यिक भाषा हिन्दी ही है। हमारा विश्वास है कि जबतक हिन्दी भारतकी साहित्यिक भाषा न होगी तबतक भारतीय साहित्यकी उन्नति नहीं हो सकती है। बंगाली भाषा उन्नत हो सकती है; गुजराती भाषा उन्नत हो सकती है, महाराष्ट्र भाषाकी उन्नति हो सकती है। पर हममेंसे कितने मनुष्य इन्हें समझ सकते हैं। पर हरिश्चन्द्र मैं सहजमें समझता हूँ। मैं ८ वर्ष से यह चेष्टा कर रहा हूं कि नागरी लिपि सारे भारतमें प्रचलित हो। सम्भव है कि हिन्दी भाषा सारे भारतमें प्रचलित होनेके लिये इसमें कुछ परिवर्त्तनकी आवश्यकता हो। पर इस रूपान्तरसे हिन्दीकी कोई हानि नहीं हो सकती है। समयके अनुसार भाषामें पार्थक्य हुआ ही करता है। एलिजाबेथके समयकी अङ्गरेजी भाषासे आजकलकी अङ्गरेजीमें बहुत कुछ विभेद है। आजकलकी हिन्दी सूरदासकी हिन्दी नहीं है। अतएव मैं आपसे हिन्दी भाषाके प्रचारके लिये अनुरोध करता हूं।

इसके अनन्तर भिवानीकी शिक्षाप्रचारिणी सभाकी ओरसे पं० रामजीवन शर्म्मा वैद्यने दो महीनेतक सत्यदेवजीके साथ घूमनेकी इच्छा प्रकट की।

सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

समय कम रहनेके कारण निम्नलिखित प्रस्ताव सभापति द्वारा उपस्थित किये जाकर सर्व्वसम्मतिसे स्वीकृत हुए।

चौदहवां प्रस्ताव।

इस सम्मेलनके विचारमें यह आवश्यक है कि स्थायी समिति उन भारतीय भाषाओंके,जिनकी प्रचलित लिपि नागरी नहीं है, पत्रसम्पादकोंसे नागरी प्रचारमें सहायता पानेका उद्योग बराबर करती रहे।

पन्द्रहवां प्रस्ताव।

यह सम्मेलन कलकत्ता विश्वविद्यालयके विख्यात विद्यानुरागी वाइसचैन्सलर तथा

सेनेट और सिण्डिकेटसे प्रार्थना करता है कि
। भारतकी सबसे अधिक विस्तृत भाषा हिन्दी-
ी, जो उक्त विश्वविद्यालयके पाठ्यक्रममें भी है
ौर जिसके विद्यार्थियोंकी संख्या भी कम
ाहीं है, शिक्षाका प्रबन्ध विश्वविद्यालयकी ओर-
े करे।

सोलहवां प्रस्ताव।

यह देखकर कि, शिक्षाविभागके पाठ्य-
क्रममें कभी कभी हिन्दीकी ऐसी पुस्तकें भी
वीकृत हो जाती हैं, जिनकी भाषा भद्दी ही
ाहीं, अशुद्ध भी होती हैं, यह सम्मेलन पञ्जाब,
ुक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहारके शिक्षा-
वभागके अधिकारियोंसे निवेदन करता है कि,
प्रपनी टेक्स्टबुक कमेटियोंमें वे अपने अपने
देशकी प्रधान हिन्दी सभाओंके कमसे कम
एक एक प्रतिनिधिको स्थान देनेकी कृपा करें,
योंकि इससे उक्त कमेटियोंको उत्तम उप-
ोगी और यथासम्भव निर्दोष पुस्तकें चुननेमें
ड़ी सहायता मिलेगी।

सतरहवां प्रस्ताव।

इस देशकी भिन्न भिन्न संस्कृत-परीक्षा समि-
तियोंसे यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि,
हिन्दीभाषी विद्यार्थियोंके लिये संस्कृत परीक्षा-
ओंके साथ हिन्दीका विषय अवश्य रखा जाय।

अट्ठारहवां प्रस्ताव।

इस सम्मेलनको दुःख है कि, युनिवर्सिटीज
कमिशनकी सम्मति कालेज क्लासोंमें देश भाषा-
ओंको पढ़ाईके पक्षमें होनेपर भी, अबतक
पञ्जाब और इलाहाबाद युनिवर्सियोंका ध्यान
इस ओर नहीं गया है। इन युनिवर्सियोंसे
निवेदन है कि वे कलकत्ता युनिवर्सिटीके अनु-
सरणकी कृपा शीघ्र करें और हिन्दीभाषी
छात्रोंके लिये हिन्दीको बी० ए० तक आवश्यक
विषय कर दें।

उन्नीसवां प्रस्ताव।

सम्मेलनको खेद है कि वाइसरायकी व्यव-
स्थापक सभामें पेश होनेवाली बिलोंका अनुवाद
हिन्दीके केन्द्र संयुक्त प्रान्तमें ही हिन्दीमें नहीं
छापा जाता। सम्मेलनकी सम्मतिमें इन बिलों-
का संयुक्त प्रान्तमें हिन्दीमें अनुवाद अवश्य
छापा जाय।

बीसवां प्रस्ताव।

इस सम्मेलनमें जितना धन एकत्र हो उसके
केवल चतुर्थांशको, यदि वह २०००) से अधिक
न हो, स्थायी समितिको आगामी वर्षमें व्यय
करनेका अधिकार होगा। बाकी स्थायी कोष
में जमा होगा।

इक्कीसवां प्रस्ताव।

संयुक्तप्रान्तकी गवर्नमेण्टका यह विचार है

पुस्तकोंकी भाषामें फारसी और अरबीके अप्रचलित ऐसे शब्द न रखे जांय जो हिन्दीमें साधारण रीतिसे हिन्दी पढ़नेवाले बालकोंकी शिक्षामें हानिकारक हैं। अतः यह सम्मेलन संयुक्त प्रान्तकी गवर्नमेण्टसे अनुरोध करता है कि हिन्दीकी पाठ्यपुस्तकोंकी भाषा अच्छे हिन्दी लेखकद्वारा लिखवावे और इस बातपर ध्यान रखे कि भाषा क्रमशः सरल और कठिन रखी जाय और भद्दी और अशुद्ध न होने पावे।

बाईसवां प्रस्ताव।

सम्मेलनको इस बातपर बड़ा खेद है कि मद्रास और बम्बईके विश्वविद्यालयोंमें कई देशी भाषाओंके साथ उर्दू तक पाठ्यक्रममें रखी गयी है पर हिन्दी नहीं रखी गयी। अतएव मद्रास और बम्बईके विश्वविद्यालयोंसे निवेदन है कि वहां हिन्दीको भी स्थान मिले।

तेईसवां प्रस्ताव।

सम्मेलनका विचार है कि स्थायी समिति संयुक्त प्रदेशकी अदालतोंमें नागरीप्रचारका विशेष प्रबन्ध करे।

चौबीसवां प्रस्ताव।

सम्मेलन स्थायी समितिके मन्त्रीको अधिकार देता है कि वह ४ विद्वानोंकी एक विशिष्ट समिति बनावें जो इस बातपर विचार करके कि देवनागरी लिपिमें किन किन उच्चारणोंके बढ़ानेकी आवश्यकता है, आगामी वर्ष सम्मेलनमें विवरण उपस्थित करे।

और इस सम्मेलनका मत है कि विशिष्ट समिति बाबू अयोध्याप्रसाद वर्म्मा लिखित पुस्तकपर भी विचार करे।

पच्चीसवां प्रस्ताव।

साहित्यसम्मेलनकी स्थायी समितिके मन्त्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनने गत वर्ष जो अनवरत उद्योग तथा परिश्रमसे सम्मेलनका कार्य्य किया, उसके लिये सम्मेलन उन्हें सहर्ष धन्यवाद देता है।

छब्बीसवां प्रस्ताव।

यह सम्मेलन स्थायी समितिके मन्त्रीको अधिकार देता है कि वह स्थायी समितिको नियमानुसार रजिष्टरी करा लेवें।

इसके बाद पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयीने चन्द्वरदाईके वंशज श्रीयुत नान्हूराम भाटका सदस्योंसे परिचय कराया और कहा कि इनके पास मूल "रासो" है। सभापतिकी आज्ञासे नान्हूरामजी भाटने कई कवित्त पढ़ सुनाये।

तदनन्तर कलकत्ता हाईकोर्टके भूतपूर्व जज श्रीयुत सारदाचरण मित्रने निम्न लिखित प्रस्ताव उपस्थित किया :—

सत्ताईसवां प्रस्ताव।

इस सम्मेलनके विचारमें नोल्स तथा कुछ अन्य अंगरेज़ सज्जनोंका यह प्रस्ताव कि भार-

तवर्ष भरमें सरकारी कामोंमें रोमन लिपिका प्रचार हो असम्भव और हानिकारक है। रोमन लिपि भारतवर्षकी भाषाओंके लिखनेके लिये सर्वथा अनुपयुक्त है और यह सम्मेलन इस प्रस्तावका घोर विरोध करता है।

इसका अनुमोदन पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयीने और समर्थन पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय बाबू शिवप्रसाद गुप्त और पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने किया।

इसका समर्थन करते हुए बाबू शिवप्रसादगुप्तने कहा:—हमें उर्दूसे उतना डर नहीं है जितना अंगरेजीसे। एक समय था जब पारसी और उर्दूसे बड़ा डर था। इसका प्रभाव इतना बढ़ा हुआ था कि हमारे लड़के 'श्रीगणेशायनमः'-के बदले "बिस्मिल्लाहिरहमानुल् रहीम" आरम्भ करते थे। आज यदि हिन्दी, बङ्गला, तामिल, तेलगूके बदले रोमन जारी हुआ तो पारसी जैसी अंगरेजी फैल जायगी।

इसमें सब उच्चारण भी नहीं हैं और यह लिखना भी कठिन है। इसलिये आप इसका घोर विरोध करें। यदि आप अपने पैरों न खड़ा होंगे तो आपको कौन पूछेगा। इन्हीं अल्प शब्दोंमें मैं इस प्रस्तावका अनुमोदन करता हूं।

समर्थन करते हुए पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने कहा :—

हमें केवल प्रतिवाद ही नहीं करना है, प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि घरपर अंगरेज़ीका व्यवहार न करेंगे। किसी व्यक्तिने एक मनुष्यसे कहा खुली रहे तो सारे शहरकी क्या दशा होगी, तुम कहां रहोगे? तुम्हारा घर तो पानीसे भर जायगा। उसने कहा,—क्यों—मैं अपने घरकी कल बन्द कर दूंगा। वैसेही विलायतकी कल खुलने दीजिये, आप अपनी कल बन्द करनेको तय्यार रहें। आप अंगरेजीको प्रवेश करने न दें। देखें नोल्ससाहबका प्रस्ताव क्या करता है।

भाइयो!

> चहहु जो साँचो निज कल्यान,
> तो सब मिलि भारतसन्तान।
> जपहु निरन्तर एक जबान,
> हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥

तदनन्तर सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् बाबू सारदाचरण मित्र एम० ए०, बी० एल०ने, बङ्गीय साहित्य परिषद्की ओरसे दूसरे दिन ५ बजे दिनको प्रतिनिधियोंको निमन्त्रण किया। प्रतिनिधियोंकी ओरसे सभापति महाशयने धन्यवादपूर्वक आमन्त्रण स्वीकार किया। इस समय श्रीयुत रूड़मल गोयनकाने सूचना दी कि बंगला "विश्वकोष" के निर्माता श्रीयुत नगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव महाशय हिन्दीमें भी विश्वकोष लिख रहे हैं।

तदनन्तर बाबू राजेन्द्रप्रसादके प्रस्ताव तथा पं० हरिशङ्कर शास्त्री (हरद्वार) के अनुमोदनसे आगामी वर्षके लिये स्थायी समितिके पदाधिकारी नियुक्त हुए। इसके बाद भिन्न भिन्न प्रान्तोंके प्रतिनिधियोंने अपने अपने प्रान्तोंके

इसके बाद स्थायी समितिके मन्त्रीने आय-व्ययका चिट्ठा और वर्षभरका कार्य विवरण उपस्थित किया और प्रस्ताव किया कि यह पास हो। यह प्रस्ताव प० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा अनुमोदित होकर सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ। यह कार्य्यविवरण परिशिष्ट (ङ)में दिया गया है।

तदनन्तर भागलपुरके पं० भगवानप्रसाद चौबेने सम्मेलनको भागलपुरमें आमन्त्रित किया। निश्चय हुआ कि सम्मेलनकी चतुर्थ बैठक भागलपुरमें हो।

तत्पश्चात् सभापति महाशयने मु० भृगुनाथलाल वर्म्माको गानसे सन्तुष्ट होकर कलकत्ताकी नागरी प्रचारिणी सभाकी ओरसे स्वर्णपदक दिया और कहा—

ईश्वरकी कृपासे आपकी सभा निर्विघ्न समाप्त होती है। मैं उन प्रतिनिधियोंको धन्यवाद देता हूं, जो परिश्रम कर अनेक प्रान्तोंसे भांति भांतिकी असुविधा सहकर आये हैं। स्वागतकारिणी सभाके सदस्योंको अनेकानेक धन्यवाद है, जिन्होंने सब लोगोंको सन्तुष्ट और प्रमुदित किया है। अब मुझे यह प्रार्थना करना आवश्यक है कि आजकल सभासमितियोंका कार्य नहीं चलता है। इसका कारण यह है कि जब काम आते हैं तब तो सब जी जानसे काम करते हैं, पर पीछे भूल जाते हैं, यहां ऐसा न होना चाहिये। आपको नित्यके कार्यमें इसका सदैव ध्यान रखना चाहिये कि आपकी भाषा भारतकी राष्ट्रभाषा है, उसके लिये आपको भारतके विविध अञ्चलोंमें कार्य करनेकी आवश्यकता है। स्थायी समिति इसके लिये यत्न करेगी और उससे बहुत कुछ कार्य होनेकी आशा होती है। इसके साथ साथ यदि महाजनोंके बहीखाते नागरीमें रखे जायं तो हिन्दीकी बड़ी उन्नति हो। बाबू मोतीचन्दजी और बाबू शिवप्रसादजीने जैसा किया है, वैसा ही सब आर्यसन्तानोंको करना चाहिये। सबको चाहिये कि, अदालतोंमें सब कागज हिन्दीमें दाखिल करें। अन्तमें स्वेच्छासेवकोंको अनेक धन्यवाद है, जिन्होंने पठनपाठन छोड़ आपकी सेवा की है।

इसी समय दिल्लीमें जुलूसके समय लोकप्रिय बड़े लाट लार्ड हार्डिञ्जपर अत्याचार किये जानेकी सूचना मिली और शीघ्र ही निम्नलिखित प्रस्तावको सभापति महाशयने उपस्थित किया।

२८ वां प्रस्ताव

"इस सम्मेलनको अभी यह सुनकर कि, आज (ता: २३-१२-१२) दिल्लीमें भारतवर्षके गवर्नर् जेनरल श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज और श्रीमती लेडी हार्डिञ्जके ऊपर किसी आततायीने बम्ब फेंका है और उस घृणित कार्य्यसे लार्ड हार्डिञ्जको चोट लगी है, असीम क्रोध और दु:ख हुआ है। यह सम्मेलन ईश्वरको धन्यवाद देता हुआ कि उसने श्रीमान् और श्रीमतीकी उस दुर्घटनामें रक्षाकी उनके प्रति सादर अपनी सहानुभूति प्रकट करता है और ईश्वरसे प्रार्थना करता है कि, वह श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्जको शीघ्र आरोग्य करे।

यह सम्मेलन गवर्नर् जेनरलके उस जमा-

द्वारके कुटुम्बियोंके साथ जिसकी इस दुर्घटनासे मृत्यु हुई है और उन सब लोगोंके साथ जिनके चोट लगी है अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करता है।"

बाबू राजेन्द्रप्रसाद बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय प्रभृतिने इस प्रस्तावपर व्याख्यान दिया।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डनने प्रतिनिधियों-की ओरसे सभापतिजीको धन्यवाद देते हुए कहा:—इस वर्ष पण्डितजी कितनी कठिनाइ-योंका सामना कर यहां आये हैं, आपने कैसी योग्यतासे काम किया है, यह आपको स्मरण है। आपने भोजनादि छोड़कर ३॥ बजे रात-तक विषयनिर्व्वाचनसमितिमें बैठ जिस गाम्भी-र्यका परिचय दिया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आप हिन्दीके लिये उस समयसे काम कर रहे हैं, जब हिन्दीकी उतनी पूछ न थी। आपको सहस्रश: धन्यवाद है।

इसके बाद पण्डित रामजीलाल शर्म्माके प्रस्ताव तथा पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीके अनुमोदनसे निम्नलिखित सज्जनोंको धन्यवाद दिया गया :—(१) दातागण (२) कर्जन थियेटरके अध्यक्ष (३) प्रतिनिधिगण (४) स्वेच्छासेवक।

बाबू पुरुषोत्तम रायने पं०छोटूलालमिश्रको सभापति होनेके लिये और पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीको रुपये इकट्ठे करनेके लिये धन्यवाद दिया।

सकुशल ७॥बजे रातको सभा समाप्त हुई।

इसी रातको ८॥ बजे गायनाचार्य श्रीयुत पण्डित विष्णुदिगम्बरजीको मण्डलीका जलसा सम्मेलनके सहायतार्थ कर्जन थियेटर हालमें हुआ। लोगोंकी अच्छी भीड़ थी। इस रात-की आयका आधा हिस्सा (१५२६) विष्णु-दिगम्बरजीने सम्मेलनफण्डमें दे दिया।

मङ्गलवार (ता० २४-१२-१२)

आज साढ़े चार बजे सन्ध्याके समय समागत प्रतिनिधि, सभापति महाशय तथा स्वागतकारिणी समितिके सभापति, मन्त्री और सदस्योंका एक साथ फोटो लिया गया। सभापति महाशयका चित्र अलग भी लिया गया। इसके बाद मलयपुरके छात्रद्वयने बिदाईका सुन्दर गीत बहुत करुणास्वरमें गाया। स्वागतकारिणी समितिकी ओरसे पं०छोटूलाल-जीमिश्रने उन्हें एक एक स्वर्ण पदक देनेकी प्रतिज्ञा की।

बिदाईका गीत।

श्रीअयोध्या प्रसाद सिंह रचित।

राग देस—तीन ताल।

कब यह छवि नयनन पथ ऐहै।
हिन्दीकोविदसमारोह यह,
लखि कब नयन अघैहै।
कब हिन्दीरसिकनके हियसों,
द्वेषदुराग्रह जैहै॥
तजि विरोध भाईभाइनकँह,

कब वात्सल्यप्रेमवश जननी,
हियसों कोप दुरैहै ॥
कब हिन्दीजननी निजसन्तति,
प्रेमसहित अपनैहै।
बनि सर्वाङ्गसुन्दरी कब पुनि,
रूपछटा फैलैहै ॥
उन्नतिशैलशिखर चढ़ि हिन्दी,
कब निज दरस दिखैहै।
कब हिन्दीको सुयश चारु चहुँ
दिशि दिगन्तलों छैहै ॥
कब हिन्दीकी विजयपताका,
दशों दिशा फहरैहै।
बिछुरत होत दुसह दुख दारुण,
धीरज कौन धरैहै ॥
करहु ग्रहण पुष्पाञ्जलि प्रियवर,
जासो प्राण जुड़ैहै ॥

साहित्यिक सम्मेलन।

प्रतिनिधियोंका सम्मान।

तृतीयहिन्दीसाहित्यसम्मेलनके प्रतिनिधियोंके सम्मानार्थ स्थानीय वंगीय साहित्य-परिषद्ने मङ्गलवार (ता० २४-१२-१२) को सन्ध्याको अपने स्थानपर सान्ध्यसम्मेलनकी व्यवस्था की थी। द्वारपर नौबत बज रही थी। परिषद् मन्दिरके द्वारपर उसके सभापति हाईकोर्टके भूतपूर्व जज श्रीयुक्त सारदाचरण मित्र, टाकीके जमीन्दार श्रीयुक्त राय यतीन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०, बी० एल०, श्रीयुक्त हीरेन्द्रनाथ दत्त वेदान्तरत्न, एम० ए०, बी० एल०, महामहोपाध्याय पण्डित सतीशचन्द्र विद्याभूषण, पण्डित पांचकौड़ी बनर्जी, प्राच्यविद्या महार्णव बाबू नगेन्द्रनाथ बसु तथा परिषद्के अन्य विद्वान् सदस्य सज्जन आगत प्रतिनिधियोंका स्वागत करते थे। सम्मेलनके सभापति श्रीयुक्त पण्डित बदरीनारायण उपाध्यायके पहुँचनेपर सारदा बाबूने पुष्पमाल्य पहनाकर उनका स्वागत किया। हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके कितने ही प्रतिनिधि घुड़दौड़, सर्कस, पोलो आदि देखने चले गये थे, पर तो भी बहुत से हिन्दीसाहित्यसेवी वहाँ उपस्थित हुए थे, उनमेंसे कुछके नाम ये हैं :—पण्डित राधाकान्त मालवीय, एम० ए०, पण्डित मुरलीधर मिश्र, एम० ए०, एल० एल० बी०, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, एम०ए०,एल०एल०बी०, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, पण्डित छोटूलाल मिश्र, बाबू गोकुलचन्द, पण्डित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, पण्डित रामजीलाल शर्मा, पण्डित जगन्नाथप्रसादशुक्ल, पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय, पण्डित नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय,एम०ए०,एल०एल०बी०,पण्डित सूर्यनारायणदीक्षित एम०ए०,एल०एल०बी०,पण्डित इन्द्रनारायण द्विवेदी, पण्डित प्रभाकरेश्वर उपाध्याय, बाबू राजेन्द्र प्रसाद एम० ए०, बी० एल०, पण्डित बलभद्र प्रसाद ज्योतिषी,बी०ए०, श्रीयुक्त सत्यदेव, श्रीयुक्त आनन्द स्वामी, पं० पन्नालाल, पण्डित हरिशङ्कर शर्मा, पण्डित राधाकृष्ण ओझा, एम० ए०, बाबू शिवनन्दन सहाय, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी, पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, बाबू अयोध्याप्रसाद सिंह, पण्डित झाबरमल शर्मा, पण्डित वृद्धिचन्द वैद्य, पण्डित भूरालाल मिश्र, पण्डित नन्दकुमारदेव शर्मा, श्रीयुक्त बदरीनाथ वर्मा, एम० ए०, पं०

रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, पण्डित रामप्रसाद मिश्र, पण्डित निरञ्जनलाल शुक्ल, पण्डित वासुदेव मिश्र, बाबू श्यामलाल लखनेश्वर, बाबू बालचन्द मोदी। परिषद्‌की ओरसे सब सज्जनोंको मालाएं पहनायी गयीं।

पहले एक बङ्गीय पण्डितने श्लोकपाठ किया। अनन्तर ऐक्यतान(कन्सर्ट)वाद्य हुआ। तदनन्तर पण्डित पांचकौड़ी बन्द्योपाध्यायने परिषद्‌की ओरसे आगत हिन्दीसाहित्यसेवियोंका स्वागत किया। आपने कहा कि, हमारे पूर्वज पश्चिमसे आकर बङ्गालमें बस गये थे; वास्तवमें हम दोनों भाई हैं। आज बड़े आनन्दका दिन है कि, हम दोनोंका मिलन हो रहा है। यह मिलन अपूर्व है। अब भेदाभेदका समय जाता रहा। इस प्रकारके मिलनसे राष्ट्रसङ्गठनमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी। आपके बैठने पर साहित्यपरिषद्‌के सभापति श्रीयुक्त सारदाचरण मित्रने एक छोटी वक्तृता दी। अनन्तर पण्डित बदरीनारायणजीने सम्मेलनके प्रतिनिधियों और अपनी ओरसे परिषद्‌को धन्यवाद दिया और बङ्गसाहित्यकी उन्नतिपर आनन्द प्रगट किया। इसके अनन्तर पण्डित क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद, एम०ए०,ने बंगलाकी कविता पढ़ी।

इसके बाद प्रसिद्ध हास्यरसअभिनेता चित्तरञ्जन गोस्वामीने अपने अभिनयसे समस्त उपस्थित सज्जनोंका चित्तरञ्जन किया। इसके बाद दो बङ्गाली सज्जनोंका गान हुआ। इसके उपरान्त पण्डित बैजनाथ चौबे, पण्डित राधाकान्त मालवीय, श्रीसत्यदेव, पण्डित मुरलीधर मिश्रके व्याख्यान हुए। पण्डित मुरलीधर मिश्रने बंगलामें व्याख्यान दिया।

अनन्तर पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने कहा कि जब किसीका भाई घरसे निकलकर कहीं दूसरे देशमें चला जाता है और उसका समाचार नहीं मिलता, तब वह अपने भाईको ढूँढ़नेके लिये निकलता है। फिर अपने भाईको पाकर उसे जितना आनन्द होता है उतना ही आज हमें भी होता है। आप हमारे बिछुड़े हुए भाई हैं। आपको ढूँढ़ते हुए आज हम यहां पहुँचे हैं। इसलिये आपको पाकर सचमुच हमें बड़ा आनन्द हुआ है। आपको यदि दीन, हीन अवस्थामें पाते, तो कदाचित् हमें उतना आनन्द नहीं होता, जितना आपको इस उन्नत अवस्थामें धनसम्पत्तिसे परिपूर्ण देखकर हो रहा है। पैत्रिक सम्पत्तिपर सब भाइयोंका समान अधिकार है। इसलिये हमारा जो प्राचीन साहित्य है, वह हम आपको देनेको प्रस्तुत हैं। आपने जो कुछ ज्ञान अर्जन किया है, उसपर हमारा कानूनन कोई अधिकार नहीं है, आप यदि कृपा कर देना चाहें, हम लेनेको प्रस्तुत हैं। अब हम लोगोंको आपसमें आदानप्रदान कर भारतके राष्ट्रसङ्गठनमें सहाय होना चाहिये। सचमुच आजके सम्मेलनसे हम गद्‌गद् हो रहे हैं।

अन्तको सत्यदेवजीने देशभक्तिपूर्ण गीत गाया। निमन्त्रित सज्जनोंके लिये मिष्टान्न और फलोंकी व्यवस्था की गयी थी। निमन्त्रित सज्जन परिषद्‌के सभ्योंके इस आदर-सत्कारसे बहुत प्रसन्न हुए।

१०, ११, १२ वें फरमे कलकत्तेके नरसिंह प्रेसमें बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा मुद्रित।

परिशिष्ट (क)

सहानुभूति सूचक तार या पत्र भेजनेवाले सज्जनोंके नामः--

श्रीयुत महाराजा बहादुर, रीवाँ।
" राय देवीप्रसाद पूर्ण, बी० ए०, एल० एल० बी०, कानपुर।
" महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रयाग।
" लाला हंसराज, लाहौर।
" पद्मसिंह शर्म्मा, ज्वालापुर।
" पं० दीनदयालु शर्म्मा व्याख्यान-वाचस्पति, झझ्झर।
" पं० रमावल्लभ मिश्र, एम० ए०, कलक्टर, पुरी।
" पं० शुकदेवविहारी मिश्र, सीतापुर।
" महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, प्रयाग।
" मुनशीदेवीप्रसाद, मुन्सिफ, योधपुर।
" माननीय राय रामशरण दास बहादुर, एम० ए०, फैजाबाद।
" मैथिलीशरण गुप्त, चिरगांव।
" माननीय राजा माधोलाल, काशी।
" पं० लज्जाराम शर्म्मा, बून्दी।
" पं० बालकृष्ण भट्ट।
" जमसेदजी अनवाला, एम० ए०, सेण्ट्रल हिन्दू कालेज, बनारस।
" पं० गोकर्णनाथ मिश्र, लखनऊ।
" सम्पादक जैन गजट, अलीगढ़।

श्रीयुत जी० के० देवधर, सर्वेंण्ट्स आव इण्डिया सोसाइटी, बम्बई।
" पं० नन्दलाल विष्णुलाल पांड्या, मथुरा।
" शारदाप्रसाद, एम० ए०, वकील, प्रयाग।
" डाक्टर लक्ष्मीपति, एल० आर० सी० पी० एस०, दानापुर।
" लक्ष्मीप्रसाद पाण्डे, लखनऊ।
" गिरधारीलाल भारद्वाज, हैदराबाद, सिन्ध।
" जगमोहनलाल, अलवर।
" पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र, बंगहा, चम्पारन।
" व्रजलाल वैद्य, अमृतसर।
" शुभहितकारिणी सभा, चुरु।
" ठाकुर हनुमान सिंह, मुरादाबाद।
" पं० नन्दलालजी, कांगड़ी गुरुकुल।
" ठाकुर जगन्नाथ बख्श सिंह, रायबरेली।
" योगेश्वरप्रसाद सिंह, बी० ए०, बी० एल०, मुजफ्फरपुर।
" हरेकृष्णप्रसाद, बी० ए०, भागलपुर।
" गयाप्रसाद सिंह, मुजफ्फरपुर।
" राजपूत महासभा, लाहौर।
" रामप्रपन्नाचार्य्य, बरौदा।

श्रीयुत रामप्रपन्नाचार्य्य शास्त्री, ऋषिकुल, वृन्दावन।
„ बालमुकुन्द वर्म्मा, काशी।
बाघम्बरी, प्रयाग।
„ गङ्गाप्रसाद गुप्त, काशी।
„ हरिभाउ, औदुम्बर, काशी।
„ अखिलचन्द्र पालित, कूचविहार।
„ कुंवर महेन्द्रपाल सिंह, कोटला।
„ पं० चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, बम्बई।
„ सेठ दामोदरदास राठी, ब्यावर।
„ पं० श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०।
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
„ श्यामसुन्दर दास, बी० ए०, काशी।
„ कृष्णकान्त मालवीय।
गुजराती साहित्यसभा, अहमदाबाद।
श्रीयुत चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०।
„ पं० सोमनाथ भाड़खण्डी, बांकीपुर।
„ माननीय जष्टिस आशुतोष चौधरी, हाईकोर्ट, कलकत्ता।
„ पं० मदनमोहन मालवीय।
„ पं० जगन्नाथ पुच्छरत्, अमृतसर।
„ वैद्य जटाशङ्कर लीलाधर त्रिवेदी, अहमदाबाद।
„ महामहोपाध्याय पं० बांके राय, दिल्ली।
„ „ हरनारायण शास्त्री, दिल्ली।
„ देवीप्रसाद मारवाड़ी, भागलपुर।
„ बासुदेवराव आपटे, आनन्द-सम्पादक, पना।

श्रीयुत कालिकाप्रसाद सिंह, बी० ए०, बांकीपुर।
„ गणेशलाल, भागलपुर।
„ अयोध्याप्रसाद पाठक, बी० ए०, एल० एल० बी०, आगरा।
„ आर० बरकाकाटी, बी० ए०, आसाम।
„ भवानीदत्त जोशी, सतना।
„ लक्ष्मीनारायण गुप्त, अलीगढ़।
„ ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा, आरा।
„ अखौरी वासुदेवनारायण सिंह, प्रयाग।
„ जयरामदास, बनारस।
„ गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्य, मथुरा।
श्रुतिबोध, बम्बई।
एडवर्ड हिन्दीपुस्तकालय, हाथरस।
„ रघुनाथप्रसाद कपूर, हाथरस।
„ गोपाललाल खत्री, लखनऊ।
„ देवीप्रसाद उपाध्याय, चम्पारन।
„ सिद्धिप्रसाद उपाध्याय, चम्पारन।
„ साहित्योपाध्याय पं० बदरीनाथ शर्म्मा, मिरजापुर।
„ भगीरथदास हालना, हाथरस।
साधारण महामण्डल, बरोदा।
„ वैद्यनाथ शर्म्मा, प्रयाग।
„ लाला सूरजबली सिंह, सतना।
„ सूर्य्यनारायण शर्म्मा, जब्बलपुर।
„ बुलाकीदास रस्तोगी, लखनऊ।
„ जानकीप्रसाद, रीवां।
„ नरेन्द्रनारायण सिंह, प्रयाग।
„ अम्बिकाप्रसाद गुप्त, काशी।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० रघुनन्दन त्रिपाठी साहित्य-सांख्य-व्याकरणाचार्य्य, गया।
„ कुंवर हनुमन्तसिंह, आगरा।
„ शिवनारायण मिश्र, कानपुर।
„ माहेश्वरी सम्पादक, अलीगढ़।
श्रीयुत रामनारायण, काशी।
„ लक्ष्मणदत्त, कानपुर।
„ घनश्याम शर्म्मा, आगरा।
„ रामदयाल, जयपुर।
„ पं० नेकीराम शर्म्मा।

परिशिष्ट (ख)

पैसा-फण्डमें चन्दा देनेवालोंकी नामावली :—

(१) २१०० पैसे—डाक्टर एस. के. बर्म्मन, ५ ताराचन्द दत्त ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(२) ६४१ „ पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, ८७ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट।
(३) २५१ „ बाबू गोपीनाथ खत्री, शिवठाकुरकी गली नं० ३८, बड़ाबाजार
(४) ३२ „ पं० सेवादीन त्रिपाठी, जनरल पोष्ट आफिस, कलकत्ता।
(५) १०० „ बा० अयोध्याप्रसाद, २३।१ सिंघीबागान, कलकत्ता।
(६) १००० „ बा० रामदेव चोखानी, १३७ हरीसन रोड, कलकत्ता।
(७) १००१ „ बा० सूरजमल जालान, १८२ सूतापट्टी, कलकत्ता।
(८) १००१ पैसे—बा० बिसेसर लाल हरगोविन्द, १३५ तुलापट्टी, कलकत्ता॥
(९) ११११ „ पं० बैजनाथ चौबे, ३७ हजरा ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(१०) १६०० „ नागरमलजी राजमड़िया, १२।१३ शेख शाहिद लेन, हरीसन रोड, कलकत्ता।
(११) १२ „ बा० हरगौरी सहाय, १५ तैलीपाड़ा रोड, भवानीपुर कलकत्ता
(१२) ६४ „ पं० सूर्य्यप्रसाद शुक्ल ठि० विश्वम्भरनाथ बालमुकुन्द, ५० खेंगरापट्टी, कलकत्ता॥
(१३) १६०० „ बा० केदारनाथ कैसान, १२६ हरीसन रोड, कलकत्ता।

(१४) १०१ पैसे बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी, ६।२ मेडिकल कालिज स्ट्रीट, कलकत्ता।

(१५) १००४ „ बा० रङ्गलाल जाजोदिया, १४० हरीसन रोड।

(१६) ३२० „ पं० रामनाथ शुक्ल, श्रीनागरीप्रचारिणी सभा, ४०१।२ अपर चीतपूर रोड, कलकत्ता।

(१७) ३२० „ लक्ष्मीनारायण मरोदिया, ११ पारख कोठी, हरीसन रोड कलकत्ता।

(१८) २०० „ बा० अयोध्या प्रसाद वर्म्मा, २३।११ बाराणसी घोष सेकेण्ड लेन, कलकत्ता।

(१९) ६४ „ मथुरानाथ ८५।३, मछुआ बाजार स्ट्रीट

(२०) ८ „ वि० आ० देशपांडे, ८५ ईडन हास्पिटल रोड।

(२१) २०० „ भूरामल तोताराम, टिम्बर मर्चेण्ट, काठ गोला, नीमतल्ला कलकत्ता।

(२२) ३२० „ पं० रामाधार पांडेय, ३४ आर्मेनियन स्ट्रीट।

(२३) ७०४ पैसे पं० हरिहर शर्म्मा द्विवेदी, जगबन्धो बड़ाल लेन।

(२४) ३२० „ दुर्गाप्रसाद खेतान, १२५ हरीसन रोड।

(२५) २५६ „ बा० विनायकलाल खत्री, ५ शिवठाकुरकी गली।

(२६) ५०० „ मारवाड़ी विद्यार्थी क्लब, ४०२ अपर चीतपुर रोड।

(२७) २०० „ कविराज मदनगोपाल, ४४।१ बांसतल्ला स्ट्रीट।

(२८) २०० „ पं० मदनमोहन शर्म्मा, ८४ तुला पट्टी।

(२९) १०१ „ पं० निरञ्जनलाल शुक्ल, १।१ रायलेन, जोड़ासांको, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

(३०) १००१ „ बा० शिवनन्दन राय, वकील हाईकोर्ट, १२ कंसारीपाडा रोड, भवानीपुर, कलकत्ता।

(३१) १०१ „ यमुनाप्रसाद सिंह, ५२ शम्भुनाथ पंडित स्ट्रीट, भवानीपुर कलकत्ता।

(३२) २००० पैसे—बा० लक्ष्मीनारायण खत्री, १४३ हरीसन रोड।

(३३) ३६० „ बाबू बैजनाथ (प्रतिवर्ष) सिंह, औरङ्गाबाद, काशी, ३० बड़तल्ला ष्ट्रीट।

(३४) ३२१ „ बा० हनुमानप्रसाद पोद्दार, १६ पारख कटरा, पगैयापट्टी।

(३५) १६ „ पं० मनराखन लाल शुक्ल, १।१ राय लेन, जोड़ासाको।

(३६ ६४० „ नागरमलमोदी, पवित्र वस्तु प्रचारक कम्पनी, ७३ बड़तल्ला ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(३७) ६४ „ विश्वमणि आचार्य्य दीक्षित, १२ पटुआटोला लेन।

(३८) ६४ „ पं देवदत्त शर्म्मा ठि० अचीत लाल जगन्नाथप्रसाद, २१२ दरमाहट्टा ष्ट्रीट।

(३९) ६४ „ पं० आनन्दी लाल शर्म्मा, ५७ बड़तल्ला ष्ट्रीट।

(४०) १५०० पैसे—बा० लक्ष्मीनारायण झुनझुनवाला ठि० रामजीदास लक्ष्मीनारायण, १३१ तुलापट्टी, कलकत्ता।

(४१) ३२५ „ बा० कनका प्रसाद चौधरी, किशोरीलाल चौधरी का मकान १५१ मछुआ बाजार।

(४२) ४०० „ हरिबक्स जालाण, मल्लिक ष्ट्रीट।

(४३) ६४ „ पं० राजाराम शर्म्मा, ४ बाबूलाल लेन, नाईटोला, कलकत्ता

(४४) ६४ „ बा० गोविन्दप्रसाद भाटिया, ८४ काटन ष्ट्रीट।

(४५) ६४ „ पं० गोपीनाथ शुकुल, ७५ बड़तल्ला ष्ट्रीट।

(४६) १०० „ अम्बाशंकर मनसुखाराम जोशी, नागरमल रामेश्वर की दूकान, ८० सुतापट्टी, कलकत्ता।

(४७) २१०० „ गोपीनाथ परसोत्तम दास, ११३ मनोहर दासका कटरा।

(४८) ६४ पैसे—हरमाधवप्रसाद सिंह, ५७ ग्वाल टोली रोड, भवानीपुर।

(४९) ५१ „ बदरीनाथ बर्म्मा, ६।२ मेडिकल कालेज ष्ट्रीट कलकत्ता।

(५०) ११०१ „ मदनजी, ६० एडेन हिन्दू होस्टल, कलकत्ता।

(५१) ६४ „ गुलाबदास भाटिया, ९१ तुलापट्टी।

(५२) १०१ „ मुरारीलाल कपूर, १४८ बड़बाजार ष्ट्रीट।

(५३) ५१ „ ब्रजनन्दन सहाय, ९७ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट।

(५४) ६४ पैसे तथा ॥) मासिक सुमेरचन्द्र मेहरा, ७, जोड़ा पोखर लेन।

(५५) ३२ „ दुर्गाप्रसाद शुक्ल, १०० मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट।

(५६) ६४ „ गोविन्दराव, ३२ कर्नवालिस ष्ट्रीट।

(५७) ५०० पैसे—मुन्नालालजी कोठारी, चुन्नीलाल अग्रवालकी दूकान, १९९ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(५८) १००० „ चुन्नीलाल अग्रवाल, १९९ हरिसन रोड।

(५९) २००० „ गणेशदास खत्री, १९२ क्रास ष्ट्रीट „

(६०) १२५ „ श्यामसुन्दर बर्म्मन, मेम्बर बड़ा बाजार स्पोर्टिङ्ग क्लब, ११९ हरिसन रोड।

(६१) ५०१ „ मदन मोहन बर्म्मन, मेम्बर बड़ा बाजार क्लब, ४४ वाराणसी घोष लेन।

(६२) ११०० „ मुन्नालाल जी चमड़िया, १४१ चोर बागान।

(६३) १०१ „ सेडमल जैपुरिया, २३ रूपचन्द्र राय ष्ट्रीट।

(६४) २००१ „ सेडमल डालमिया, ६९ तुलापट्टी।

(६५) ३२६४ „ पं० सर्बजीत तिवारी, १५५ हरिसन रोड, बड़ाबाजार स्पोर्टिंग क्लब।

(६६) ११०१ पैसे—मथुरा दास जालीराम, ७६ तुलापट्टी।

(६७) ५०१ ,, राधा किसुन रघुनाथ, ७६ तुलापट्टी।

(६८) ५०१ ,, भीखालाल बुधराम, ७६ तुलापट्टी।

(६९) ५०१ ,, रामसरूप जगन्नाथ, ७६ तुलापट्टी।

(७०) २२० ,, एक बङ्गाली, १९।११ मदन मित्र लेन।

(७१) १०० ,, एक विधवा बङ्गालिन, डाक्टर राधारमण मैत्र, कलकत्ता।

(७२) ६४ ,, जयदेव शर्म्मा, ६ चोर बागान, कलकत्ता।

(७३) २१ ,, गजानन शर्म्मा, जोड़ा पोखर लेन, कलकत्ता।

(७४) ११) रुपये कन्हैयालाल तुलसीराम, ४१ बारमनी ष्ट्रीट।

(७५) ६४ पैसे रामेश्वरी देवी, धर्म्मपत्नी, हरगोविन्द दास गुप्त, १३९ चोरबागान, कलकत्ता।

(७६) ६४ पैसे—राजवन्ती देवी, धर्म्मपत्नी भानुप्रकाश गुप्त १३९ चोरबागान, कलकत्ता।

(७७) १२८ ,, शिवनन्दन सहाय, कार्य्य भारतमित्र आफिस, कलकत्ता।

(७८) ६४ ,, गङ्गी देवी, माता हरगोविन्द दास गुप्त १३९ चोरबागान, कलकत्ता।

(७९) १०१ ,, तारिणी चरण चौधुरी, ८।२ बैठकखाना लेन।

(८०) १०१ ,, मानिकलालजी तूलसदास ठि० सुखदेवदास रामप्रसादकी दूकान, सूतापट्टी, कलकत्ता।

(८१) ६४ ,, मुन्नालाल चौबे, हिन्दी बङ्गवासी, कलकत्ता।

(८२) १६०० ,, लाला बलदेव सिंह जी देहरादूनवाले १३०, मछुआबाजार ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(८३) १००० ,, पं० छोटूलाल मिश्र २१ राजा कटरा, कलकत्ता।

(८४) २००० पैसे—मदनमोहन बर्मन, १४५ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(८५) २०४८ ,, बड़ा बाजार स्पोर्टिंग क्लब, १७८ सूतापट्टी, कलकत्ता।

(८६) १००० ,, जानकीराम, ३९ इक्कापट्टी कलकत्ता।

(८७) १६ ,, राय हरदत्त प्रसाद, २५ एडेन हिन्दू होस्टेल।

(८८) ६४ ,, अवधेश्वरीप्रसाद, १८ एडेन हिन्दू होस्टेल।

(८९) ६४ ,, नवलकिशोर प्रसाद, १८ एडेन हिन्दू होस्टेल।

(९०) १०१ ,, श्यामनारायणजी मिमेम्बर बड़ा बाजार स्पोर्टिंग क्लब, १८३ हरिसन-रोड-कलकत्ता।

(९१) १०१ ,, पं० मनीरामजी जेतली, मेम्बर बड़ा बाजार स्पोर्टिंग क्लब, १८१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(९२) ५०१ ,, सत्तरामजी राय, मेम्बर बड़ा बाजार स्पोर्टिंग क्लब, १६४ सूतापट्टी कलकत्ता।

(९३) ६४ पैसे—मोतीलाल लाठ, ६ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट।

(९४) १२८ पैसे गुलराज गनेड़ीवाला, ठि० अमोलकचन्द कन्हैयालाल, टिम्बर मर्चेण्ट, ७२ मदनमोहन दत्त लेन, कलकत्ता।

(९५) १६ ,, रामजी सहाय, १२ पटुवाटोली लेन, कलकत्ता।

(९६) ८ ,, एस० के० सिंह १५।५ शोभाराम बसाक लेन।

(९७) १६ ,, पं० सुन्दरलाल बाजपेयी, ७२।१ चासा धोवा पाड़ा।

(९८) ६४ ,, शिवप्रसाद सिंह, सारस्वत-क्षत्री-विद्यालय, कलकत्ता।

(९९) १०१ ,, पं० द्वारकाप्रसाद बाजपेयी, ३० मेदा पट्टी, बड़ा बाजार, कलकत्ता।

(१००) ९९ ,, ब्रजेश्वर सहाय, ६८।२ एडन हिन्दू होस्टल, कलकत्ता।

(१०१) २०१ पैसे फागूलाल चमड़िया ठि० शिव बकस मल चमड़िया३बेरा पट्टी, कलकत्ता।

(१०२) १२८ „ चुन्नीलाल पाठक, ३ जगवन्धु बड़ाल लेन।

(१०३) ३२ पैसे ललिताप्रसाद बर्म्मा १।१ जगमोहन साह लेन, चोरबागान।

(१०४) १२८ „ महेशचन्द्र प्रसाद, ४०२ अपर चितपुर रोड।

(१०५) ५४ „ चन्द्रशेखर मिश्र, कन्नू बाबूलाल चन्द- की कोठी, ४५ आर- मिनियम ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(१०६) १५०० „ रामप्रसाद चिमन लाल, ६ मुक्ता राम बाबू ष्ट्रीट।

(१०७) ६४ „ भुवनलाल, ५० ढाका पट्टी, कलकत्ता।

(१०८) ३२ „ रामलाल प्यारेलाल ७१ वड़तल्ला ष्ट्रीट।

(१०९) १०२ „ सदानन्द कपूर, ४३ बाराणसी घोष ष्ट्रीट।

(११०) ५००१ „ मारवाड़ी स्पोर्टिंग क्लब, ५ मल्लिक ष्ट्रीट।

(१११) ३२१ पैसे पवित्र वस्तु प्रचारक कम्पनी, ७३ बड़तल्ला ष्ट्रीट।

(११२) ५४ „ चंडी प्रसाद शर्म्मा, ४ हंसपोखर लेन, कलकत्ता।

(११३) १० „ हिन्दी शुभचिन्तक ६५।५ एडन हिन्दू होस्टल।

(११४) ८ „ वलिराम दुबे, ३ मिर्जापूर ष्ट्रीट, कल- कत्ता।

(११५) १६ „ शिवविनायक दी- चित, नं० ५ ग्राण्ट ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(११६) १०१ „ सुखानन्द भोगम, नं० ८७ हरीसन रोड, कलकत्ता।

(११७) १२८ „ बंसीधर पसारी, नं० ८० सूतापट्टी, कल- कत्ता।

(११८) ४ „ विक्रमादित्य पाण्डे, नं० १७ मलिक ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(११९) ८ „ मुन्नूलाल मेहरा, नं० २१ मदन गोपाल लेन, कल- कत्ता।

(१२०) ५०१ पैसे बी० एस० सिंह एण्डसन, नं० १७७ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(१२१) ३७ „ गनेशदत्त मिश्र नं० १८७ हरिसन रोड कलकत्ता।

(१२२) १५०० „ लोकनाथ जी ढ़ाढ़निया, १३६ तुलापट्टी, कलकत्ता।

(१२३) १५० „ रामरूप सिंह ठि० रामकिसुन दास चण्डी प्रसाद, नं० १३७ तुलापट्टी, कलकत्ता।

(१२४) १०० „ नित्यानन्द मिश्र नं० ६ लुकस लेन, कलकत्ता।

(१२५) ६४ „ बालकृष्णदास खन्ना, नं० ५ शम्भूनाथ मल्लिक लेन, बड़ा बाजार, कलकत्ता।

(१२६) ८ „ नरद पांड़े, नेशनल बेंक, कलकत्ता।

(१२७) १६ „ बहादुर सिंह गौतम नेशनल बेंक कलकत्ता।

(१२८) १६ „ गोपीदास पूजारी नं० ३२ बांसतला गली।

(१२९) १५०० पैसे गुलाबराय पोद्दार ५।१ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता।

(१३०) ६४० „ सांवलदास टंडन, इलाहाबाद बैंक लिमिटेड, कलकत्ता।

(१३१) ५०० „ चन्द्रकुमार अग्रवाल, नया चीना बाजार, कलकत्ता।

(१३२) ८ „ पी० बसु ठि० बसु राय चौधुरी नं० ८८।१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(१३३) ८ „ बजरङ्गलाल लोहिया उगरमल हजारीमल, ५१।५२ बड़तल्ला ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(१३४) १२८ „ गणेशदास खत्री, ३८१ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

(१३५) २०० „ श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके छात्र, १५३ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(१३६) ५०० „ पद्मनाभ शास्त्री, सोनापट्टी दूकान, कलकत्ता।

क्रम	रकम	नाम व पता
(१३७)	१५) पैसे	मंगलमिश्र (स्थायीपता काशीजी) हाल बाबू शीतल प्रसादकी कोठीमें।
(१३८)	१२० ,,	यशोदानन्दन अखौरी, ८७ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट।
(१३९)	५०० ,,	भव्वूलाल मिर्जापुरवाले, ७१ मिश्रनरो, कलकत्ता।
(१४०)	१२५ ,,	रामसरिख सिंह, ठिं रामकिसुनदास चण्डीप्रसाद, १३६ काटन ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(१४१)	११५ ,,	अम्बादत्त पाण्डे ७२ सोनापट्टी, कलकत्ता।
(१४२)	५०० ,,	व्रजनाथ मिश्र, लिलुआ, ई० आई० आर०, कलकत्ता।
(१४३)	१००० ,,	शम्भुनाथ खत्री, संस्कृत विभाग श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, १५३ हरिसन रोड कलकत्ता।
(१४४)	६४ ,,	नन्दनप्रसाद त्रिपाठी व्याकरण-साहित्य-शास्त्री, १४८ हरिसन रोड।
(१४५)	२०१ पसे	कमल नैन जो. ठि. खेमचन्दजी कमलनैन, ८ बैरा पट्टी।
(१४६)	१११ ,,	बा० देवकी सिंह, ५३ ष्ट्राण्ड रोड।
(१४७)	१०१ ,,	श्रीराम मिश्र जैमली, १८१ हरिसन रोड।
(१४८)	१०१ ,,	पं० गणेशलाल मिश्र १८६ हरिसन रोड।
(१४९)	३५६ ,,	बा० देवकीनन्दन खन्ना, १२५ वारासी घोष ष्ट्रीट।
(१५०)	१०१ ,,	पं० यदुनन्दन शर्म्मा, ७ शम्भु नाथ मल्लिक लेन।
(१५१)	१२५ ,,	बा० रघुराजकिशोर लाल, मुरार छात्रोन्नति सभा।
(१५२)	१०१ ,,	रामसागर तिवारी, जोड़ासांकूका थाना अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।
(१५३)	१२८ ,,	दयाराम सारस्वत छात्र, ६८ आगिन चौरास्ता।
(१५४)	६४ ,,	जगन्नाथ उपाध्याय, १२ पटुआ टोला लेन।
(१५५)	६४ ,,	मन्नाराम, १०८ कपाली टोला, कलकत्ता।

क्रम	राशि	नाम व पता
(१५६)	६४ पैसे	बा० कामता प्रसाद २५ एडेन हिन्दू होस्टेल, कलकत्ता।
(१५७)	४१ "	शिवप्रसाद चतुर्वेदी, ८७ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(१५८)	१६०० "	मंगमीरामजी बागड़ १२० हरीसन रोड, कलकत्ता।
(१५९)	३२१ "	इन्द्रचन्द भावसिंह-का, ११० सूतापट्टी, कलकत्ता।
(१६०)	३२१ "	भगवानदास चौधरी, १६० सूतापट्टी।
(१६१)	१००० "	पण्डित राजदेवपति, २२६ हरीसन रोड, कलकत्ता।
(१६२)	३०१ पैसे	रामनिवास पुजारी, १० सुखलाल जौहरी लेन, कलकत्ता।
(१६३)	३२० "	हरिगोविन्ददास गुप्त १३८ चोर बागान, कलकत्ता।
(१६४)	११०० रुपये	बाबू गोकुलचन्दजी, ३० बड़तल्ला ष्ट्रीट
(१६५)	११०० "	बाबू जयकृष्ण, ४५ आरमिनियन ष्ट्रीट,
(१६६)	३२० पैसे	मथुराप्रसादसिंह बी. ए. यूनिवर्सिटी लाका लेज १११ कालेज स्क्वायर कलकत्ता।
(१६७)	११०० पैसे	श्रीमती भागदेई मिश्रानी (बड़ाबाजार स्पोर्टिङ्ग क्लब) १८१ हरीसरोड, कलकत्ता
(१६८)	२५ "	श्रीमती चमेला बीबी (बड़ाबाजार स्पोर्टिङ्ग क्लब) १८१ हरीसन रोड, कलकत्ता।
(१६९)	३२ "	श्रीमती लक्ष्मीदेवी, (बड़ाबाजार स्पोर्टिङ्ग क्लब) १८१ हरीसन रोड, कलकत्ता
(१७०)	८ "	बालाराम भार्गव, २५ इडन अस्पतालरोड, कलकत्ता।
(१७१)	८ "	पुरुषोत्तम बलवन्त करकरे, २५ इडन अस्पताल रोड।
(१७२)	४ "	रामदेव प्रसाद गाजीपुरी, ५२ अपर चीतपुर रोड।
(१७३)	३२ पैसे	रामेश्वरप्रसाद, १० अपर चितपुर रोड।
(१७४)	३२ "	देवकीनन्दन तिवारी ५४ पार्वतीचरण लेन, कलकत्ता।
(१७५)	१० "	पं० रूपराम शर्मा, गौड़छत्रीका मकान ५ बांसतल्ला गली, कलकत्ता।

(१७६)	८१ पैसे	नर्मदाप्रसाद लाट, ६ मुक्तारामबाबू ष्ट्रीट।
(१७७)	१२८ ,,	बाबू रसिक लाल राय, ६० अखिल मिस्त्री लेन।
(१७८)	८ ,,	भोलानाथ तिवारी, २५।१ पगैया पट्टी, कलकत्ता,।
(१७९)	१६ ,,	बी. उपासनी, ४४ शिव ठाकुर लेन, कलकत्ता।
(१८०)	५०१ ,,	बख्तावरमल हरनाम ७६ तुलापट्टी।
(१८१)	५१ ,,	मातूराम पोद्दार, ७६ तुलापट्टी, श्रीनारायणका बासा, कलकत्ता।
(१८२)	१०१ ,,	हजारीमल हेताराम, ७५ तुलापट्टी, कलकत्ता।
(१८३)	१६ ,,	नरसिंहदास पंडित भिवानीकाठि० रामप्रसाद ईश्वरदास ३ बहरापट्टी कलकत्ता
(१८४)	५१ ,,	मुसद्दी लाल निगानिया, १५ कोलूटोला ष्ट्रीट राजमोहनबोस लेन, कलकत्ता।
(१८५)	५१ ,,	हरनारायण धरानियां, ११७ तुलापट्टी, कलकत्ता।
(१८६)	१२८ पैसे	दुर्गाप्रसाद, ४०२ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।
(१८७)	१००० पैसे	कुंवरमहेन्द्रपालसिंह
(१८८)	२०१) रु०	महन्थ गदाधर रामानुजदास, राजगोपालमठ, पुरी।
(१८९)	६४	पं० शिवचन्द्र शास्त्री प्रतिनिधि, जमालपुर, मैमनसिंह।
(१९०)	१०१ ,,	पं० दौलतराम शर्मा अध्यापक, मारवाड़ी सनातन विद्यालय, रानीगंज स्टेशन।
(१९१)	१८२ ,,	रामचीजसिंह, वल्लभ इण्डियन स्कूल, चक्रधरपुर, जिला सिंहभूमि।
(१९२)	३२० ,,	अवधविहारी शरण, पो० महेन्द्र, बांकीपुर।
(१९३)	१२८ ,,	हरनारायण प्रसाद, २२, मिंटो हिन्दू होस्टेल, डा० मुरादपुर, बांकीपुर।
(१९४)	१९ ,,	अखौरी बैद्यनाथ सहाय, नावा टोली, रांची।
(१९५)	५१ ,,	रघुनाथप्रसाद पाण्डेय, रूपकलाकुंज, छपरा।
(१९६)	३२० ,,	रामनारायण साह, बेटा उदित नारायण साह, आरा।

(१९७) ३२ पैसे हरनाथ द्विवेदी, जैन सिद्धाश्रम, आरा।

(१९८) २५६ „ श्रीभगवान प्रसाद चौबे, प्रतिनिधि भागलपुर हिन्दी-सभा, पो० बीरपुर, जि० भागलपुर।

(१९९) १००० „ पंचमसिंह वर्म्मा, कारखाना नमक सुलेमानी, जमोर, जिला गया।

(२००) २१२१ „ उपाध्याय पं० बदरी-नारायण चौधरी, मिर्जापुर।

(२०१) १००१ „ निहालचन्द वर्म्मा, नेपालीखपरा, काशी।

(२०२) ६४ „ विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह, गहमर गाजी, पुर।

(२०३) १०१ „ गोपाल राम, गहमर।

(२०४) १२९ „ चतुर्वेदी ज्वालाप्रसाद रिटायर्ड नायब तह-सीलदार, करवी, जिला बांदा।

(२०५) ६४०० „ महन्थरामलक्ष्मणदास, रामबाग, करवी, जिला बांदा।

(२०६) ३२००० „ श्रीमल्लराव मोटे-श्वरराव बलवन्त, करवी, जिला बांदा।

(२०७) ८० पैसे पं० महिपाल प्रसाद, हेड टीचर, बांदा।

(२०८) १००० „ पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग।

(२०९) १००० „ एक हिन्दीप्रेमी C/o. पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग।

(२१०) ६४० „ महादेवप्रसाद मुह-र्रिर मुंशी, नवाबबहादुर वकील, प्रयाग।

(२११) ३२०० „ श्रीमती महेश्वरी देवी C/o. बा० पुरु-षोत्तमदास टण्डन, प्रयाग।

(२१२) २५१ „ मन्नूलाल, C/o. पुरु-षोत्तमदास टण्डन, प्रयाग।

(२१३) ६४० „ गौरी पाठशाला, प्रयाग।

(२१४) ३२० „ जीवानन्द शर्म्मा, उपदेशक, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

(२१५) १०१ „ शेषधर शर्म्मा, दारा-गंज, प्रयाग।

(२१६) १०१ „ जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, दारागंज, प्रयाग।

(२१७) ९९ „ चन्द्रशेखर ओझा दारागंज, प्रयाग

(२१८)	१२५	"	चौधरी आदित्यनारायण सिंह, रामनगर, सिरसा, जिला प्रयाग
(२१९)	१२०	"	महेशदत्त शुक्ल, कानपुर।
(२२०)	६४	"	श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी C/o जीवन कार्यालय, गिलिस बाजार, कानपुर।
(२२१)	६४	"	चन्द्रिकाप्रसाद गुप्त, सआदतगंज, लखनऊ।
(२२२)	६४	"	रामकृष्ण, वल्लभगंज, आगरा।
(२२३)	१०००	"	बा० लालविहारी, सतना।
(२२४)	१००	"	दयाशङ्कर शुक्ल, बिन्दकी, जिला फ़तेहपुर।
(२२५)	६४	"	शुक्लाम्बरप्रसाद पाण्डेय, रायगढ़ (बी० एन० रे०)।
(२२६)	५००	"	नागा ज्ञानप्रकाश दास उदासीन, रांची, हाल निवासी, रायगढ़ (बी० एन० आर०)।
(२२७)	१२८	"	तारानाथ मिश्र, घुरसेना, पो० भाटापारा, जिला दुर्ग।
(२२८)	३०१	"	बंशीधर शर्म्मा, बालपुर, पो० चन्द्रपुर, जि० बिलासपुर।
(२२९)	१०१	"	शर्म्मन वैद्य, बड़ा मन्दिर, भिवानी।
(२३०)	५०१	"	शारदासदन पुस्तकालय, लक्ष्मणगढ़, सीकर।
(२३१)	१२५	"	पं० चन्द्रभूषण शुक्ल, हेडक्लर्क, मारवाड़ी, नागपुर।
(२३२)	७०००	"	पं० हरिशङ्कर शिवशङ्कर शास्त्री, पुस्तकालय, हरिद्वार।
(२३३)	६४	"	श्रीमती सावित्री देवी C/o पं० महादेव भट्ट, आह्मियापुर, प्रयाग।
(२३४)	२०	"	श्रीधरप्रसाद, १२ कंसारी पारा, भवानीपुर, कलकत्ता।
(२३५)	२५१	"	जी० चौधरी, ८।१ रूपचन्द्राय स्ट्रीट, कलकत्ता।
(२३६)	१५१	"	गजाधर गनेशदास C/o बैजनाथप्रसाद, १५४, सूतापट्टी, कलकत्ता।

परिशिष्ट (ग)

तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें नगद चन्दा देनेवालोंकी

नामावली।

(१) ८ पैसे मूंगालाल, ८बांसतला ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(२) ८ „ प्रभुप्रसाद, ५५बांसतला ष्ट्रीट,कलकत्ता।

(३) ६४ „ हेमचन्द्र सेन गुप्त प्रोफेसर औफ मथेमेटिक्स प्रेसीडेंसी कौलेज, कलकत्ता।

(४) २१ „ सीभगवन चुरीवाल मु० लछमणगढ़का ठि० श्रीनिवासराम सांवल, नं० ४५ जगन्नाथघाट,कलकत्ता।

(५) २१ „ मन्नालाल चूड़ीवाला मु० लछमणगढ़का ठि० दौलतराम रावतमल,४५ जगन्नाथ घाट, कलकत्ता।

(६) १००१ „ दौलतराम रावतमल, ४५ जगन्नाथ घाट, कलकत्ता।

(७) १२८ „ श्यामसुन्दर शुक्ल,ठि० हरनन्दराय फूलचन्द ७१ बड़तल्ला ष्ट्रीट, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

(८) १६ „ बाबू रामदेवजी मोदी, ठि० राधाकिसनजी रामदेव अफीम कटरा मो० देहली।

(९) १६ „ बसन्तीलाल सरावजी, रामकिसन दासजी गिरधारीलालजी सरावगी, २९ बड़तला ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(१०) १६ „ युगलकिशोरजी सरावगी, अफीम कटरा, मु० देहली।

(११) ६४ „ सदाशिव तिवारी प्रिण्टर वीरभारत, १६६बड़ाबाजार ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(१२) ८ „ नथमल आचार्य्य, ४२ बांसतला ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(१३) २ „ मन्मथोनाथ चौधरी, १६।४ श्रीमन्त दे लेन, कलकत्ता।

(१४) १६ „ रामदेव मिश्र, १६ मुन्शी सदरउद्दीन लेन, कलकत्ता।

(१५)	६४	,,	रामदास गुप्त, ७।२ हेलिडे ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(१६)	१२	,,	महादेव ब्राह्मण, १३२ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(१७)	१६	,,	शिवनारायण खत्री, ४५ तुलापट्टी, कलकत्ता।
(१८)	८	,,	रामेश्वर डालमिया, २८ बड़ी पाड़ा या मुनशी सदरउद्दीन लेन, कलकत्ता।
(१९)	२	,,	मुन्नू, चासाधोबा पाड़ा ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(२०)	१०१	,,	नेकीराम फरमानिया, ७६ तुलापट्टी, कलकत्ता।
(२१)	१६	,,	पं० ख्यालीराम तिवारी नव्वाबगञ्ज, कानपुर।
(२२)	१२८	,,	रामचरण खत्री, पञ्जाब नेशनल फण्ड, १५२ हरिसन रोड, कलकत्ता।
(२३)	१२८	,,	श्यामदास, पञ्जाब नेशनल बैङ्क, १३२ हरीसन रोड, कलकत्ता।
(२४)	६४	,,	सदाशिव तिवारी, प्रिण्टर वीरभारत, १६६ बड़बाजार ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(२५)	१२२	,,	लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, बड़ाबाजार, कलकत्ता।
(२६)	६४	,,	गोवर्धनदास खत्री, १६८ बड़ाबाजार, कलकत्ता।
(२७)	६०	,,	सीताराम, ५ शम्भुनाथ मल्लिक लेन, कलकत्ता।
(२८)	६४	,,	महेशप्रसाद जेसवाल, २२ मैदापट्टी, कलकत्ता।
(२९)	८	,,	पुण्यानन्द झा, २ प्रेमचन्द्र बड़ाल ष्ट्रीट, कलकत्ता। कलकत्ता।
(३०)	३२	,,	भगवतीप्रसाद, ठि० बाबू शीतलप्रसाद खड्गप्रसाद १० बड़तला ष्ट्रीट, कलकत्ता।
(३१)	१६	,,	पं० रामदेव चौमाल, ७ हंसपोखरिया, कलकत्ता।
(३२)	६४	,,	ईश्वरीप्रसाद, ३८ शिवठाकुर लेन, कलकत्ता।

(३३) १२८ „ मानप्रकाश गुप्त, १२८ चोर बागान, कलकत्ता।

(३४) ६४ „ रामचन्द्र, १२ मछुआबाजार, कलकत्ता।

(३५) २१ „ मदनगोपाल, १५० हरिसन रोड, कलकत्ता।

(३६) १२८ „ मुकुन्दीलाल वर्म्मा, कलकत्ता।

(३७) १२८ „ पं० गङ्गाविलास शर्म्मा, ठि० शिवलाल रूपचन्द, कलकत्ता।

(३८) १६ „ पं० सूर्य्यप्रसाद द्विवेदी,

(३९) १४८ „ गुप्त।

(४०) २५६ „ गुप्त।

(४१) ४ „ गुप्त।

(४२) ४ „ गुप्त।

(४३) ६८ „ गुप्त।

(४४) ६४ „ रामनारायण वाजपेयी, १९३।२ हरिसन रोड, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

(४५) २२ „ जगन्नाथ पुष्करत, अमृतसर।

(४६) १०० „ महावीर प्रसाद मालवीय, वैद्य, फूलपुर, प्रयाग।

(४७) ६४ „ नारायण महादेव वैशम्पायन, करवी, जिला बांदा।

(४८) १६ „ महादेव भट्ट, प्रयाग

(४९) १ „ बहादुरसिंह।

(५०) ६४ „ चौधरी विक्रमाजीत सिंह, देवइय, सिरसा, प्रयाग।

(५१) ६४० „ जगलाल प्रसाद नेतपुर, दीनाजपुर।

(५२) २ „ जगदेव शर्म्मा, ९८ शम्भु चटर्जी ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(५३) १६ „ रामरतनदास २४ मनिहारी पट्टी, कलकत्ता।

(५४) ३२ „ रामेश्वर सराफ, ५ हंसपोखरिया, कलकत्ता।

(५५) १ „ राम सिंह।

(५६) ६४ „ गणेशदत्त मिश्र, १८७ हरिसन रोड, कलकत्ता।

(५७) ६४ „ गुप्त।

(५८) १५२[illegible] रुपया गायनाचार्य्य विष्णु दिगम्बर (गन्धर्व महाविद्यालयके प्रतिष्ठाता)।

परिशिष्ट (घ)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके नियम।

उद्देश्य।

(१) इस सम्मेलनके निम्न लिखित उद्देश्य हैं।

(क) हिन्दी साहित्यके सब अङ्गोंकी उन्नतिका प्रयत्न करना।

(ख) देवनागरी लिपिका देश भरमें प्रचार करना और देशव्यापी व्यवहारों और कार्य्योंको सुलभ करनेके लिये हिन्दी भाषाको राष्ट्रभाषा बनानेका प्रयत्न करना।

(ग) हिन्दीको सुगम, मनोरम और लाभदायक बनानेके लिये समय समयपर उसकी शैलीके संशोधन और उसकी त्रुटियों और अभावोंके दूर करनेका प्रयत्न करना।

(घ) सरकार, देशी राज्यों, पाठशालाओं कालेजों, विद्यालयों और अन्य संस्थाओं, समाजों, जनसमूहों तथा व्यापार, जमींदारी और अदालतके कार्य्योंमें देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषाके प्रचारका उद्योग करते रहना।

(च) हिन्दीके ग्रन्थकारों, लेखकों, पत्रसम्पादकों,प्रचारकों और सहायकोंको समय समयपर उत्साहित करनेके लिये पारितोषिक, प्रशंसापत्र, पदक, उपाधि आदिसे सम्मानित करना।

(छ) उच्च-शिक्षाप्राप्त युवकोंमें हिन्दीका अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ानेके लिये प्रयत्न करना।

(ज) जहां आवश्यकता समझी जाय वहां पाठशाला, समिति तथा पुस्तकालय स्थापित करने और करानेका उद्योग करना तथा इस प्रकारकी वर्त्तमान संस्थाओंकी सहायता करना।

(झ) हिन्दी-साहित्यके विद्वानोंको तैयार करनेके लिये हिन्दीकी उच्च परीक्षायें लेनेका प्रबन्ध करना।

(ट) हिन्दी भाषाके साहित्यकी वृद्धिके लिये उपयोगी पुस्तकें तय्यार कराना।

(ठ) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके उद्देश्योंकी सिद्धि और सफलताके लिये अन्य जो उपाय आवश्यक और उपयुक्त समझे जायं उन्हें काममें लाना।

(२) हिन्दीसाहित्य और देवनागरी लिपिकी उन्नति और प्रचारसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंको छोड़कर इस सम्मेलनमें राजनीतिक, मतमतान्तरसम्बन्धी अथवा सामाजिक विषयोंपर विचार न किया जायगा।

सम्मेलनसे सम्बन्ध रखनेवाली समितियां और सभायें।

(३) निम्न लिखित समितियां और सभायें सम्मेलनके अङ्ग होंगी :—

(१) सम्मेलनकी स्थायी प्रबन्धकारिणी समिति।

(२) हिन्दी-पैसा-फंड समितियां।

(३) हिन्दी और नागरी प्रचारका उद्देश्य रखनेवाली वे सभायें जो अपने नियमोंके अनुसार स्वीकृत प्रस्ताव और निम्नलिखित पत्र द्वारा अपना सम्मेलनसे सम्बन्ध करें और ५) पत्रके साथ भेजें :—

"श्रीयुत मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन समिति,

महाशय,

मेरी सभाने मिति..........को अपने नियमोंके अनुसार निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया है।

'यह सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके उद्देश्योंसे पूर्ण सहानुभूति रखती है और अपना हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे सम्बन्ध किया चाहती है।

सभा सम्मेलनके नियमोंको स्वीकार करती है और यथाशक्ति सम्मेलनके उद्देश्योंका पालन करेगी।

सभाकी ओरसे मैं सम्मेलनकी नियमित फीस ५) भेजता हूं।'

सम्मेलनकी स्थायी समिति।

(४) सम्मेलनके अधिवेशनमें स्वीकृत प्रस्तावों और उद्देश्योंके अनुसार बराबर वर्ष-भर कार्य करनेके लिए सम्मेलनकी प्रतिनिधि-स्वरूप एक समिति होगी जो सम्मेलनकी "स्थायी समिति" कहलावेगी।

(५) सम्मेलनका मुख्य स्थान प्रयाग होगा।

(६) इस समितिमें एक सभापति, दो उपसभापति, एक प्रधान मंत्री, दो मन्त्री, एक वैतनिक सहायक मंत्री, एक आयव्यय-परीक्षक और इनके अतिरिक्त ६५ सभासद होंगे। सभापति और वैतनिक मंत्रीको छोड़कर इन सब पदाधिकारियों और सभासदोंका चुनाव सम्मेलनके वार्षिक अधिवेशनमें होगा। वैतनिक मंत्रीकी नियुक्ति स्थायीसमितिके अधीन होगी।

(७) सभासदोंका चुनाव नीचे लिखी रीतिसे होगा।

संयुक्त प्रान्त ...	२१
विहार और उड़िसा ...	१०
मध्यप्रदेश और बरार ...	८
राजपूताना और मध्यभारत ...	७
बङ्गाल	८
दिल्ली, पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश	५
बम्बई	४
मद्रास	२
	६५

पूर्वोक्त प्रतिनिधियोंमें कमसे कम ८ उस नगरके होंगे जहां सम्मेलनका 'मुख्य स्थान' हो

(८) उपर्युक्त सभासदोंके अतिरिक्त पिछले अधिवेशनोंके सभापति और सम्मेलनकी स्थायी समितिके पिछले सब प्रधान मंत्री इस समितिके सभासद समझे जायंगे।

(९) सम्मेलनके प्रत्येक अधिवेशनके सभापति आगामी वर्षके लिये उस समयतक जबतक दूसरा अधिवेशन न हो इस समितिके सभापति रहेंगे। उनकी अनुपस्थितिमें उपसभापति उनका काम करेंगे। वे भी न हों तो समितिको अधिकार होगा कि उपस्थित सभासदोंमें से किसीको सभापति निर्वाचन करले।

(१०) यदि समितिके किसी सभासदकी वर्षके भीतर मृत्यु हो जाय अथवा अन्य किसी कारणसे वह सभासद न रहे तो समितिको अधिकार होगा कि उसके स्थानपर उस स्थानसे कोई अन्य सभासद चुन ले जहांका वह सभासद था।

(११) इस समितिके अधिवेशनोंके करनेका अधिकार साधारण रीतिसे सभापति अथवा मंत्रीको होगा और समितिका अधिवेशन साधारणत: सम्मेलनके मुख्य स्थानमें होगा। आवश्यकता पड़नेपर समितिके दस सभासदोंको अधिकार होगा कि मंत्रीको लिखें कि वह किसी विशेष स्थान वा समय पर समितिका अधिवेशन करें। यदि मंत्री उनके लिखनेके अनुसार समितिका अधिवेशन न करें तो उनको अधिकार होगा कि वे अपने हस्ताक्षरसे समितिका विशेष अधिवेशन किसी स्थान और समयपर करें।

(१२) यह आवश्यक होगा कि स्थायी समितिके सब अधिवेशनोंकी सूचना, चाहे वे किसीके हस्ताक्षरसे हुए हों, कमसे कम १५ दिन पहले समितिके सब सभासदोंको दे दी जाय और कमसे कम चार हिन्दी समाचारपत्रोंमें छापनेके लिये भेजदी जाय।

(१३) स्थायी समितिके किसी अधिवेशनका काम बिना कमसे कम ५ सभासदोंकी उपस्थितिके न होगा।

(१४) स्थायी समितिका यह कर्त्तव्य होगा कि वह मंत्री द्वारा (१) गत वर्षका कार्य्य-विवरण (२) आय-व्ययका हिसाब (जो आय-व्यय-परीक्षकसे परीक्षित हुआ हो) और (३) आगामी वर्षके लिये आय-व्ययका अनुमानपत्र सम्मेलनके अधिवेशनमें उपस्थित करे।

"हिन्दी-पैसा-फंड"—समितियां
और
सम्मेलनसे सम्बंध रखनेवाली सभायें।

(१५) सम्मेलनकी आर्थिक सहायताके लिये एक फंड होगा जिसका नाम "हिन्दी-पैसा-फंड" होगा।

(१६) सम्मेलनसे सम्बन्ध रखनेवाली सभाओंका कर्त्तव्य होगा कि वे "हिन्दी-

पैसा-फंड"में अपनी एक विशेष कमेटी द्वारा अथवा अन्य रीतिसे पैसे इकट्ठे करनेमें सहायता दें।

(१७) उन स्थानोंमें, जहां कोई सम्मेलनसे सम्बन्ध रखनेवाली सभायें न हों अथवा हों किन्तु ठीक काम न करती हों, सम्मेलनकी स्थायी समितिको अधिकार होगा कि वह "हिन्दी-पैसा-फंड"में धन इकट्ठा करने और अपने अन्य कामोंमें सहायता देनेके लिये "हिन्दी-पैसा-फंड" स्थापित करे।

(१८) प्रत्येक "हिन्दी पैसा-फंड-समिति" अपना एक मंत्री नियत करेगी जिसके द्वारा वह सम्मेलनकी स्थायी समितिसे पत्र व्यवहार करेगी।

स्थाई कोश ।

(१९) सम्मेलनका एक "स्थायी कोष" होगा जिसका मूलधन सम्मेलनकी आज्ञा बिना व्यय न किया जायगा। इस कोषके ब्याजको ही व्यय करनेका अधिकार स्थायी समितिको होगा।

साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशन ।

(२०) साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन साधारणत: प्रति वर्ष उस स्थान और समयपर होगा जो सम्मेलनके पिछले अधिवेशनमें निश्चित किया गया हो।

यदि अधिवेशनके समय इन बातोंका निश्चय न हुआ तो उनका निर्णय सम्मेलनकी स्थायी समिति करेगी।

यदि वार्षिक अधिवेशनके अतिरिक्त सम्मेलनके विशेष अधिवेषनकी आवश्यकता हो तो स्थायी समितिको अधिकार होगा कि उसका प्रबन्ध करे।

(२१) यदि किसी कारणसे स्थान वा समय परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हो तो स्थायी समितिको आधिकार होगा कि उसका निर्णय कर ले।

स्वागतकारिणी सभा ।

(२२) प्रत्येक स्थानमें जहां सम्मेनका होना निश्चित हो एक स्वागतकारिणी सभा गत वर्षके सम्मेलनसे अधिकसे अधिक तिन मासके भीतर बनाई जायगी जिसका कर्त्तव्य होगा कि अपने यहांके होनेवाले सम्मेलन-सम्बन्धी सब प्रबन्ध करे।

(२३) इस सभाका यह भी कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी-समाचारपत्रोंमें सूचना द्वारा सर्वसाधारणकी सम्मति आमन्त्रित और उपलब्ध कर सम्मेलनकी स्थायी समितिकी सम्मतिसे सम्मेलनके समयसे कमसे कम छ: मास पहिले एक विषय-सूची बनावे और उनपर हिन्दीके अच्छे लेखकोंसे लेख लिखानेका प्रयत्न करे। इन लेखोंको छपवाना और उस वर्षके सम्मेलनका विवरण छपाकर प्रकाशित करना इसी सभाका काम होगा।

(२४) स्वागतकारिणी सभा सम्मेलन होनेसे कमसे कम एक मास पहिले सम्मेलनमें उपस्थित किये जानेवाले प्रस्तावोंका

मसौदा समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कर देगी और स्थायी समितिके मंत्रीके पास भेज देगी।

(२५) जो कुछ प्रतिनिधियोंकी फीससे धन आवेगा उसमेंसे आधा स्वागतकारिणी सभाको सम्मेलनकी स्थायी समितिको देना होगा और शेष आधे पर उसका अधिकार होगा।

(२६) प्रत्येक अधिवेशनके व्ययके बाद जो कुछ सम्पत्ति बचे उसके सम्बन्धमें स्वागतकारिणी सभाका यह कर्त्तव्य होगा, कि वह कुल बची हुई सम्पत्तिमेंसे आधा आगामी अधिवेशन होनेके कमसे कम एक मास पहिले स्थायी समितिको सौंपदे और आधेके सम्बन्धमें सभाको सभाको अधिकार होगा कि वहकिसी स्थानीय सम्बद्ध सभाको देदे। यदि वहां कोई स्थानीय सम्बद्ध सभा न हो तो कुल धन स्थायी समितिको सौंपना होगा।

(२७) स्वागतकारिणी समितिके सभापति अथवा मंत्रीका कर्त्तव्य होगा कि, वे स्वागतकारिणी सभाके बननेकी सूचना स्थायी समितिके मन्त्रीको तुरन्त देदें।

सभापतिका चुनाव।

(२८) "स्वागतकारिणी सभा" के बननेकी सूचना मिलनेपर स्थायी समितिका यह कर्त्तव्य होगा, कि वह आगामी वर्षके सभापतिके आसनके लिए पांच सज्जनोंकी एक सूची बनावे जो उसके विचारमें उस वर्ष सभापतिके आसनके लिए उपयुक्त हों। यह सूची निम्नलिखित रीतिसे बनाई जायगी:—

मन्त्रीको सूची बनानेके लिए एक तिथि नियत कर उसके दो मास पहिले समाचारपत्रोंमें उसकी सूचना देनी होगी और सम्बद्ध सभाको "हिन्दी-पैसा-फण्ड" समितियों और स्वागतकारिणी सभासे ऐसे पांच सज्जनोंकी सूची मंगानी होगी, जो उनके विचारमें सभापतिके आसनके लिए उपयुक्त हों। इन सूचियोंके आनेपर वे समितिके अधिवेशनमें उपस्थित की जायंगी। प्रत्येक सम्बद्ध सभा, पैसा-फंड-समिति तथा स्वागतकारिणी सभाकी सम्मति समितिके एक सभासदकी सम्मतिके बराबर गिनी जायगी। जिन ५ सज्जनोंके लिए अधिकांश सम्मति हो उन्हींके नामोंकी सूची बनाई जायगी।

(२९) यह सूची "स्वागतकारिणी सभा" के पास भेज दी जायगी किन्तु समाचारपत्रोंमें अथवा अन्य किसी प्रकार प्रकाशित न की जायगी। इस सूचीके मिलनेपर स्वागतकारिणी सभाका कर्त्तव्य होगा कि वह सूचीमें नामाङ्कित किसी सज्जनको सभापतिके आसनके लिए निर्वाचित करे और उनकी स्वीकृति मंगाकर उनका नाम प्रकाशित करदे। यही सज्जन सम्मेलनमें "स्वागतकारिणी सभा" के सभापतिके प्रार्थना करनेपर सभापतिका आसन ग्रहण करेंगे।

प्रतिनिधि।

(३०) निम्नलिखित समितियों और

सभाओंको सम्मेलनमें प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार होगा।

(१) वे समितियां और सभाएं जिनका ब्योरा ऊपर धारा ३-(२) और (३) में दिया गया है।

(२) अन्य स्थापित सभाएं जिनमें कमसे कम १५ सभासद हों।

(३) साधारण सार्वजनिक सभाएं जो केवल सम्मेलनके प्रतिनिधियोंका निर्वाचन करनेके लिए की जायं। किन्तु इन सभाओंमें कमसे कम १५ मनुष्य उपस्थित होने चाहियें।

(३१) प्रत्येक प्रतिनिधिको २) की फीस स्वागतकारिणी सभाको देनी पड़ेगी।

(३२) स्वागतकारिणी सभाको अधिकार होगा कि किसी विशेष प्रतिनिधिसे फीस न ले।

(३३) प्रतिनिधियोंको अधिकार होगा कि वे अपनी फीस देनेके बाद स्वागतकारिणी सभासे प्रमाणपत्र लेकर सम्मेलनके कार्य्यमें सम्मिलित हों और उपस्थित विषयोंपर अपनी सम्मति प्रकट करें।

विषयनिर्वाचन समिति।

(३४) सम्मेलनके प्रत्येक अधिवेशनमें सभापतिकी वक्तृताके बाद सब प्रतिनिधि मिलकर एक "विषयनिर्वाचन समिति" बनावेंगे जिसमें साधारणतः सम्मेलनमें समागत सब प्रतिनिधि होंगे। किन्तु स्थानीय प्रतिनिधियोंकी संख्या बाहरी प्रतिनिधियोंकी आधी संख्यासे अधिक होने पर इस समिति के लिये उन्हें अपनेमेंसे केवल बाहरी प्रतिनिधियोंकी आधी संख्या के बराबर प्रतिनिधि निर्वाचन करनेका अधिकार होगा। इस समितिका काम यह होगा, कि वह इस बातका निश्चय करें कि सम्मेलनमें क्या क्या कार्य होने चाहियें।

सम्मेलनमें कार्यक्रम।

(३५) विषयनिर्वाचन समितिके निश्चय के अनुसार सम्मेलनके सामने कार्य्य उपस्थित किये जायंगे और सम्मेलनमें उपस्थित प्रतिनिधि उन पर विचार करेंगे।

(३६) कोई प्रस्ताव बिना विषय निर्वाचन समितिके स्वीकार किये सम्मेलनके सामने उपस्थित न किया जायगा, किन्तु सम्मेलनमें २० प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षरसे किसी प्रस्तावके आनेपर सभापति उसको उपस्थित करनेकी आज्ञा देंगे।

(३७) उपस्थित किये हुये प्रस्तावों पर सभापतिको सूचना देनेके बाद टिप्पणी करने और उनमें परिवर्त्तन और उनका विरोध करनेके प्रस्ताव करनेका अधिकार प्रत्येक प्रतिनिधिको होगा।

सम्मति-ग्रहणका क्रम।

(३८) सम्मेलन और उससे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य समितियोंमें जिनका ब्योरा ऊपर दिया गया है सब कार्य उपस्थित सभ्यों

की अधिकांश सम्मतिसे होंगे। केवल उपर्युक्त नियम २८ के अनुसार सभापति-निर्वाचनके सम्बन्धमें ५ सज्जनोंकी सूची भेजनेका अधिकार स्थायी समितिके सभासदोंको होगा और उसमें पत्र द्वारा भेजी हुई सम्मतिकी भी गणना की जायगी।

(३८) यह सभापति निश्चय करेंगे कि किस विचार की ओर अधिकांश सम्मति है। परन्तु विषय-सिर्वाचन-समितिमें प्रत्येक सदस्य और सम्मेलनमें २० प्रतिनिधियोंको अधिकार होगा कि किसी विवादग्रस्त विषयके निर्णयके लिये दोनों पक्षोंके समर्थनकर्त्ताओंकी संख्या अलग अलग कर गिनवावें।

इस नियमके सम्मेलनसम्बन्धी अंशके अनुसार कार्य्य करनेके लिये सम्मेलनमें किसी एक प्रतिनिधिके प्रस्ताव करनेपर सभापति महाशय उपस्थित प्रतिनिधियोंसे पूछ लेंगे कि २० प्रतिनिधि अलग अलग संख्या गिनवाना चाहते हैं या नहीं।

(४०) सब अधिवेशनोंमें किसी विषयमें दो पक्ष होने पर और दोनों पक्षोंमें बराबर सम्मतियां होनेपर सभापतिकी सम्मतिसे मत निश्चय किया जायगा।

सम्मेलनकी सम्पत्ति।

(४१) सम्मेलनकी सब सम्पत्ति स्थायी समितिके अधीन होगी।

नियमोंमें परिवर्त्तन।

(४२) इन नियमोंमें परिवर्त्तन करनेका अधिकार केवल सम्मेलनमें उपस्थित प्रतिनिधियोंको होगा। परिवर्तनके प्रस्ताव करनेका अधिकार उपर्युक्त धारा ३ में गिनाई हुई समितियों और सभासदोंको होगा और ऐसे प्रस्ताव उपर्युक्त समितियों वा सभाओंके मंत्री द्वारा सम्मेलनके अधिवेशनसे कमसे कम एक मास पहले स्वागतकारिणी सभाके मंत्री और स्थायीसमितिके मंत्रीके पास आ जाने चाहिये। स्थायी समितिके मंत्रीका कर्तव्य होगा, कि वे नियमोंके परिवर्त्तनके प्रस्तावको समाचार पत्रोंमें प्रकाशित करदें और स्थायी समितिका विशेष अधिवेशन कर उसके सामने उपस्थित करें।

(४३) नियमोंके परिवर्तनका प्रस्ताव अन्य प्रस्तावोंकी भांति सम्मेलनमें विषय-निर्वाचन-समिति द्वारा उपस्थित किया जायगा और अन्य प्रस्तावोंकी भांति प्रतिनिधियोंकी अधिकांश सम्मतिसे स्वीकृत वा अस्वीकृत होगा। केवल 'मुख्य स्थान'के बदलनेके लिए यह आवश्यक होगा, कि उस नगरके रहने वाले प्रतिनिधियोंको छोड़कर, जहां सम्मेलन का अधिवेशन हो, शेष उपस्थित प्रतिनिधियोंमें दो तिहाई स्थान बदलनेके प्रस्तावका समर्थन करें।

परिशिष्ट (ङ)

माननीय सभापति महोदय और हिन्दी-प्रेमी सज्जनो !

गतवर्ष प्रयागमें पहले वर्षका विवरण आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करते समय मैंने यह निवेदन किया था कि हमारे देशकी संस्थाओंमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका बहुत उच्च स्थान है। यह दो कारणोंसे है। एकः तो इसके उद्देश सार्वजनिक हैं, हमारे देश भारतवर्ष भरका कल्याण उसका लक्ष्य है, भारतवर्ष भरको एक भाषाके प्रेम-सूत्रमें बांध उसमें वास्तविक जातीयताका भाव उत्पन्न करना उसका कर्त्तव्य है। दूसरे उसकी कार्य्यप्रणालीमें भी आरम्भ होसे इस बातपर ध्यान रक्खा गया है कि केवल वर्षमें एकबार मिलकर दो एक दिन प्रभावशाली वक्ताओं द्वारा लोगोंको उत्साहित करने और प्रस्तावोंको स्वीकार करनेमें ही कार्य्यकी समाप्ति न होनी चाहिये, वरन् लगातार वर्ष भर अपने उद्देशोंकी पूर्त्तिके लिये यथासाध्य उद्योगमें प्रवृत् रहना चाहिये।

सम्मेलनके कार्य्य के दो मार्ग।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके दो कर्त्तव्य हैं —एक तो हिन्दी साहित्यकी वृद्धिका उपाय करना और दूसरा हिन्दीभाषा और नागरी लिपिको देश भरमें सर्वव्यापी बनानेका उद्योग करना। इनमेंसे पहला काम तो इस प्रकारका है जो वास्तवमें विशेषकर व्यक्तियोंके करनेका है। साहित्यकी रचना और साहित्यके भण्डारकी पूर्त्ति सदा प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा होती है। सभाएं प्रतिभा नहीं उत्पन्न करा सकतीं। वे अवश्य व्यक्तियोंको पुस्तकें लिखनेमें सहायता दे सकतीं और उत्तेजित कर सकती हैं; किन्तु वास्तवमें गम्भीर साहित्यकी पूर्त्ति व्यक्तियोंपर ही निर्भर रहती है। हिन्दीमें इस समय बहुतसे सज्जन और कई एक सभाएं भी इस कामको कर रही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अभी हिन्दी साहित्यमें बहुत कमी है और इस बातकी आवश्यकता है कि उन विषयोंपर—जिनपर हिन्दीमें पुस्तकें अभी नहीं हैं, अथवा हैं, किन्तु साधारण हैं—अच्छी पुस्तकें लिखनेके लिये लेखकगण उत्तेजित किये जांय। गत वर्ष द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें पण्डित महावीर-प्रसाद द्विवेदी और पण्डित रामावतार शर्म्माने इस विषयकी ओर सम्मेलनका ध्यान आकर्षित करते हुए यह प्रस्ताव किया था कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें भाग लेनेवाले सज्जनोंमेंसे कुछ लोग एक एक विषय अपने लिये चुन लें और उन पर जहांतक हो सके एक एक पुस्तक लिखकर आगामी सम्मेलन में उपस्थित करें।

इस रीतिसे हिन्दीके भाण्डारमें बहुत-सी अच्छी पुस्तकें आ सकती हैं और यह

कलङ्क मिट सकता है कि हिन्दी साहित्यमें बहुत विषयोंपर पुस्तकें हैं ही नहीं। मैंने द्वितीय-सम्मेलनके कार्य्य-विवरणके दूसरे भागकी भूमिकामें हिन्दी-प्रेमियोंका ध्यान इस विषयकी और इस प्रस्तावकी ओर आकर्षित किया है और यहां भी आपका ध्यान दिलाता हूं और आशा करता हूं कि इस सम्मेलनमें यहां आये हुए सज्जनोंमेंसे कुछ अवश्य इसके लिए तैयार हो जांयगे कि अपने लिए विषय निर्वाचित करें और उन पर पुस्तकें लिखकर आगामी सम्मेलनमें उपस्थित करें। इसके साथ ही मेरा स्वयं विचार आरम्भसे यह हो रहा है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको कुछ वर्षों के लिए अपना मुख्य उद्देश दूसरा—अर्थात् हिन्दी-भाषा और नागरी लिपिका प्रचार—रखना चाहिए। इसका विशेष कारण यह है कि इस काममें समूहशक्तिका विशेष उपयोग है और व्यक्तियों तथा छोटी सभाओंको इस कामको अलग अलग करनेमें विशेष कठिनताका सामना करना पड़ता है, अत: वे निराश होकर इसको छोड़ देते हैं। किसी विषय पर पुस्तक तो प्रत्येक योग्यता रखनेवाला व्यक्ति लिख सकता है, छोटी सभाएं भी अपने सभासदों द्वारा पुस्तकें लिखवा सकती हैं, किन्तु किसी विशेष प्रान्तमें नागरी लिपि अथवा हिन्दी-भाषाका प्रवेश कैसे हो, किन किन साधनोंसे उसमें सहायता लीजाय, सरकारी अधिकारियों पर अथवा सर्वसाधारण पर किस-प्रकारसे प्रभाव डाला जाय, इन बातोंके सम्बन्धमें कार्य्य करनेके लिए समूहशक्तिकी आवश्यकता है और वह शक्ति इस समय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें होनी चाहिए, क्योंकि वह हिन्दी-प्रेमियों तथा हिन्दी सभाओंकी शक्तियोंका केन्द्र है इसी बातकी ओर ध्यान देकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके स्थायी होनेके बाद ही से मैंने इस कार्यकी ओर विशेष ध्यान दिया है। यदि हमको भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार करना और हिन्दीको भारतवर्षकी राष्ट्र-भाषा बनाना अभीष्ट है, तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक प्रान्तमें अलग अलग स्थितिके अनुसार हम नागरी प्रचारके साधनोंको उठावें।

संयुक्त-प्रान्तकी अदालतोंमें नागरी प्रचार।

मैं समझता हूं कि इस बातको स्वीकार करनेमें किसीको आपत्ति न होगी, कि संयुक्तप्रान्त ही हिन्दी भाषाका केन्द्रस्थान है। यह भी आप पर विदित है कि संयुक्त-प्रान्त ही फ़ारसी लिपि और उर्दू भाषाका भी केन्द्रस्थान है। यद्यपि संयुक्तप्रान्तमें हिन्दी लिखने और पढ़नेवालोंकी संख्या उर्दू बोलनेवालोंसे लगभग ११॥ गुना अधिक है तथापि अङ्गरेजी गवर्नमेन्टके आरम्भसे ही यहां अदालतोंका काम फ़ारसी-मिश्रित जटिल भाषामें हो रहा है। मैंने गत वर्ष इस विषयके सम्बन्धमें विशेष रीतिसे आपका ध्यान आकर्षित किया था और यह दिखलाया था कि अदालतोंमें हिन्दीके प्रचारके लिये यत्न करनेकी कितनी आवश्यकता है, क्योंकि अदालती भाषाका सर्व्वसाधारण पर बहुत प्रभाव पड़ता है और साहित्यकी

उन्नति या अवनति सर्वसाधारणके झुकाव पर ही निर्भर है। इसी कारणसे संयुक्त-प्रान्तकी अदालतोंमें हिन्दीके प्रवेशका यत्न करना आरम्भ ही से हमलोगोंके कर्त्तव्योंमें से एक मुख्य कर्त्तव्य रहा है। संयुक्तप्रान्तमें हिन्दीके पक्षवालोंको अदालतोंमें हिन्दीमें काम करनेकी आज्ञा सन् १९०० में मिली थी। उस समयसे लेकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थायी समितीके संगठनके समय तक, अर्थात् अक्तूबर सन् १९१० तक अदालतोंमें हिन्दी प्रचारके सम्बन्धमें प्रायः कुछ भी विशेष काम नहीं हुआ। एक आध स्थानोंमें कुछ लोगोंने हिन्दीमें कुछ अर्जियां इत्यादि दाखिलकीं, किन्तु चारों ओर फारसी लिपिमें काम करनेवालोंसे घिरे रहनेके कारण और कोई नियमबद्ध सहायता न होनेके कारण जो कुछ काम हुआ वह नहीं-के बराबर था। मैंने गत वर्ष निवेदन किया था कि सम्मेलनके कार्य्यके प्रथम ही वर्षमें सम्मेलनके यत्नसे जितने कागज हिन्दीके अदालतोंमें दाखिल हुए वे यद्यपि बहुत कम थे तो भी उतने नौ वर्षोंमें दाखिल नहीं हुए थे। पिछले वर्ष मैंने बताया था कि सम्मेलनके प्रयत्नसे प्रयाग, फतेहपुर और हाथरस में हिन्दीका काम आरम्भ हुआ था और सम्मेलनकी जानकारीमें इन स्थानोंमें कुल २१३२ कागज दाखिल हुए थे। आपको यह सुनकर हर्ष होगा कि इस वर्ष, जिसका विवरण मैं आपके सम्मुख उपस्थित कर रहा हूं, पिछले तीन स्थानोंके अतिरिक्त इन पांच और नये स्थानोंपर काम हुआ—कानपुर, जौनपुर, फैजाबाद, लखीमपुर जिला खीरी, और ज्ञानपुर (बनारस राज्य)। अर्थात् जहां पिछले वर्षमें तीन स्थानोंमें काम हुआ था, वहां इस वर्ष आठ स्थानोंमें काम हुआ। कुछ कागज जो सम्मेलनकी जानकारीमें इन स्थानोंपर दाखिल हुए उनकी संख्या ६२८३ थी। इसके अतिरिक्त वकालतनामा, इजराय डिगरी आदिके कई हजार हिन्दीमें छपे फार्म भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजे गये, जो अवश्य ही दाखिल हुए होंगे। इससे आप यह अनुमान कर सकते हैं कि सम्मेलनके द्वारा अदालतोंमें नागरी प्रचारका काम बराबर बढ़ रहा है और मुझे आशा है कि बराबर काममें लगे रहनेसे हिन्दीका अदालतोंमें अच्छी तरह प्रवेश हो जायगा। किन्तु काम अभी बहुत करना है और इसके लिए बहुत परिश्रमकी, धनकी और संगठन-की आवश्यकता है।

सम्बद्ध सभाएं।

गत वर्ष जो नियमावली सम्मेलनमें स्वीकृत हुई थी उसमें हिन्दी और नागरी प्रचारका उद्देश रखनेवाली सभाओंका सम्मेलनसे सम्बद्ध करानेका एक नियम रक्खा गया था। उस नियमके अनुसार इस वर्ष निम्नलिखित सभाओंका सम्मेलनसे सम्बन्ध हुआ—

नागरी प्रचारिणी सभा, ब्यावर; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; नागरी प्रचारिणी सभा, गोरखपुर; नागरी प्रचारिणी सभा, बुलन्दशहर; नागरी प्रचारिणी सभा, अमृतसर; हिन्दी-साहित्य परिषद, कलकत्ता;

नागरीप्रचारिणी सभा, आगरा ; नागरी प्रवर्द्धिनी सभा, प्रयाग।

सम्मेलन-पुस्तकालय।

आपको स्मरण होगा कि गत वर्ष द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका १२ वां मन्तव्य यह हुआ था कि "यह सम्मेलन अपने कार्य्यालयमें हिन्दीकी सामयिक अवस्था और उन्नति का विवरण रखनेके लिए प्रस्तुत है। अतएव सम्मेलन सब हिन्दीके लेखकों और प्रकाशकों से प्रार्थना करता है कि वे अपनी पुस्तकोंकी एक एक प्रति सम्मेलन-कार्य्यालयमें बिना-मूल्य भेजने की कृपा करें। इस काममें सहायता देनेके लिए सम्मेलन हिन्दी-पत्र सञ्चालकोंसे भी प्रार्थना करता है कि वे अपने अपने पत्रोंकी एक एक प्रति बराबर बिनामूल्य सम्मेलन-कार्य्यालयमें भेजनेकी कृपा करते रहें।" इस मन्तव्यके अनुसार विशेष उद्योग करनेसे अब तक कुछ ४८१ पुस्तकें सम्मेलन कार्य्यालयमें आयी हैं, जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

पुस्तकदाताओंके नाम	संख्या।
बाबू चिन्तामणि घोष, अध्यक्ष, इण्डियन प्रेस, प्रयाग	८७
पं० बाबूराम शर्म्मा, इटावा	७८
भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता	३८
पं० कृष्णकान्त मालवीय, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग	२०
बाबू रामनारायणलाल, बुकसेलर, कटरा, प्रयाग	१८
पं० तुलसीराम स्वामी, मेरठ	१५
बाबू गोपालराम, गहमर	१५
पं० क्षेत्रपाल शर्म्मा सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा	१४
पं० विहारीलाल चौबे, काशी	१४
बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, प्रयाग	१३
बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, काशी	१३
पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, दारागञ्ज, प्रयाग	१०
पं० श्रीधर पाठक, प्रयाग	८
पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कलकत्ता	६
पं० देवीदत्त द्विवेदी, प्रयाग	५
पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रयाग	५
लाला भगवानदीन, काशी	५
पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, प्रयाग	४
नागरीप्रवर्द्धिनी सभा, प्रयाग, (द्वा० पं० लक्ष्मीनारायण नागर मन्त्री)	४
पं० चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी, अजमेर	४
पं० हरिमङ्गल मिश्र, प्रयाग	४
व्यास तनसुखजी, ब्यावर	४
श्री पूनमचन्द व्यास, बग्रावर,	४
पं० रामप्रसाद मिश्र,	४
बा० गिरिजाकुमार घोष, प्रयाग	२
प्रकाश बुकडिपो अयोध्या	३
बाबू महेशचरण सिंह	३
श्रीमीठालाल व्यास, ब्यावर	३
गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्य, मथुरा	२
हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली, औरैया, इटावा	२
महात्मा मुंशीराम, गुरुकुल, कांगड़ी	१
पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, अजमेर	१

पं० रघुनाथप्रसाद मिश्र, शारदाभवन, इटावा १
अधिकारी जगन्नाथदास विशारद, भरतपुर १
बा० जयविजयनारायण सिंह, प्रयाग १
जैनमित्र कार्य्यालय बम्बई १
बा० रामखेलावन, अहरौरा, जिला मिर्जापुर १
बा० रामकिशोर गुप्त, झांसी १
बा० ब्रजनंदनसहाय, आरा १
बा० कालीचरण सिंह, १
पं० देवीप्रसाद शर्म्मा, अहरौरा, जिला मिर्जापुर १
बा० भगवानप्रसाद चौबे, बिहपुर, जिला भागलपुर १
स्वामी रामकृष्णानंद गिरि, बाघाम्बरी, प्रयाग १
पं० बैजनाथ उपाध्याय, भेड़ीताल, जिला गोरखपुर १
पं० अखिलानंद शर्म्मा १
लाला महानंदजी, प्रयाग १
पं० गोविंदनारायण मिश्र, कलकत्ता १

उपर्युक्त सब सज्जनोंको अनेक धन्यवाद है। साथ ही खेदके साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि पुस्तक-प्रकाशकों और लेखकों ने जैसा चाहिये था, वैसा ध्यान इस मन्तव्यकी ओर नहीं दिया। यद्यपि यह मन्तव्य प्रकाशित कर दिया गया था और लेखकों तथा प्रकाशकोंका ध्यान विशेष रूपसे अलग अलग पत्र द्वारा इस ओर आकर्षित किया गया था, तो भी इस वर्ष जो नयी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनमेंसे बहुत थोड़ी पुस्तकें कार्य्यालयमें आयीं। जिन पुस्तकोंकी संख्याका ऊपर उल्लेख किया गया है उनमें अधिकांश इस वर्षसे पहिले की प्रकाशित हैं।

उपर्युक्त मन्तव्यके अनुसार निम्न लिखित पत्र सम्मेलन-कार्य्यालयमें आने लगे हैं—

भारतमित्र (साप्ताहिक), कलकत्ता।
श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार (साप्ताहिक), बम्बई।
सद्धर्म्म प्रचारक (साप्ताहिक), दिल्ली।
बिहारबन्धु (साप्ताहिक), बांकीपुर।
जयाजीप्रताप (साप्ताहिक), लश्कर, ग्वालियर।
गृहलक्ष्मी (मासिक), प्रयाग।
अभ्युदय (अर्द्ध साप्ताहिक), प्रयाग।
मर्यादा (मासिक), प्रयाग।
सुधानिधि (मासिक), प्रयाग।
स्वदेशबान्धव (मासिक), आगरा।
राजपूत (पाक्षिक), आगरा।
भास्कर (मासिक), मेरठ।
रसिकमित्र (मासिक), कानपुर।
भारतोदय (मासिक), महाविद्यालय, ज्वालापुर।
क्षत्रिय समाचार (मासिक), पटना।
जैनहितैषी (मासिक), बम्बई।
साधु (मासिक), बड़ोदा।

इन पत्रोंके स्वामियों और सम्पादकोंको अनेक धन्यवाद है।

उपदेशक।—

प्रचारके कामके लिये इस वर्ष पण्डित जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ सम्मेलनकी ओर-

से वैतनिक उपदेशक नियत किये गये। सबसे पहले वे राजपूतानामें प्रचारके लिये भेजे गये, क्योंकि पहले ही सेठ दामोदरदास राठीसे सम्मेलनने इस बातका वादा किया था और आपको स्मरण होगा कि प्रथम सम्मेलनमें ही राठीजीने इसके लिये ३००) देनेका वचन दिया था। पण्डित जीवानन्द शर्म्माने अपने राजपूताना-भ्रमणको जो रिपोर्ट दी है, वह इस प्रकार है—

राजपूतानामें पण्डित जीवानन्दके कार्यका विवरण।

श्रीयुत मन्त्री, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागराज।

महाशय,

आपकी आज्ञानुसार हिन्दीके प्रचारके लिए मैंने राजपूतानेमें ३ महीने १५ दिनोंतक परिभ्रमण किया।

इस प्रचारमें नागरी-प्रचारिणी सभा, ब्यावर, ने जो कुछ सहायता दी है उसके लिए न केवल मुझे ही अपिच सभी हिन्दी-भाषा-प्रेमियोंको उचित है कि उसे धन्यवाद देवें, क्योंकि इसके सञ्चालकोंकी कर्म्म-कुशलता तथा उत्साहके सहारे ही मैं निर्विघ्न कार्य्य कर सका।

राजपूताना जैसा अज्ञान गह्वरमें पड़ा हुआ है वैसा और प्रान्त कदाचित् ही होगा। इधरके कितने विद्या-दिग्गज हिन्दीके प्रचार-से अपनी रोटी मारी जाना समझते हैं। उनकी धारणा है कि वे श्लोकें पढ़ जानेसे हमारे गुलछर्रे नहीं उड़ेंगे और हम उनको जिधर चाहेंगे उधर उनकी नाथ पकड़कर नहीं ले जा सकेंगे। इसी लिये कई एक स्थानोंमें ऐसे लोग मुझसे भी भिड़ पड़े। परन्तु भगवानके निःस्वार्थ भावके बलसे सदा मैं विजयी बना रहा।

इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक झगड़ेने भी इधर खूब जोर मारा है और आशा है कि यह दिन दिन जोर पकड़ता ही जायगा जबतक भगवती विद्यादेवीकी कृपा इस प्रान्तपर न होगी।

जहां जहां मुझे जैसी जैसी कठिनाइयां और सफलता प्राप्त हुई उसका पूर्ण विवरण नीचे देता हूं। आशा है कि आप इसको पढ़-कर राजपूतानेकी साहित्यगत दशासे अभिज्ञ हो जायंगे।

१—ब्यावर

आपके यहांसे १२ अगस्त सन् १९१३ को विदा होकर मैं ब्यावर आया। इसका दूसरा नाम नवानगर है।'। उत्साहमें यह यथार्थमें अपने नामको सार्थक करता है। यहांकी नागीप्रचारिणी सभाके उद्योगसे मेरे छः व्याख्यान हिन्दीके सम्बन्धमें हुए। यहाँपर केवल लोगोंमें हिन्दीका प्रेम दि-खाया गया। बहुत धनी मानी लोग इससे पूर्ण सहानुभूति रखने लगे।

२—अजमेर

यहां यद्यपि एक मुन्नालाल-नागरी-प्रचा-रिणी सभा, तथा सनातन-धर्म्म (हिन्दी) पुस्तकालय एवं जैन-पुस्तकालय था, तथापि इन संस्थाओंके साम्प्रदायिक झगड़े होनेके कारण सार्व्वजनिक कार्य्यमें विशेष उप-

कार होनेकी सम्भावना न देख कर मुझे एक नागरी-प्रचारिणी सभा अलग स्थापित करनी पड़ी। बिना सार्वजनिक सभा हुए अदालतमें हिन्दीके प्रचारके लिये चेष्टा करना व्यर्थ होता है।

यहां मेरे दो व्याख्यान हुए। मेरा अधिक समय सभाकी सहायता करनेके लिए लोगोंसे अनुरोध करनेमें व्यतीत हुआ। श्रीयुत गोविन्द रामचन्द्रजी खाण्डेकर सभापति, तथा बाबू गौरीशङ्करजी, बी० ए०, बैरिष्टर, ने सेक्रेटरी होना स्वीकार किया। आशा है सभा अच्छा काम करेगी।

३—नसीराबाद

यहां ६ व्याख्यान हुए—४ दिनोंतक जैनमन्दिरमें, १ दिन बाजारमें और एक दिन आर्य्यसमाजके मन्दिरमें। यहां भी एक नागरी-प्रचारिणी सभा और एक हिन्दी पुस्तकालय स्थापित हुआ। हिन्दी पुस्तकालयके लिए एक वैष्णव वैश्य महाशयने अपना एक दो मञ्जिला मकान दे दिया।

४—केकड़ी

यहांके कार्य्यमें सफलता होनेसे मुझे जितनी प्रसन्नता हुई उतनी प्रसन्नता मारवाड़ मुंडवा छोड़कर कहीं नहीं हुई। इस मुट्ठी भरके स्थानमें चतुर्थ दिन ही हिन्दी पुस्तकालयके लिए २५०) के चंदे हो गये। सौ रुपये तत्काल वसूल हो गये। पांच सौ रुपये चंदा कर देनेका वचन दिया गया। जहां साप्ताहिक वा मासिकपत्र किस वस्तुका नाम है लोग यह भी नहीं जानते थे, वहां १८ पत्र मँगानेकी तैयारी हो गयी।

इस चंदेमें ब्राह्मणसे लेकर खाती पर्य्यन्त सबोंने दिल खोलकर चंदा दिया। आशा है, अब वहां पुस्तकें मँगायी गयी होंगी। जो लोग केवल रामायण पर ही अपना गुजारा करते थे, अब अनेक प्रकारकी पुस्तकें पढ़ते होंगे।

५—पीपाड़ [मारवाड़]

यहां बराबर नागरी-प्रचारिणी-सभाके मन्त्री श्रीमान् तनसुखरायजी व्यास मेरे साथ थे। इन्होंने यहां भी मेरे कार्य्यमें बड़ी सहायता दी। यहांके सेठ रामरिख जी जैसे उत्साही सज्जनके सभापतित्वमें बातकी बातमें ११ सौ रुपयेके चंदेसे हिंदी पुस्तकालय खुल गया। यद्यपि यहां मेरे व्याख्यान ८ दिनोंतक होते रहे, पर और स्थानोंके जैसा यहां परिश्रम नहीं करना पड़ा। उत्साही सेठ रामरिखजीके विद्याप्रेम और वैद्यवर तनसुखरायजीकी उचित सहायतासे झटपट चंदेका प्रबन्ध हो गया।

६—मूंडवा [मारवाड़]

यहांकी दशा सबसे शोचनीय थी। सिवा जुआ और मादक द्रव्योंके सेवनके लोग यह भी नहीं सोचते थे कि विद्या भी कोई वस्तु है। सुनते हैं कि जोधपुर राज्यकी

ओरसे एक स्कूलका प्रबन्ध हुआ है। इसमें एक २५) वेतनके अङ्गरेजी माष्टर और एक हिन्दीके पढ़ानेवाले अध्यापक नियुक्त किये गये। बेचारे दोनों अध्यापकोंने १ वर्ष तक स्कूलकी बेञ्चें गिनीं, पर वहांके एक भी भले आदमीने अपने लड़के पढ़नेको भेजनेकी कृपा नहीं की। अगत्या अङ्गरेजी माष्टर साहबको वहांसे चला जाना पड़ा और हिन्दी माष्टरको मुड़िया अक्षर लड़कोंको पढ़ाकर आपना निर्वाह करना पड़ा।

यहां ६ दिनोंतक सड़कपर व्याख्यान देना पड़ा। बिछौना न होनेके कारण लोग जमीनपर बैठते थे। ५ वें दिन यहांके पञ्चोंकी जटा डाली। सबोंने चतुर्भुजजीके मन्दिरमें शपथ ली और एक प्रतिज्ञापत्र लिख दिया कि हम ईश्वरकी साक्षी देकर प्रतिज्ञा करते हैं कि आजसे अपने लड़कोंको हिन्दी पढ़ाते हुए ऊंची शिक्षा दिलावेंगे। प्रतिज्ञापत्र पर सबोंने हस्ताक्षर कर दिये।

७—बीकानेर

राजपूतानाकी कीचड़में यह स्थान कमल देख पड़ा। यहां विचित्र जाग्रति मालूम हुई। जिस विभागकी ओर आंख उठाई, उसी विभागमें जाग्रतिकी तीक्ष्ण ज्योतिकी तारा चमकती सी देख पड़ती थी। शारीरिक उन्नतिके साथ साथ मानसिक उन्नति भी वहां बड़े वेगसे ऊंचे चढ़ रही है।

इन सभी उन्नतियोंके कारण दरबार श्रीजी हैं। आपके ही सुशासनसे यह चमक देख पड़ती है। यहां मैं १६ दिनों तक था। १० व्याख्यानहुए। यहांके श्री जुबिली-नागरी-भण्डारको नवीन भवन बनानेके लिए १० हजार रुपयेकी आवश्यकता थी। परमेश्वरकी कृपासे लोगोंने मेरे ऊपर दया की। आवश्यक धनका प्रबन्ध हो गया। सबसे प्रसन्नताकी बात यह हुई कि एक मुसलमान भाईने उत्साहित होकर भण्डारकी सहायताके लिये रुपये दिये।

८—चूरू

४ दिनों तक मेरे व्याख्यान हुए। सनातन-धर्म्म-सभा और सर्वहितकारिणी सभा दोनोंने मुझे सहायता दी। अन्तिम दिन वहांके विद्याप्रेमी तहसीलदार साहबके सभापतित्वमें ८०८) का चन्दा उक्त बीकानेर भण्डारके लिये हुआ।

९—सरदारशहर

यहां रेल नहीं है। १८ कोस बैलगाड़ी वा ऊंट पर चूरूसे जाना पड़ता है। दिनमें बैलगाड़ी नहीं चलती, इसलिये रातोरात चलकर मैं भोरमें यहां पहुंचा। उसी दिन ४ बजेसे व्याख्यान होना प्रारम्भ हुआ। यह शहर बड़ा धनाढ्य है। पर दुःखसे कहना पड़ता है कि विद्याके विषयमें यह शहर महा दरिद्र है। ५, ६ वर्षोंसे एक हिन्दी पाठशालाके लिए यहांके उत्साही सज्जन प्रयत्न कर रहे थे, पर किसीका ध्यान उधर नहीं जाता था। यहां ६ व्याख्यान मेरे हुए। ईश्वर सहायक हुए। लोगोंकी रुचि विद्यापर हुई। अन्तिम दिन एक हिंदी पाठशालाके लिये १५०) का वार्षिक चन्दा हुआ। उतने ही की और प्रतिज्ञा भी हुई। अपने लड़कोंको पढ़ानेके लिए

लोग तत्पर हुए। सबसे यहां विशेषता यह हुई कि एक मुसलमान डाक्टरने १५) का चन्दा हिंदी पाठशालाके लिए दिया। वैश्यजातिके एक वकील साहबने अपनी वकालत छोड़कर जातीय-सेवामें जीवन बितानेकी प्रतिज्ञा की। ओसवाल-भाइयों ने गांव गांव स्कूल खोलनेका वचन दिया जो उनसे होना बहुत सम्भव है।

भरतपुर

मैं व्यावरसे चल कर २५ नवम्बरको भरतपुर पहुंचा।

थोड़े दिन हुए यहां पर एक हिन्दी-साहित्य-समिति स्थापित हुई है। दुःखका विषय है कि यहांके राज-कर्म्मचारी इसकी सहायता करनेपर सहमत नहीं थे। कतिपय हिन्दू ही इसके विरोधी खड़े हो गये थे। इसके मन्त्री साहबने मुझे पत्र लिखकर बुलाया। यहां मेरे तीन व्याख्यान हुए। तीनों दिन कौन्सिलके मेम्बरगण सभापति रहे। अन्तिम दिन राजके रेविन्यु मेम्बर, इलाहाबाद यनीवर्सिटीके फलो, खां बहादुर ने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। आपने उस दिन हृदय खोलकर हिन्दीकी प्रशंसा करते हुए हिन्दी ही को अपनी मातृ-भाषा बतायी। उन्होंने कहा कि हमारी मां बहू बेटियां हिन्दी ही बोलती, तथा आपसका पत्र व्यवहार हिन्दीके विकृत रूप कैथीमें करती हैं। इसलिये हमारी मातृ-भाषा हिन्दी ही है, मैं हिन्दीकी तन मन धनसे सहायता करूंगा। तदनुसार आप समितिको १॥) मासिक चन्दा देकर समितिके मेम्बर बन गये। उस दिनसे सभी पठित-समाज समितिसे सहानुभूति रखने लगे।

भरतपुरसे मैं २८ नवम्बरको चला और और तीसको प्रयागमें पहुंचा।

जीवानंद शर्म्मा।
वैतनिक उपदेशक, हि०-सा-सम्मेलन।

अन्य स्थानोंमें उपदेशक

राजपूतानासे लौटनेपर तृतीय सम्मेलन के लिए प्रतिनिधि भेजनेके निमित्त सभाएं करानेके अभिप्रायसे पण्डित जीवानन्द शर्म्मा कानपुर, मिर्जापुर, काशी, आरा और गोरखपुर गये और इन स्थानोंमें व्याख्यान देकर लोगोंको उत्साहित किया। मिर्जापुर में लाला बसन्तलालजीने वहांकी अदालतोंमें हिन्दी प्रचारके निमित्त दो वर्षतक २००) वार्षिक देनेका बचन दिया।

हिन्दी-प्रचार-सम्बन्धी विशेष उल्लेख योग्य बातें

देशी राज्योंमें नागरी प्रचारके विषयमें इस वर्ष बीकानेर, रीवां और छत्रपुरके नरेशोंका विशेष कर सराहनीय कार्य्य हुआ है। इन तीनों राज्योंमें नागरीका प्रचार अच्छी तरह हो रहा है और इसके लिये ये तीनों नरेश हिन्दी प्रेमियोंके धन्यवादके पात्र हैं।

माहेश्वरी कान्फरेन्सने अपनी जातिका सब व्यापारी कार्यों में हिन्दीके प्रचारकी ओर ध्यान आकर्षित किया है; अतः उसके कार्य्यकर्त्तागण भी धन्यवादके भागी हैं।

बम्बईमें इस वर्ष मारवाड़ी सज्जनोंके

प्रयत्नसे "मारवाड़ी कालिज" खुला है। आशा की जाती है कि उसके द्वारा बम्बईमें हिन्दी का प्रचार होगा।

हिन्दीकी हानि।

जहां चारों ओर बराबर हिन्दीकी उन्नति हो रही है और इस वर्ष भी हिन्दीका कार्य्य कई अंशोंमें अच्छा हुआ है, वहां कालचक्र ने हमारी हानि भी की है और वास्तवमें बहुत बड़ी हानि की है। इस वर्ष निम्न-लिखित हिन्दीके सेवकों, सहायकों और प्रेमियोंका देहान्त हो गया है—पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, पण्डित सखा-राम गणेश देउस्कर, पण्डित उमापति द्विवेदी उपनाम नकछेदीराम जी, पण्डित चन्द्रभूषण चतुर्वेदी साहित्य-व्याकरणाचार्य्य, बाबू साधुचरणजी, बाबू रत्नचन्द्रजी वकील, बाबू हरनामसिंह बर्म्मा, पण्डित भगवानदीन जी मिश्र, पण्डित बालगोविन्द तिवारी, सेठ रामनारायण राठी, माननीय वी० कृष्णस्वामी ऐयर। इन सब सज्जनोंके संसारसे उठ जाने से हिन्दीके काममें धक्का पहुंचा है, किन्तु इसमें मनुष्यका वश ही क्या। मैं इन सज्ज-नोंके कुटुम्बियोंके साथ सहानुभति प्रकट करता हूं और समस्त हिन्दी-प्रेमियोंकी ओरसे प्रार्थना करता हूं कि इनकी आत्मा-ओंकी सद्गति प्राप्त हो।

आय-व्यय।

इस वर्ष सम्मेलन-कार्य्यालयमें जो आय और व्यय हुआ उसका व्यौरा इस प्रकार है:—

आय-व्ययका व्यौरा।

ता० २४ सितम्बर १९११ से २० दिसम्बर १९१२ तक।

आय।		व्यय।	
१७७५॥//)	पहिले वर्षकी बचत	२४०)॥	कार्य्यालयका खर्च।
४११)॥/	पैसा फंड।	२१॥/)	वकीलतनामा
५८॥)॥/	ब्याज।	७२५॥)॥	नागरीप्रचार
४५)	सम्बन्ध करानेकी फीस।	३२॥/)	छपाई और कागज।
३००)	उपदेशक-सेठ-दामोदर दास राठीसे प्राप्त।	३५॥//)॥	स्टाम्प और तार।
		२५॥/)॥	फुटकर।
२५९०॥//)।	कुल जोड़	६५//)॥	सामान।
		॥)॥	पुस्तकालय।
		२०४।//)॥	उपदेशक।
		१४५१॥/)॥	कुल जोड़।
		११३९/)॥	बचत।
२५९०॥//)।	कुल जोड़	२५९०॥//)।	कुल जोड़

धन्यवाद।

अन्तमें मैं उन सब सज्जनोंको धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अदालतोंमें हिन्दी प्रचारमें अथवा उपदेशकके कार्य्यमें या साहित्य-सम्मे-लनके पुस्तकालयको पुस्तकों द्वारा सहायता की है। इनमें विशेष कर अपने मित्र प्रयाग निवासी पं० लक्ष्मीनारायण नागर और बाबू नवाबबहादुर, कानपुर निवासी पं० महेश-दत्त शुक्ल और हाथरस निवासी पं० राधे-श्याम शर्म्माको उनके कचहरीके कामके लिए सेठ दामोदरदास राठी और नागरी-प्रचारिणी सभा, ब्यावर, को राजपूतानाके कार्य्यमें सहायता देनेके लिए और बाबू चिन्तामणि घोष अध्यक्ष, इण्डियन प्रेस; बाबू रामनारा-यण लाल, बुकसेलर, कटरा, प्रयाग; मनेजर भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता तथा अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, को अपनी प्राय: सब हिन्दी-पुस्तकें भेट करनेके लिए धन्यवाद देता हूं।

पुरुषोत्तमदास टण्डन,
मन्त्री, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

परिशिष्ट (क) से (ङ) तक बर्म्मन प्रेसमें छपा।

परिशिष्ट (च)।

तृतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलनमें प्रतिज्ञात पुस्तकोंके विषय और लेखकोंके नाम।

१ नीतिशास्त्र—
बाबू राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल०
८६, हरिश्चन्द्रमुकर्जी रोड, भवानीपुर,
कलकत्ता।

२ भाषाविज्ञान—
साहित्याचार्य्य पं० चन्द्रशेखर ओझा,
दारागंज, प्रयाग।

३ सामानशास्त्र अथवा व्यापारनीति—
बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन एम० ए०
एल० एल० बी०
प्रयाग।

४ व्यापार-तत्त्व—
पण्डित राधाकृष्ण झा एम० ए०
पटना कालेज, बांकीपुर।

५ स्वास्थ्यरक्षा—
पण्डित जगन्नाथप्रसाद शुक्ल,
दारागंज, प्रयाग।

६ अङ्गरेजी साहित्यका इतिहास—
बाबू बदरीनाथ वर्म्मा एम० ए० काव्यतीर्थ,
६।२ मेडिकल कालेज ष्ट्रीट,
कलकत्ता।

७ बालशिक्षा या रामायण-रहस्य—
पण्डित रामजीलाल शर्म्मा
इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

८ भारतीय ज्योतिष—
पण्डित इन्द्रनारायण द्विवेदी,
सराय आकिल, प्रयाग।

९ इतिहासविज्ञान—
पण्डित नन्दकुमार देवशर्म्मा
सहायक सम्पादक, सद्धर्म्मप्रचारक,
दिल्ली।

१० सङ्गीतशास्त्र—
पण्डित रामनाथ शुक्ल
C/o नागरीप्रचारिणी सभा, कलकत्ता।

११ वाक्य-विन्यास—
पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी,
भारतमित्र-कार्य्यालय, कलकत्ता।

१२ प्राचीनतत्त्वसंग्रह—मनुष्यशास्त्र—
पं० रामावतार शर्म्मा एम० ए०
साहित्याचार्य्य,
संस्कृत प्रोफेसर, पटना कालेज, बांकीपुर।

परिशिष्ट (छ) ।

स्थायी समितिके पदाधिकारियों और सभासदोंकी नामावली ।

पदाधिकारीगण ।

सभापति—श्रीयुत पं० बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन ।

उपसभापति—(१) पं० छोटूलाल मिश्र, ३०, राजाकटरा, कलकत्ता ।

(२) पं० श्रीधर पाठक, लूकरगंज, प्रयाग ।

प्रधान मन्त्री—बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ।

मंत्री—(१) पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ।

(२) पं० नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय ।

सहायक मंत्री—बाबू नरेन्द्रनारायण सिंह ।

आयव्यय-परीक्षक—पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी

संयुक्तप्रान्तके सभासद ।

(१) पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, दारागंज, प्रयाग ।

(२) पं० शेषधर शर्म्मा, दारागंज, प्रयाग ।

(३) साहित्याचार्य्य पं० चन्द्रशेखर ओझा, दारागंज प्रयाग ।

(४) पं० कृष्णकान्त मालवीय, भारती-भवन, प्रयाग ।

(५) पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी, मुट्ठीगंज, प्रयाग ।

(६) बाबू गिरिजाकुमार घोष, कटरा, प्रयाग ।

(७) पं० लक्ष्मीनारायण नागर, वकील, प्रयाग ।

(८) बाबू नवाबबहादुर, वकील, प्रयाग ।

(९) पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, जुही, कानपुर ।

(१०) पं० महेशदत्तजी शुक्ल, वकील, कानपुर ।

(११) पं० रामप्रसाद मिश्र, गिलिसबाजार, कानपुर ।

(१२) पं० बदरीनाथ शर्म्मा वैद्य, त्रिमुहानी, मिर्जापुर ।

(१३) श्रीमन्त राव मोरेश्वर बलवन्त जोग, कर्वी, बांदा ।

(१४) बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०, कालीचरण हाईस्कूल, लखनऊ ।

(१५) पं० हरिशङ्कर शास्त्री, हरद्वार ।

(१६) बाबू मन्नूलालजी, वकील, फतेहपुर ।

(१७) बाबू शिवप्रसाद गुप्त, नन्दनसाहुकी गली, बनारस ।

(१८) श्रीयुत पुत्तनलालजी, बानवाली गली, लखनऊ ।

(१९) बाबू गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०, काशी ।

(२०) पं० सूर्य्यनारायण दीक्षित, वकील, लखीमपुर, खीरी।

(२१) पं० मुरलीधर मिश्र, वकील, लखीमपुर, खीरी।

बिहार और उड़िसाके सभासद।

(१) साहित्याचार्य्य पं० रामावतार शर्म्मा, एम० ए०, संस्कृत प्रोफेसर, पटना कालेज, बांकीपुर।

(२) बाबू व्रजनन्दन सहाय, वकील, आरा।

(३) हरेकृष्णप्रसाद बी० ए०, सम्पादक 'यङ्गविहार', भागलपुर।

(४) बाबू जगन्नाथप्रसाद पाण्डेय एम० ए० बी० एल० काव्यतीर्थ वकील, मुजफ्फरपुर।

(५) बा० गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा, बिहारी आफिस, बांकीपुर।

(६) राजा नरपति सिंह देव, पाड़ाहाट-नरेश (सिंहभूमि)।

(७) बाबू लक्ष्मीनारायण लाल, वकील, औरङ्गाबाद, गया।

(८) „ गणेशलाल, बिहार एंजेल प्रेस एण्ड ष्टोर्स, भागलपुर।

(९) „ देवीप्रसाद मारवाड़ी, भागलपुर।

(१०) „ युगलकिशोर अखौरी बी० ए० बी० एल० वकील, डालटेनगंज (पलामू)।

मध्यप्रदेश और बरारके सभासद।

(१) पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय, चन्द्रपुर *via* रायगढ़, बी० एन० रे०, (जि० विलासपुर)।

(२) पं० ताराचन्द दूबे, विलासपुर।

(३) पं० प्यारेलाल मिश्र, वारिष्टर-एट-ला, रायपुर।

(४) पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी, बी० ए०, सम्पादक हितकारिणी, जब्बलपुर।

(५) सेठ शिवनारायण राठी, नागपुर।

(६) पं० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री, वैकुण्ठपुर *via* पेण्डरा रोड, बी० एन० रे०।

(७) बाबू माणिकचन्द्र जैन, वकील, खण्डवा।

(८) पं० गणेशदत्त पाठक, मण्डला।

राजपूताना और मध्यभारतके सभासद।

(१) सेठ दामोदरदास राठी, कृष्णामिल्स, ब्यावर।

(२) पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, क्युरेटर, गवर्नमेण्ट म्यूजियम, अजमेर।

(३) पं० चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी, जयपुर हाउस, अजमेर।

(४) अधिकारी जगन्नाथदास विशारद, विरक्त मन्दिर, भरतपुर।

(५) पं० श्यामविहारी मिश्र, दीवान, छत्रपुर।

(६) पं० झावरमल्ल शर्म्मा, गोविन्दप्रेस, कलकत्ता।

(७) रायबहादुर बाबू लालविहारी जी, वकील, सतना।

बङ्गालके सभासद।

(१) बाबू पांचकौड़ी बनर्जी, सम्पादक, 'नायक', कलकत्ता।

(२) बाबू देवीप्रसाद खेतान, हरिसन रोड, कलकत्ता।

(३) पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, भारतमित्र-कार्य्यालय, कलकत्ता।

(४) बाबू राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल०, ८६ हरिश्चन्द्र मुकर्जी रोड, भवानीपुर, कलकत्ता।

(५) पं० रामानन्द द्विवेदी, सम्पादक, वीरभारत, कलकत्ता।

(६) बाबू गोकुलचन्दजी, ३० बड़तल्ला ष्ट्रीट, कलकत्ता।

(७) बाबू रामलाल वर्म्मन, ४०।२ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

(८) पं० बाबूराव विष्णु बहाड़कर, भारत-मित्र-कार्य्यालय, कलकत्ता।

दिल्ली, पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रदेशके सभासद।

(१) श्रीयुत इन्द्र शर्म्मा, सम्पादक, सद्धर्म-प्रचारक, दिल्ली।

(२) लाला लाजपत राय, वकील, चीफकोर्ट, लाहौर।

(३) पं० राधाकृष्ण मिश्र, गोविन्द प्रेस, कलकत्ता।

(४) महामहोपाध्याय पं० हरिनारायण शास्त्री, दिल्ली।

(५) व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालु शर्म्मा, झझ्झर, (जि० रोहतक)

बम्बईके सभासद।

(१) पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, सम्पादक, आर्य्यमित्र आगरा।

(२) मा० आत्माराम, एजुकेशनल इन्सपेक्टर, बड़ोदा।

(३) पं० यादवजी त्रिकमजी आचार्य्य, सम्पादक, आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला, होली चकला, फोर्ट बम्बई।

(४) सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री व्यङ्कटे-श्वर प्रेस, बम्बई।

मद्रासके सभासद।

(१) श्रीयुत जी० ए० नटेसन, सम्पादक, इण्डियन रिव्यू, मद्रास।

(२) प्रतिवादि भयङ्कर श्री अनन्ताचार्य्यजी, सुदर्शन प्रेस, कांजीवरम् (कांची)।

पिछले अधिवेशनोंके सभापति।

(१) माननीय पं० मदनमोहन मालवीय, प्रयाग।

(२) पं० गोविन्दनारायण मिश्र, १३१ तुला-पट्टी, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

परिशिष्ट (ज)।

स्वागतकारिणी सभाके पदाधिकारियों और सदस्योंकी नामावली।

सभापति

श्रीयुत पंडित छोटूलाल मिश्र।

उप सभापति

बाबू गोकुलचन्दजी, बी० ए०।

मन्त्री

बाबू राजेन्द्रप्रसाद,एम० ए०,बी० एल०।

सहकारी मन्त्री

पंडित राधाकृष्ण झा, एम० ए०।

बाबू रामलाल वर्म्मन।

कोषाध्यक्ष

श्रीयुत शीतलप्रसाद खड्गप्रसाद।

लेखापरीक्षक

बाबू यशोदानन्दन अखौरी।

सदस्य

१ बाबू बिठ्ठलदास कोठारी।
२ पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।
३ „ बाबूराव विष्णु पराड़कर।
४ „ अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी।
५ „ वासुदेव मिश्र।
६ बाबू कालिकाप्रसाद सिंह, बी० ए०।
७ „ रामकुमार गोइनका।
८ „ फूलचन्द चौधुरी।
९ „ शिवनारायण लाल।
१० „ मुरलीधरप्रसाद शराफ, बी० ए०।
११ सेठ रुढ़मलजी गोइनका।
१२ पंडित सत्यनारायण पाण्डे।
१३ बाबू दामोदरदास खण्डेलवाल।
१४ „ राधामोहन गोकुलजी।
१५ „ श्यामलाल लखनेश्वर।
१६ „ पुरुषोत्तम राय।
१७ „ दामोदरदास खत्री।
१८ पंडित अमृतलाल चक्रवर्त्ती।
१९ बाबू शिवनन्दन राय, बी०ए०, बी०एल।
२० „ लक्ष्मीप्रसाद।
२१ पंडित बैजनाथ चौबे।
२२ „ चन्द्रशेखर पाठक।
२३ „ सोमनाथ झाड़खण्डी, बी० ए०।
२४ बाबू घनश्यामदास चौधरी।
२५ „ केदारनाथ वर्म्मा।
२६ „ नथुनीप्रसाद सिंह।
२७ पंडित अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय एम०ए०
२८ „ कालिकाप्रसाद त्रिपाठी।
२९ बाबू अयोध्याप्रसाद वर्म्मा।
३० „ रसिकलाल पान।
३१ „ देवकीनन्दन खन्ना।
३२ „ मोहनलाल मुरारका।
३३ „ नवलकिशोर गुप्त।
३४ „ श्यामकृष्ण सहाय, बार-ऐट-ला।
३५ „ हनुमानप्रसाद पोद्दार।
३६ „ हरगोविन्ददास गुप्त।

३७ „ मुनीश्वरप्रसाद सिंह, बी० ए०।
३८ „ मदनजी।
३९ पं० रमानन्द द्विवेदी।
४० बाबू नवजादिक लाल श्रीवास्तव।
४१ पं० रामनाथ शुक्ल।
४२ „ बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी, बी० ए०।
४३ बाबू नन्दलाल भगत, एम० ए०।
४४ „ वासुदेव गोइनका।
४५ पं० वासुदेव आचार्य्य।
४६ बाबू बांकेलाल वर्म्मा।
४७ „ मदनगोपाल मैत्र।
४८ „ शालिग्राम बर्म्मन।
४९ „ शिवकुमार केडिया।
५० पं० हरिशङ्कर शास्त्री।
५१ बाबू अयोध्याप्रसाद सिंह।
५२ पं० झावरमल्ल शर्म्मा।
५३ पं० शिवनन्दन त्रिपाठी।
५४ „ सुखानन्द वाजपेयी।
५५ बाबू बदरीनाथ वर्म्मा एम० ए०, काव्यतीर्थ।

टिप्पणी—इन सज्जनोंके अतिरिक्त वे सज्जन भी, जिन्होंने सम्मेलनके लिये अर्थ-साहाय्य किया था, स्वा० का० स० के मन्तव्यानुसार उसके सदस्य बना लिये गये थे। इनकी नामावली परिशिष्ट (झ) में दी गयी है।

परिशिष्ट (क्ष) ।

३य हिन्दी-साहित्यसम्मेलनके लिये अर्थ साहाय्य करनेवाले सज्जनोंकी नामावली ।

क्रम	नाम	रुपये
१	बाबू गोकुलचन्द, बी० ए० (बाबू शीतलप्रसाद खड्गप्रसाद)	५०१)
२	राय रामचन्द्र हरिराम गोइनका बहादुर	१०१)
३	पं० छोटूलाल मिश्र (पं० विनायक मिश्र)	१०१)
४	श्रीयुत नाथूराम रामकृष्ण	५१)
५	श्रीयुत रामप्रसादजी चिम्मनवाला	५१)
६	श्रीयुत रामनारायण जयपाल	२५)
७	श्रीयुत मुन्नालाल चमड़िया	२५)
८	श्रीयुत शिवदयाल सूर्य्यमल	५१)
९	श्रीयुत शोभाराम लक्ष्मीनारायण	११)
१०	श्रीयुत धन्नूलाल अग्रवाला	५१)
११	श्रीयुत देवीप्रसाद खेतान	११)
१२	श्रीयुत राय शिवप्रसाद झुनझुनवाला बहादुर	१०१)
१३	श्रीयुत राय कल्लूबाबू लालचन्द	१०१)
१४	श्रीयुत रामदेव चोखानी	२५)
१५	श्रीयुत लक्ष्मीनारायण खत्री	५१)
१६	श्रीयुत गोपीनाथ पुरुषोत्तमदास	५१)
१७	श्रीयुत हीरालाल चुन्नीलाल बर्म्मन	५१)
१८	श्रीयुत मदनमोहन बर्म्मन	५१)
१९	श्रीयुत गणेशदास हरि बख्श	२५)
२०	श्रीयुत गणेशदास रामगोपाल	५१)
२१	श्रीयुत कस्तूरचन्द मोधा	७)
२२	श्रीयुत जगरमल हजारीमल	२१)
२३	श्रीयुत जानकीदास जगन्नाथ	५)
२४	श्रीयुत शिवदुलारि मिश्र	११)
२५	श्रीयुत ताराचन्द घनश्यामदास	५१)
२६	श्रीयुत शिवशङ्कर खन्ना	५)
२७	श्रीयुत केदारनाथ सेठ	५)
२८	श्रीयुत नारायणदास खन्ना	५)
२९	श्रीयुत सुन्दरलाल मिश्र	५१)
३०	श्रीयुत नारायण कम्पनी	२१)
३१	श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दार	२१)
३२	श्रीयुत दामोदरदास खण्डेलवाल	१५)
३३	श्रीयुत बैजनाथ चौबे	५१)
३४	श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	२५)
३५	श्रीयुत हीरालाल अग्रवाला एण्ड कम्पनी	२१)
३६	श्रीयुत राधाकृष्ण चतुर्वेदी	५)
३७	श्रीयुत रामजसराय गुलाबराय पोद्दार	२१)
३८	मि० मिलर	१६)
३९	मि० स्पेनोस	१०)
४०	मि० ब्रिटन	१०)
४१	श्रीयुत काशीप्रसाद खत्री	१६)
४२	श्रीयुत रंगलाल जाजोदिया	२१)

४३	मि० रोडोकनाकी	१६)
४४	श्रीयुत नन्दकिशोर दूबे	५)
४५	श्रीयुत रामजीदास पोद्दार	१०)
४६	श्रीयुत वंशीधर मुरलीधर	११)
४७	श्रीयुत गिरधारी लाल सरावगी	५१)
४८	श्रीयुत हीरालाल झब्बूलाल	३१)
४९	श्रीयुत आशुतोष बनर्जी	५)
५०	श्रीयुत गोकुलचन्द गोविन्ददास	५)
५१	श्रीयुत खानचन्द मल्लिक	५)
५२	श्रीयुत गोकुलचन्द हंसराज	२१)
५३	श्रीयुत कुन्दनलाल शर्म्मा	११)
५४	श्रीयुत कन्नूलाल कंपनी	२५)
५५	श्रीयुत दामोदरदास बर्म्मन	५१)
५६	श्रीयुत आसाराम मिर्जामल	२५)
५७	श्रीयुत बलदेवदास युगलकिशोर	१०१)
५८	श्रीयुत मोतीलाल हलवासिया	११)
५९	श्रीयुत कन्हैयालाल रामजीदास	११)
६०	श्रीयुत नागरमल मोदी	२१)
६१	श्रीयुत अनचिन्तलाल	१०)
६२	श्रीयुत शंभुनाथ बालमुकुन्द	११)
६३	श्रीयुत हजारीलाल खन्ना	२१)
६४	श्रीयुत विश्वम्भरलाल बालमुकुन्द	११)
६५	श्रीयुत जीवनलाल याकूबमियां	११)
६६	गुप्तदान— (ह० रामकरण तिवारी)	११)
६७	श्रीयुत द्वारकाप्रसाद सुरेका	११)
६८	श्रीयुत केशवराम पोद्दार कंपनी	२१)
६९	श्रीयुत कालिकादास बद्रीदास राय बहादुर	२५)
७०	क्षत्रियकुलधर्म्मरक्षिणी सभा—	३१)
७१	पं० श्रीयुत गोविन्दनारायण मिश्र	११)
७२	श्रीयुत बाबू छोटकामल खन्ना	११)
७३	" " सोटनलाल सेट	५)
७४	" " गोपालदास खन्ना	४)
७१	श्रीयुत शिवप्रसाद शास्त्री	११)
७२	श्रीयुत टेकचन्द आर्य्य	११)
७३	श्रीयुत परमेष्ठीदास सरावगी	५१)
७४	श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल०	११)

परिशिष्ट (ञ)।

प्रतिनिधियोंकी नामावली।

पंजाब।

अमृतसर—नागरी-प्रचारिणी सभा।

बाबू गिरिधारी लाल, बार-एट-ला।

बंगाल।

कलकत्ता।

आर्य्यसमाज।

श्रीयुत मदनलाल शराफ।
„ रामचन्द्र शराफ।
„ नागरमल मोदी।
„ श्रीनिवास खेमाणी।
„ हरगोविन्ददास गुप्त।
„ टेकचन्द आर्य्य।

क्षत्रिय-कुलधर्म्मरक्षिणी सभा।

श्रीयुत केदारनाथ सेठ।
„ गोपीनाथ मेहरे।
„ शालिगराम वर्म्मन।
„ बैजनाथ कपूर।
„ गोपालदास खन्ना।

कान्यकुब्जमंडल सभा।

पं० रामनारायण वाजपेयी।
„ गजाधरप्रसाद मिश्र।
„ निरंजनलाल शुक्ल।

श्रीकृष्णगोशालासभा।

श्रीयुत गोविन्दराम सुरेका।

ब्राह्मणसभा।

श्रीयुत कन्हैयालाल शर्म्मा गोपालाचार्य्य।
„ जोहार मलजी।

बंगीय साहित्यपरिषद।

श्रीयुत सारदाचरण मित्र, एम० ए०, बी० एल।

महामहोपाध्याय डाक्टर
श्रीयुत सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम०ए०, पी० एच० डी०
„ चारुचन्द्र वसु, एम० आर० ए० एस०
„ हेमचन्द्र सेन, कविराज।
„ चारुचन्द्र वंद्योपाध्याय।
„ हेमचन्द्र दास गुप्त।
„ नरसिंहमजी।
„ धन्नूलाल अग्रवाला, अटर्नी।
„ कविराज दुर्गानारायण सेन शास्त्री।

बड़ाबाजार स्पोर्टिङ्ग क्लब।

श्रीयुत पुरुषोत्तम राय।
„ हीरालाल खत्री।
„ शिवनारायण खत्री।
„ व्रजकिशोर मिश्र।
„ श्रीराम मिश्र।
„ भोलानाथ वर्म्मन।
„ वासुदेव शराफ।

श्रीयुत तुलसीचरण खत्री।
,, गणेशलाल मिश्र।
,, रामनारायण मिश्र।
,, सुखानन्द मिश्र।
,, सोहनलाल मिश्र।
,, मदनलाल बर्म्मन।
,, प्यारेलाल मुकीम।
,, लक्ष्मीनारायण बर्म्मन।
,, सेढ़मल डालमिया।
,, विश्वेश्वरनाथ मिश्र।
,, गोवर्द्धनदास खत्री।
,, मोतीलाल जाजोधिया।
,, मानिकलाल जाजोधिया।
,, रामकुमार जाजोधिया।

बिहार-एसोसियेशन।

श्रीयुत हरमाधो सिंह।

बिहारी क्लब।

श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी।
,, मथुराप्रसाद सिंह, बी० ए०
,, रघुनाथप्रसाद पांडे।
,, बलभद्रप्रसाद ज्योतिषी, बी० ए०
,, बदरीनाथ बर्म्मा, एम० ए०

मारवाड़ी एसोसियेशन।

श्रीयुत नवलकिशोर गुप्त।
,, मदनलाल डालमिया।

मारवाड़ी ब्राह्मण सभा।

,, श्रीयुत हरिबक्स गोस्वामी।
,, मोतीलाल ज्योतिषी।
,, सीताराम मिश्र।

मारवाड़ी स्टूडेंटस् क्लब।

श्रीयुत मुकुन्दीलाल।
,, प्रह्लादराय भिवानीवाले।
,, नारायणदास बाजोरिया।
,, कविराज मदनगोपाल मारोदिया।
,, शङ्करलाल व्यास।
,, दुर्गाप्रसाद पोद्दार।
,, बैजनाथप्रसाद देवड़ा, बी० ए०
,, कन्हैयालाल झुंझुनूवाले।

नागरी प्रचारिणी सभा।

श्रीयुत वासुदेव आचार्य्य।
,, शिवनाथ राय।
,, कन्हैयालाल शर्म्मा।
,, रामलाल बर्म्मा।
,, राधामोहन गोकुलजी।
,, दामोदरदास खत्री।
,, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी।
,, अनिरुद्ध सिंह।
,, अयोध्याप्रसाद वर्म्मा।
,, रामनाथ शुक्ल।
,, नवजादिक लाल।
,, रामानन्द द्विवेदी।
,, बैजनाथ चौबे।
,, गंगाप्रसाद शर्म्मा।
,, गोविन्दमाधव शर्म्मा।
,, मोहनलाल मुरारका।
,, रामविलास पांडे।
,, नित्यानन्द मिश्र।
,, सदाशिव तिवारी।

श्रीयुत राधारमण मैत्र ।
,, मदनमोहन शर्म्मा ।
,, श्यामसुन्दर शुक्ल ।
,, हरदेव दास डागा ।
,, सत्यनारायण पांडे ।
,, मुरारीलाल कपूर ।
पं० जीवानन्द शर्म्मा, काव्यतीर्थ ।

स्वागतकारिणी सभा ।

पं० छोटूलाल मिश्र ।
बाबू वासुदेव गोएनका ।
पं० सुखानन्द बाजपेयी ।
,, शिवनन्दन त्रिपाठी ।
बाबू गोकुलचन्द, बी० ए०
,, जयकृष्ण दास ।
,, राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०
,, देवकीनन्दन खन्ना ।
,, घनश्यामदास बिडला ।
,, शिवशंकर लाल खन्ना ।

हिन्दी-साहित्यपरिषद ।

श्रीयुत बाबू हनुमानप्रसाद पोद्दार ।
,, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ।
,, बा० हरिबकस जालान ।
,, पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा ।
,, ,, भूरालाल मिश्र ।
,, ,, झाबरमल शर्म्मा ।
,, बाबू यशोदानन्दन अखौरी ।
,, पं० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी ।
,, पं० बाब रावविष्णु पराड़कर ।

श्रीयुत बाबू फूलचन्द चौधरी ।
,, ,, बिलासराय डालमिया ।
,, ,, श्यामलाल लखनेश्वर ।

रानीगंज
मारवाड़ी-युवक समिति ।

पं० दौलतराम शर्म्मा ।
बाबू जगन्नाथजी झुनझुनवाला ।
,, बद्रीप्रसाद ।

जमालपुर, मैमनसिंह ।

पं० शिवचन्द्र शर्म्मा ।

बम्बई ।

पूना ।

पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी ।

बिहार-उड़ीसा ।

आरा
नागरीप्रचारिणी सभा ।

बाबू रामचीज सिंह ।
पं० सकलनारायण पाण्डेय ।
बा० अवधविहारी शरण बी० ए० ।
,, गोकर्ण सिंह ।
,, शिवनन्दन सहाय ।

बांकीपुर ।

पं० रामावतार शर्म्मा साहित्याचार्य्य एम० ए० ।

भागलपुर

मारवाड़ी युवकसमिति ।

बाबू रामसरीख सिंह ।

,, लक्ष्मीनारायण डिडवानिया ।

,, लोकनाथ ठाठनिया ।

भागलपुर हिन्दी सभा ।

श्रीयुत कुमार कीर्त्यानन्दसिंह, बी० ए० ।

पं० राधाकृष्ण झा, एम० ए० ।

बाबू मुरलीधरप्रसाद सराफ, बी० ए०

पं० ज्ञानानन्द मिश्र ।

पं० रामलोचन पाण्डेय ।

बाबू गोकुलानन्दप्रसाद ।

पं० भगवानप्रसाद चौबे ।

पं० अलोपीप्रसाद चौबे ।

कहलगांव भागलपुर ।

पं० आत्मानन्द मिश्र ।

मुरार छात्रोन्नति सभा ।

बक्सी रघुराजकिशोर लाल ।

मध्यप्रदेश ।

बिलासपुर

सरस्वतीपुस्तकालय ।

पं० शिवदुलारे मिश्र ।

पं० लोचनप्रसाद पांडेय ।

धुरसीना ।

पं० तारानाथ मिश्र ।

बा० तारानाथ ।

राजपुताना और मध्यभारत ।

भरतपुर ।

पं० काव्यविशारद जगन्नाथदास अधिकारी ।

भिवानी ।

पं० रामजीवन लाल ।

सतना ।

राय लालबिहारी शरण बहादुर ।

कर्वी-बांदा ।

श्रीमन्त राव मोरेश्वर राव योग ।

डाक्टर रामलाल ।

पं० बामनराव घोपड़े ।

,, नारायण राव वैशम्पायन ।

,, ज्वालाप्राचाद चौबे ।

पं० रामकृष्णदास ।

बाबू शिवकुमार सिंह ।

संयुक्त प्रदेश ।

आगरा ।

पं० पन्नालाल शर्मा ।

कानपुर

नागरीप्रचारिणी सभा ।

पं० महेशदत्त शुक्ल ।

हिन्दी-साहित्यसमिति ।

बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा ।

पं० ख्यालीराम तिवारी ।

पं० रामप्रसाद मिश्र ।

बिन्दकी हिन्दी सभा ।

पं॰ दयाशङ्कर शुक्ल ।

गहमर ।

बाबू गोपालराम ।

,, विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह ।

नेथपुर ।

बाबू जगलाल प्रसाद ।

प्रयाग ।

पं॰ रामाधार वाजपेयी ।

,, राधाकान्त मालवीय ।

,, महादेव भट्ट ।

,, शेषधरजी ।

बाबू नवाब बहादुर ।

,, मन्नूलाल ।

स्थायी समिति ।

पं॰ रामजीलाल शर्म्मा ।

,, इन्द्रनारायण द्विवेदी ।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ।

पं॰ चन्द्रशेखर शास्त्री ।

,, द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ।

सनातनधर्म्मसभा ।

बा॰ आदित्यनारायण सिंह ।

नागरीप्रवर्द्धिनीसभा ।

लाला रामदयाल ।

पं॰ जगन्नाथप्रसाद शुक्ल ।

बनारस ।

नागरीप्रचारिणीसभा ।

बा॰ शिवप्रसाद गुप्त ।

बा॰ श्रीनिवासदास ।

पं॰ हरिशङ्कर पांडेय, काव्यतीर्थ,
व्याकरणाचार्य्य ।

बा॰ भगवानदास गुप्त, बी॰ ए॰

बा॰ बैजनाथ सिंह ।

जायसवाल सभा ।

बा॰ भानुप्रकाश गुप्त ।

मिर्जापुर ।

पं॰ नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय,
एम॰ ए॰, एल॰ एल॰ बी॰

,, प्रभाकरेश्वरप्रसाद उपाध्याय ।

मैनपुरी ।

पं॰ जयन्तीप्रसाद चतुर्वेदी ।

लखनऊ

नागरीभाषाप्रचारिणी सभा ।

बाबू पुत्तनलाल विद्यार्थी ।

पं॰ विहारीलाल गुजराती ।

लखीमपुर

नागरी प्रचारिणी सभा ।

पं॰ मुरलीधर मिश्र, बी॰ ए॰,
एल॰ एल॰ बी॰

पं॰ मातादीन ।

बाब रामकिशोर ।

पं॰ सूर्य्यनारायण दीक्षित ।

हरद्वार ।

पं॰ हरिशङ्कर शास्त्री ।

परिशिष्ट (ट)।

आयव्ययका लेखा।

आय।		व्यय।	
अर्थसाहाय्यखाते	२६४४)	इष्टेशनरीखर्च	४५/)।
स्वागतकारिणी सभाके सदस्योंकी फीस	१८०)	गाड़ीभाड़ा आदि	७२/)॥।
प्रतिनिधियोंकी फीस	३७६)	डाक और तारखर्च	५७॥)।
सामानबिक्री	७२॥/)	वेतनादि	२१२॥/)॥
		छपाई, बंधाई, चित्रादि	५९०≡)
		रोशनीखर्च	८॥/)।
		भोजनादि	५५५॥≡)।
		सामानखरीद और सामानभाड़ा एवं मण्डपसजावट आदि	४२७॥)॥।
		फुटकरखर्च	७।/)॥।
		जोड़	१९७७।≡)॥।
		औरोकड़बाकी	१२९५।/)।
	३२७२॥/)		३२७२॥/)

टिप्पणी—व्ययकी ओर कार्य्यविवरणकी छपाई बंधाई, आदि मध्ये रुपये अभी देने हैं। जिनके बिल अभी नहीं मिल सके हैं। बिल मिलनेपर रुपये दिये जायंगे। यह सब व्यय करनेपर जो बचत होगी वह स्थायी समितिको अर्पित की जायगी।

हिसाब जांचा और ठीक पाया।
यशोदानन्दन अखौरी,
लेखापरीक्षक।
२—१२—१३

राजेन्द्रप्रसाद,
मन्त्री।
३०—११—१३

॥ श्रीः ॥

तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कलकत्ता।

कार्य्यविवरण—दूसरा भाग।

(लेखमाला)

स्वागतकारिणी सभाके मन्त्री,

राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, बी० एल०,

द्वारा

८६, हरिश्चन्द्रमुकुर्जी रोड, कलकत्तेसे

प्रकाशित।

वैक्रम संवत् १९७०।

॥ श्रीः ॥

आरम्भिक विनय।

और वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी स्वागतकारिणी सभाकी ओरसे हिन्दीके सुयोग्य लेखकों और हितैषियोंसे प्रबन्ध लिखनेकी प्रार्थना की गयी थी। जितने महानुभावोंसे लेखके लिये अनुरोध किया गया था, उनमेंसे कुछ महाशय लेख न भेज सके। जो लेख आये थे, उनमेंसे दोतीन ही सम्मेलनके अधिवेशनमें पढ़े जा सके थे, जिसका उल्लेख प्रथम भागमें यथास्थान किया गया है। इसलिये और वर्षोंकी भांति लेखमालाको भी "कार्यविवरणका दूसरा भाग"की संज्ञा देकर प्रकाशित करना उचित जान पड़ा। इसके सिवा लेखमालाका प्रकाशित होना एक विचारसे और भी उचित था। वह यह कि, अधिवेशनमें लेखपाठके समय श्रोताओंको उनपर मनन करनेका अवसर नहीं मिलता। पीछे मनन करनेपर लेखोंमें वर्णित विषयकी ओर अधिक ध्यान देनेमें सुभीता होता है। अतएव प्रबन्धोंको प्रकाशित करना बहुत ही उचित जान पड़ा।

दुःखकी बात है कि, श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवालका प्राचीन हिन्दू राजनीतिक विषयक प्रबन्ध इस लेखमालामें सन्निवेशित न होसका। क्योंकि, अधिवेशनके बाद लेखक महाशयने हमसे वह लेख संशोधनके लिये ले लिया था और फिर वे उसे लौटा न सके। वह लेख बहुत ही उपयोगी था। उसके न प्रकाशित होनेका हमें बहुत खेद है।

इस लेखमालामें समालोचनावाले लेखोंपर हिन्दीहितैषी विशेष ध्यान दें। क्योंकि, हिन्दीसाहित्यकी त्रुटियां उनके द्वारा बहुत कुछ दूर हो सकती हैं।

हम यहां हिन्दीहितैषियोंका विशेष ध्यान श्रीयुत बाबू विनयकुमार सरकारके "हिन्दूसाहित्यप्रचारक" शीर्षक निबन्धकी ओर दिलाते हैं। आपने, बङ्गभाषी होनेपर, भी अपनी जो हिन्दीहितैषिता दिखलायी है, वह अनुकरणीय है।

पण्डित गौरीशङ्कर भट्टका प्रबन्ध भी, जो देवनागरीको शीघ्र लिखनेके ऊपर है, बहुत ही मनन करने योग्य एवं समयानुकूल है। आशा है, सम्मेलनके भावी अधिवेशनमें इसपर उचित विचार किया जायगा।

साहित्याचार्य पण्डित रामावतार शर्म्मा, एम० ए० महोदयका "हिन्दीमें विश्वकोषकी अपेक्षा" दिखाना वस्तुतः बहुत ही समयोपयोगी है। ऐसे ग्रन्थके प्रणयनसे हिन्दीको राष्ट्रभाषाके पदपर पहुंचनेमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

शीघ्रताके कारण इस लेखमालामें बहुत सी भूलें रह गयी हैं। आशा है, हिंन्दी-रसिक महानुभाव और पाठक इसके लिये क्षमादान देंगे।

मार्गशीर्ष शुक्ल ७
संवत् १९७०

राजेन्द्रप्रसाद,
मन्त्री।

विषयानुक्रमणिका ।

कार्यविवरण-दूसरा भाग ।

लेखमाला ।

---

(१)

प्राचीन हिन्दीमें गद्य ।

लेखक—

पण्डित गणेशविहारीमिश्र,

" श्यामविहारीमिश्र और

" शुकदेवविहारीमिश्र ।

यद्यपि हिन्दी भाषाका जन्म विक्रमीय आठवीं शताब्दीके लगभग हुआ था, तथापि या तो इसमें गद्यलेखक बहुत दिनोंतक हुए ही नहीं, अथवा उनके गद्यग्रन्थ कालकी कुटिलतासे लुप्त हो गये। पहिला गद्यलेखक, जिसके ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, महात्मा गोरखनाथ हैं, जिनका रचनाकाल सं० १४०७के लगभग माना गया है। इन महात्माके प्रथम हिन्दीगद्यके उदाहरणस्वरूप महाराजा पृथ्वीराज आदिके आज्ञापत्र ही हैं, जो पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्याकी कृपासे पठित समाजको प्राप्त हुए हैं। ऐसे चिट्ठीपरवानों आदिकी ९ नकलें नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रथम खोज-रिपोर्टमें प्रकाशित हुई हैं। उनमेंसे दोकी यहां नकल कीजाती है, जो अनन्द सं० ११४५ की है। इस सं० में ९० जोड़देनेसे विक्रमीय सं० मिलसकता है। सबसे पहिला आज्ञापत्र अनन्द सं० ११३९ का है।

"श्रीहरी एकलिंगो जयति

"श्रीश्री चीत्रकोट वाई साहव श्री प्रथुकुवर वाईका वारण गाम मोई आचारज भाई रुसीकेसजी वांच जो अपन श्रीदलीसूं भाई लंगरी रांजी आआहै जो श्रीदलीसूं वी हजूरकी वी खास रुका आयोहै जो मारी वी पदारवाकी सीखवी है नेदली काकाजी षिद है जो का (गद वाच) त चला आव जो थानेमा आगे जाइगे पडेगा थाके वास्ते डाक वैठी है श्रीहजूर······वी हुक्म वेगीयोहै जो थे ताकीद सूं आव जो थारे मंदरको व्याव कामारथ अवार—करोगा दलीसु आआ पाछे करोगा और थे सवेरे दन अठे आय्य सो संवत् ११ (४५) चैत सुदी १३ ॥

सही

श्रीश्री चीत्रकोट महाराजधीराज तपेराज श्रीरावरजी श्रीश्री समरसीजी वचनातु दाअमा आजारज ठाकुर रुसीकेस कस्य गाम मोईरो षेडो थाने म आको दो लोग भोग-सुदीया आवा दान करजो जमाषात्री सोआवां दान करजे थारे ही दुवे घवा मुकननाथ··· संवत् ११४५ जेठ सुदी १३।"

अर्थ

श्रीहरि एकलिंगकी जय हो। मोई ग्रामनिवासीआचार्य भाई ऋषीकेशजीको चित्तौरसे बाई साहब श्रीपृथाकुवरि बाईका संवाद बांचना। आगे भाई श्रीलंगरीरायजी श्री दिल्लीसे आये हैं और श्रीदिल्लीसे हजूरका खास रुक्का भी आया है, जिससे मुझको भी दिल्ली जानेकी आज्ञा मिली है। काकाजी अस्वस्थ हैं। सो कागज बांचते चले आवो। तुमको हमसे पहिले जाना पड़ेगा। तुम्हारे वास्ते डाक बैठायी गयी है। श्रीहजूर (समरसिंह) ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मंदिरकी स्थापना जल्दी स्थिर हुई है, सो हमलोगोंके दिल्लीसे लौटनेपर होगी। इतनी जलदी आओ कि दिनका सबेरा वहां हो, तो ग्राम यहां हो। मिती चैत सुदी १३ संवत् ११४५।

सही,

महाराजाधिराज आदेशकर्त्ता श्रीरावलजी श्रीश्रीसमरसिंहजी श्रीश्रीचित्तौरनरेशकी आज्ञासे आचारज ठाकुर ऋषीकेशको (दियागया) मुईखेरेका ग्राम तुमको दानमें दियागया। उसको हराभरा और आबाद करो। जमाखातिरसे उसको हराभरा और आबाद करो। वह तुम्हारा है। दुवे घवा मुकुन्दनाथ द्वारा आज्ञा हुई। मिती जेठ सुदी १३ संवत् ११४५।

पूर्व्वोक्त भाषा संवत् १२३५ की है, जिसका प्रयोग राजपूतानेमें होता था। अब साधारण मनुष्यको इसका समझना बहुत कठिन है। यह साहित्यकी उच्च भाषा न होकर रोजाना बोलचालकी बोली है। इसके पीछे संवत् १४०७ तक किसी प्रकारकी गद्यभाषाका अबतक पता नहीं चला है।

हमारी भाषामें महात्मा गोरखनाथजी सबसे पहिले गद्यलेखक हैं। इन्होंने कितने ही संस्कृत एवं हिन्दी-पद्यके ग्रन्थ रचे और "गोरखबोध" नामक एक हिन्दीगद्यग्रन्थ भी लिखा, जिसका आकार १२१५ अनुष्टुप श्लोकोंके बराबर है। यह जोधपुरके राजपुस्तकालयमें है और इसमें छोटेछोटे २७ ग्रन्थ संगृहीत हैं। इनमेंसे कुछ रचनाएं

पद्यमें भी हैं। इनका गद्य व्रजभाषामिश्रित है। उदाहरण ;—

"स्वामी तुमै तो सतगुरु अम्हे तो सिष सबद एक पुछिबा, दया करि कहिबा, मनन करिबा रोस। पराधीन उपरांति बंधन नांही। सुआधीन उपरांति सुकुति नांही। चाहि उपरांति पाप नांही। अचाहि उपरा इति पुनि नांही। कम उपरांती मल नाहीं। निहकम उपरां इति निरमल नांही। दुष उपरांति कुबुधि नांही। निरदोष उपरांति सवधि नाहीं। सुसबद उपरां इति पोष नांही। अजपा उपरांइति जाप नांहीं। घोर उपराइति मंत्र नांही। नारायन उपरांति ईसट नांही। निरंजन उपरां इति ध्यान नांही। इती गोरखनाथजीको सिसटि परवाण ग्रन्थ संपुरण समापता॥"

यद्यपि महात्मा गोरखनाथजी संस्कृतके पूर्ण पण्डित थे तथापि उन्होंने हिन्दी लिखने-में शब्दोंके शुद्ध संस्कृत रूप न लिखकर भाषा-में प्रचलित रूप लिखे हैं और एक ही शब्दको कई प्रकारसे विविध स्थानोंमें लिखा है।

महात्मा गोरखनाथके पीछे प्राय: २०० वर्षों तक फिर भी कोई गद्यलेखक न हुआ या यों कहें कि, अबतक इस समयके ऐसे किसी गद्यलेखकका पता नहीं लगसका है। वल्लभीय मतसंस्थापक महात्मा वल्लभा-चार्यके पुत्र महात्मा विट्ठल स्वामी हिन्दीके द्वितीय गद्यलेखक कहे जासकते हैं। इन-का जन्म संवत् १५७२ में हुआ था, सो रचना काल १६०० के लगभग माना जा सकता है। इनका केवल एक गद्यग्रन्थ "शृङ्गाररसमंडन" खोजमें मिला है। इसकी भाषा शुद्ध व्रजभाषा है, जिसमें संस्कृतके शब्दोंकी भी कुछ विशेषता है। उदाहरण ;—

"प्रथमकी सखी कहत है जो गोपीजन-के चरण विषै सेवककी दासी करि जो इनके प्रेमामृतमें डूबके इनके मंदहास्यने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुंज विषै शृङ्गाररस श्रेष्ट रसना कीनी सो पूर्ण होतभई॥"

संवत् १६२७ के लगभग गंगाभाट अथवा पंडित विष्णुदास नामक एक व्यक्तिने "चन्द छन्द बरननकी महिमा" नाम्नी १६ पृष्ठकी खड़ी बोलीके गद्यमें एक पुस्तक रची। इसके देखनेसे प्रगट होता है कि, इसमें कविने बादशाह अकबरसे चन्दबरदाईकृत रासोका वर्णन कियाहै। अबतक हमलोगोंका विचार था कि, जटमल खड़ी बोलीके गद्यका प्रथम लेखक है, परन्तु विष्णुदासका अब यह पद मिलता है। इस समय हमारे पास ग्रन्थका उदाहरण प्रस्तुत नहीं है। इसी समय अष्ट छापके प्रसिद्ध कवि नन्ददासने भी "विज्ञानार्थ प्रकाशिका" और "नासकेतुपुराणभाषा" नामक दो गद्यग्रन्थ व्रजभाषामें रचे।

विट्ठलेशके पुत्र गोकुल नाथजीने "चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवोंकी वार्त्ता" नामक दो परमोपकारी ग्रन्थ रचे, जिनमें शुद्ध व्रज-भाषाका प्रयोग हुआ है। इन ग्रन्थोंसे कई उपकारी साहित्यानुरागियोंके जीवनचरित्र जाननेमें बहुत बड़ी सहायता मिली है। उदाहरण ;—

"श्रीगुसाईंजीके सेवक एक पटेलकी वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नगरमें रहेतोहतो। वा पटेल वैष्णवके दो बेटा हते

और एक स्त्री हती और बडे बेटाकी दो स्त्री हती और छोटे बेटाकी एक स्त्री हती ऐसे सात मनुष्य श्रीगुसाईंजीके शरण आये और श्रीठाकुरजी पधराके सेवा करन लगे। तब छ जनेनको मन तो श्रीठाकुरजीमें लग्यो हतो और एक बड़े बेटाको मन लौकिकमें बहुत हतो। सो कछु भगवत संबंधी कार्य करतो नहीं हतो और लौकिकमें तद्रूप होय रह्यो हतो॥"

गोकुलनाथजीने अपने ग्रन्थमें कोई साहित्यविषयक चमत्कार लानेका प्रयत्न न करके रोजमर्राकी बोलचालका व्यवहार किया।

महाकवि केशवदासने "कविप्रियामें" यत्र-तत्र कुछ गद्य लिखा है, परन्तु इनकी गणना गद्यलेखकोंमें नहीं होसकती। महात्मा नाभादासजीका रचनाकाल संवत् १६५७ के लगभग है। इन्होंने पद्यग्रन्थोंके अतिरिक्त ५६ पृष्ठोंका "अष्टयाम" नामक एक गद्य-ग्रंथ भी रचा, जो महाराजा छत्रपुरके पुस्तलयमें है। उदाहरण ;—

"तब श्रीमहाराजकुमार प्रथम वशिष्ठ महाराजके चरन छुइ प्रनाम करत भये। फिरि अपर वृद्धसमाज तिनको प्रनाम करत भये।"

बनारसीदास जैनका कविताकाल भी इसी समय है। इन्होंने बहुत से पद्यग्रन्थ रचे जिनमें यत्रतत्र कुछ भाग गद्यका भी है। उदाहरण ;—

"सम्यगदृष्टी कहा सो सुनो। संशय विमोह विभ्रम ए तीनि भाव जामें नांही सो सम्यगदृष्टी।"

संवत् १६८० में जटमल कविने "गोरा बादलकी कथा" नामक एक ग्रन्थ रचा, जिसमें खड़ी बोलीका प्राधान्य है। यह दूसरा ग्रन्थ है, जिसमें खड़ी बोलीसे मिलती हुई गद्यभाषाका प्रयोग हुआ है और छन्द भी इसी भाषाके हैं। इनको खड़ी बोलीका द्वितीय गद्यलेखक समझना चाहिये। उदाहरण ;—

"श्रीराम प्रसन्न होये। श्रीगनेसायनमः। लच्मीकांत। हे वात कोसा चितौड़ गड़के गोरा बादल हुवा है जीनकी वार्ताकी कीताब हींदवीमें बनाकर तयार करी है॥ सुक संपतदायक सकल सीद वुंद सहेत गनेस। वीगण वीजर लावीन सो वे लोनुज परमेस॥१॥ दूहा॥ जगमलवाणी सर सरस कहता सरस वरवंद। चइवाणा कुल उवधरो हुवा जुवा चावंद॥२॥ गोरेकी आवरत आवेसा वचन सुनकर आपने खावंद-की पगड़ी हाथमें लेकर वाहा सती हुई सो सीवपुरमें जाकर वाहा दोनो मेले हुवे॥ गोराबादलकी क़था गुरुके वस सरस्वतीके मेहरवानगीसे पुरन भई तीस वास्ते गुरुकूं सरस्वतीकूं नमस्कार करता हुं। ये कथा सोल से अस्सीके सालमें फागुन सुदी पूनमके रोज बनाई। ये कथामे दो रस हे वीरारस व सीनगार रस है सो कथा। मोरछड़ो नाव गावका रहनेवाला सर जगहा उस गांवके लोग भोहोत सुकी हे घरघरमें आनन्द होता है कोई घरमें फकीर दीखता नहीं। उस जग आलीषान बावा राजहै। मसीह वाका लड़काहै सो सव पटानोंमें सरदार है। जयेसे तारोंमें चन्द्रमा है आयसा वो है। धरमसी

नांवका वेतलीनका वेटा जटमल नाव कवेसरने ये कथा सवल गावमें पुरन करी।"

इस ग्रन्थका आकार १००० श्लोकोंके बराबर होगा।

महात्मा तुलसीदासजीने गद्यमें एक फैसलनामा लिखा, जो महाराज बनारसके पुस्तकालयमें वर्त्तमान है। इसकी भाषा साधारण बोलचालकी है। यथा;—

"मौजे भदेनीमह अंस पांच तेहिमह अंस दुइ आनन्दराम तथा लहरतारा सगरेउ तथा छितुपुरा अंस टोड़रमलुक तथा मयपुरा अंस टोड़रमलकी हीलहुज्जती नाख्ती।"

महाकवि चिंतामणि तेवारीका रचनाकाल १६६० के लगभग: है। आपने भी रीतिग्रन्थमें कुछ गद्य लिखा है।

संवत् १७२७में प्रसिद्ध कवि कुलपति मिश्र ने "रसरहस्य" नामक रीतिका ग्रन्थ रचा। इसमें भी यत्रतत्र गद्यका प्रयोग हुआ है।

महाकवि देवजीका जन्म संवत् १७३० में हुआ था। इनका रचनाकाल संवत् १७४६ से १८०४ पर्य्यन्त समझ पड़ता है। इन्होंने पद्यके अनेकानेक ग्रन्थ रचे और गद्यके उदाहरणार्थ "शब्दरसायन" में एक वचनिका कही, जिस एक वाक्यमें ही अनेक प्रकारके गद्यसम्बन्धी चमत्कार देख पड़ते हैं। उदाहरण,—

"महाराज राजाधिराज व्रजजनसमाजविराजमान चतुर्दशभुवनविराज वेदविधिविद्यासामग्रीसम्राज श्रीकृष्णदेव देवाधिदेव देवकीनंदन जदुदेव यशोदानंदहृदयानंद कंसादिनिकंदन वंसावतंस अंसावतारसिरोमणि विष्टपत्रयनिविष्टगरिष्टपद त्रिविक्रमण जगत्कारण भ्रमणनिवारण मायामयविभ्रमण सुररिषिसखासंगमन राधिकारमण सेवकवरदायक गोपीगोपकुलसुखदायक गोपालबालमंडलीनायक अघघायक गोवर्धनधरण महेन्द्रमोहापहरण दीनजनसज्जनसरण ब्रह्मविस्मयविस्तरण परब्रह्म जगज्जन्ममरणदु:खसंहरण अधमोद्धरण विश्वंभरण विमलजस: कलिमलविनासन गरुड़ासन कमलनयन चरणकमलजलत्रिलोकीपावन श्रीवृन्दावनविहरण जयजय।"

सूरति मिश्रका रचनाकाल संवत् १७६७ के इधर उधर है। इन्होंने व्रजभाषागद्यमें बैतालपचीसी लिखी, तथा कुछ ग्रन्थोंपर टीकाएं गद्य एवं पद्यमें कीं। उदाहरण;—

"सीस फूल सोहाग अरु बेंदाभाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोनेके कुसुम तिनपर पैर धरि आए हैं।"

कालपीवाले श्रीपति कविका समय सं० १७७७ है। आपने भी रीतिग्रन्थमें यत्रतत्र व्रजभाषागद्य लिखा है। यथा—"यामें 'अस' आहि अंतर वेद भाषा।"

दासजीका रचना काल संवत् १७८६से चलता है। इन्होंने काव्यनिर्णयमें कुछ तिलक गद्यव्रजभाषामें किये हैं। यथा;—

"मधु छुयेते त्वचाको सुख होय पीवेते जीवको बोल सुनेते कानोंको देखेते दृगनको सुगन्धते नाकको सुख होय यों पांचों इन्द्रियनको दुख दूरि होतु है।"

दासजीके समकालीन वंसीधर कविने "भाषाभूषणपर" एक उत्कृष्ट टीका रची।

इसमें आपने अलंकारोंके स्वरूप व्रजभाषा-गद्यमें भलीभांति दरसा दिये हैं। यथा,—

"चोरोंको गुरु मीठो ऐसो उपखानो प्रसिद्ध है। तामांझ सठ नायक प्रति मानिनी नायका-को उपालंभ यह अर्थान्तर ठहरायो अथवा स्वैरिनीसों सखीको परिहास॥"

प्रसिद्ध कवि सोमनाथने संवत् १७८४ में "रसपीयूषनीधि" नामक रीतिग्रन्थ रचा। इसमें आपने स्थानस्थानपर गद्यद्वारा बहुतसे काव्यांग समझाये हैं। रीतिग्रन्थके लेखकोंमें इन्होंने सबसे अधिक गद्यका प्रयोग किया है। उदाहरण ;—

"द्वै भेद अविवंछिति वाच्यध्वनिके अर्थान्तर संक्रमित और अत्यंत तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि और एक भेद असंलक्ष्यक्रमको औ संलक्ष्यक्रम व्यंगिध्वनि द्वै भेद सब्दार्थव्यंगिके और द्वादस भेद अर्थरूपव्यंगिध्वनिको और एक भेद सब्दार्थ मूलव्यंगिध्वनिको सब अष्टादस भेद ध्वनिके भए।"

संवत् १८००में ललितकिशोरी तथा ललितमाधुरीने मिलकर एक गद्यग्रंथ रचा। यह व्रजभाषामें है। यथा,—

"मलय गिरिको समस्त वन वाकी पवन-सों चन्दन ह्वै जाय वाके कछू इच्छा नाहीं।"

अनन्तर १८१०के लगभग किसी अज्ञात कविने "चकत्ताकी पातस्याहीकी परम्परा" नामक एक १०० पृष्ठोंका गद्यग्रन्थ खड़ी बोलीमें रचा। इसमें मुगलबादशाहों और उनकी राज्यपरिपाटीका कुछ वर्णन है। इसके पीछे प्राय: ५० वर्षतक किसी गद्यलेखकका पता अबतक नहीं लगा है और १८६० वाले लल्लूलाल तथा सदलमिश्र ही प्रसिद्ध गद्यलेखक मिलते हैं।

अत: इससे पूर्वका समय हिन्दीगद्यके लिये प्रारम्भिक काल कहा जा सकता है इसमें एक तो कोई भारी गद्यलेखक हुआ ही नहीं और दूसरे विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, सोमनाथ, जटमल आदि थोड़े ही कवियों-को छोड़ किसीने उसे प्रधानता नहीं दी। महात्मा गोरखनाथजीकी गद्यरचना सबल तथा भावपूर्ण होनेपर भी बहुत थोड़ी है और गोकुलनाथ एवं जटमलमें साहित्यका चमत्कार नहीं। महात्मा विट्ठलनाथ ही ऐसे लेखक रह जाते हैं, जिन्होंने शिष्ट गद्यमें रचनाका प्रयत्न किया, परन्तु इनका भी ग्रंथ छोटा है। सूरति मिश्रकी बैताल-पचीसीका उत्कृष्ट होना अनुमानसिद्ध है, पर वह हमारे देखनेमें नहीं आयी। महात्मा तुलसीदास, देव, बनारसीदास आदिको गद्यलेखक कहना ही नहीं फबता। क्योंकि इन्होंने बहुत ही कम गद्य लिखा है और वह भी केवल प्रसङ्गवश। इस समय विष्णुदास तथा जटमलने खड़ी बोलीका सूत्रपात अवश्य किया, परन्तु सब प्रकारसे व्रजभाषा-का ही प्राधान्य रहा। गद्यसम्बन्धी सद्गुणों-की उन्नति इस लम्बे समयमें बिलकुल नहीं हुई। उक्त लेखकोंमेंसे केवल गोकुलनाथ, विष्णुदास, ललितकिशोरी, तथा माधुरीने पद्यकी ओर ध्यान नहीं दिया और जटमल-ने भी उसका आदर नहीं किया, शेष लोगोंने पद्यकी ही प्रधानता रक्खी।

संवत् १८६० से १८२४ पर्य्यंत गद्यका दूसरा काल समझना चाहिये। इसमें ब्रज-भाषाके मेलसे आरम्भ करके गद्यने धीरे-धीरे बड़ेबड़े लेखकोंके सहारे वह गौरव प्राप्त किया, जिसने उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदिकी प्यारी भाषा बनाकर वर्त्तमान समयके उच्चाशयपूर्ण अनेकानेक लोकोपकारक विषयोंके यथोचित व्यक्त करनेका सामर्थ्य प्रदान किया। इस सुन्दर समयमें लल्लूलाल, सदलमिश्र, जानकीप्रसाद, सरदार, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानन्द आदि धुरन्धर लेखकोंने गद्य-हिन्दीको गौरवान्वित किया।

लल्लूलाल आगरानिवासी ब्राह्मण थे। इन्होंने संवत् १८६० में अंग्रेजी शिक्षा-विभागके आज्ञानुसार कई उत्तम गद्यग्रन्थ लिखे, जिनमें "प्रेमसागर" प्रधान है। आपने खड़ी बोली और ब्रजभाषाका मिश्रण करके एक नवीन गद्यशैली चलाई, जिसका तत्कालीन शिक्षाविभागने सम्मान किया। आपने "लालचन्द्रिका" नामक विहारीसतसईकी अच्छी टीका बनाई। इनकी भाषाका नमूना इस प्रकार है ;—

"महाराज इसी ढबकी सभाके बीच खड़े हो ब्राह्मणने रोरो बहुतसी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला। निदान श्रीकृष्णचन्द्रके पास बैठा सुनसुन घबड़ाकर अर्जुन बोला कि, हे देवता तू किसके आगे यह बात कहै है और क्यों इतना खेद करे है। इस सभामें कोई धनुर्धर नहीं जो तेरा दुख दूर करे आज कालके राजा आपकार्यी हैं परदुःखनिवारण नहीं जो प्रजाको सुख दें और गौब्राह्मणकी रक्षा करें। ऐसे सुनाय अर्जुनने पुनि ब्राह्मणसे कहा कि, देवता अब तुम जाय अपने घर निश्चिन्त हो बैठो। जब तुम्हारे लड़का होनेका दिन आवै,तब तुम मेरे पास आइयो। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा और लड़केको न मरने दूंगा।"

सदलमिश्रने "नासकेतोपाख्यान" नामक ग्रन्थ इसी संवत्में शिक्षाविभागके आज्ञानुसार रचा। ग्रंथ प्रौढतर भाषामें लिखा गया और इसमें खड़ी बोलीका अंश ब्रजभाषासे अधिक है। इस कविने गद्यके साथ साहित्यसौंदर्यका अच्छा चमत्कार दिखाया है। "नासकेतोपाख्यान" एक छोटा सा ग्रंथ होनेपर भी बहुत प्रशंसनीय है। इसका सामना इसके समकालीन तथा पूर्वकालका कोई भी हिन्दीगद्यग्रंथ नहीं कर सकता। उदाहरण ;—

"कुंडमें क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमलके फूलोंपर भौंरे गूंज रहे थे तिसपर हंस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीरतीर सोहावन शब्द बोलते, आसपासके गाछोंपर कुहकुह कोकिलें कुहुक रहे थे, जैसा वसंत ऋतुका घर ही होय।"

पण्डित जानकीप्रसादने संवत् १८७४ में "रामचद्रिका" नामका एक प्रशंसनीय तथा भावपूर्ण तिलक ब्रजभाषामें निर्माण किया, जिसमें इन्होंने एकएक छन्दपर पांचपांच छःछः पृष्ठोंतक अर्थ लिखे हैं और विविध भावोंके व्यक्त करनेका अच्छा प्रयत्न किया है। परन्तु काव्यांगोंके दिखलानेका कुछ भी प्रयत्न इसमें नहीं किया गया। कुल

मिलाकर टीका प्रशंसनीय है। उदाहरण :—

"बालक जैसे पगसों दाबि पंक कहे कीचको पेलिके पतालको पठावत है तैसे ये (गनेसजी) कलुष जे पाप हैं तिनको पठावत हैं। इहां गजराजको त्याग करि बालकसम यासों कह्यो पद्मिनीपत्रादि तोरनमें बालकका उत्साह रहत है तैसे गणेशजूको विपत्यादि विदारणमें बड़ो उत्साह रहत है कौतुक ही विदारत हैं॥"

प्रतापसाह कवि इसी समयमें हुआ। उसने भी "व्यंग्यार्थकौमुदीमें" यत्रतत्र गद्यका प्रयोग किया है। यथा ;—

"इहां नीति अनीति इन शब्दनते विरोध तहां नीति अरु अनीति लेना तेहिविषे चाव यह अर्थ विरोधतें विरोधाभास अलंकार व्यंग्य।"

संवत् १८८४ गोस्वामी तुलसीदासके प्रसिद्ध भक्त और उनपर अच्छे अनुसन्धानकर्त्ता लाला छक्कनलालका समय है। आप भी गद्यलेखक थे।

सरदार कविका रचनाकाल संवत् १९०२ के लगभग है। इन्होंने सूरके दृष्टकूटोंपर एक बहुत ही सुन्दर टीका बनाई, जिसमें कूटोंका अर्थ बड़े परिश्रमसे लिखा है। इसके अतिरिक्त "कविप्रिया" तथा "रसिकप्रिया"की टीकाएं भी उत्कृष्ट तथा उपयोगी हुई हैं। इनमें काव्यांगोंका भी अच्छा वर्णन है। उदाहरण ;—

"या रसिकप्रियाके पढ़े रतिमति अति बढ़ै और सब रस विरस कहा नव रस तिनकी रीति जाने और स्वारथ कहा याके पढ़े चातुर्यता लहै तब सब राजा प्रजाको बल्लभ होय या भांति ते स्वारथ लहै और श्रीकृष्णराधाको वर्णन है याते तिनके ध्यानको परमारथ लहै याते रसिकप्रियाकी प्रीतिते दोऊ बातें सिद्ध हो ही॥"

सरदार आदिके अतिरिक्त रामगुलाम, बेनीमाधव, आदि अनुसन्धानकर्त्ता और टीकाकार भी बहुतसे हो गये हैं, जिन्होंने प्रधानतया व्रजभाषागद्यका प्रयोग किया है, परन्तु एक प्रकारसे ऐसे लोग गद्यकाव्यरचयिता नहीं कहे जा सकते।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दका रचनाकाल संवत् १९११ के इधर-उधर है। आप सरकारी शिक्षाविभागके उच्चपदाधिकारी थे। आपने अनेकानेक पाठ्य पुस्तकें छात्रोंके लाभार्थ बनाईं तथा संकलित कीं। आपने हिन्दीमें खिचड़ी भाषाका प्रयोग समुचित माना। इसमें उर्दू एवं फारसीके शब्दोंका बेधड़क प्रयोग बहुतायतसे होता था। राजा साहबकी हिन्दी वर्त्तमान गद्यसे इतना ही प्रधान अंतर रखती थी। इनके साथ व्रजभाषाका संपर्क गद्यसे बिल्कुल उठ गया और हिंदीगद्यने खड़ी बोलीको दोनों हाथोंसे अपनाया। व्रजभाषा रुचिर होनेपर भी एक देशीयमात्र भाषा है। उसका प्रयोग सभी स्थानोंपर होना न तो स्वाभाविक है और न उचित। कोई कारण नहीं कि, व्रजमण्डलसे इतर प्रान्तोंके निवासी अपनी भाषाओंका आदर न करके व्रजभाषाकी ओर झुकें। गद्यसे विभिन्नता दूर करनेके लिये यह भी

आवश्यक है, कि, पृथक् पृथक् प्रान्तोंके निवासी किसी एक ऐसी भाषाका प्रयोग करें, जो सब कहींकी भाषा कही जा सके और हो भी। अनेकानेक प्रान्तोंकी ग्राम्य भाषाएं तो पृथक् हैं, परन्तु हिन्दीके प्रायः सभी प्रान्तोंमें नागर भाषा एक ही है। इसीका नाम खड़ी बोली है, जिसके गद्यमें अब सर्वत्र प्रचार है और पद्यमें भी सत्कार दिनोंदिन बढ़ता हुआ देख पड़ता है। शुद्ध खड़ी बोलीके प्रथम लेखक राजा शिवप्रसाद ही हैं। उदाहरण ;—

"वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा महाराज भोजका नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्त्ति तो सारे जगमें व्याप रही है। बड़ेबड़े महिपाल उसका नाम सुनतेही कांप उठते थे और बड़े बड़े भूपति उसके पांवपर अपना सिर नवाते सेना उसकी समुद्रकी तरंगोंका नमूना और खजाना उसका सोने चांदी और रत्नोंकी खानिसे दूना उसके दानने राजा करणको लोगोंके जीसे भुलाया और उसके न्यायने विक्रमको भी लजाया कोई इसके राजभरमें भूखा न सोता और न कोई उघाड़ा रहने पाता जो सत्तू मांगने आता उसे मोतीचूर मिलता और जो गजी चाहता उसे मलमल दी जाती पैसेकी जगह लोगोंको अशरफियां बांटता और मेहकी तरह भिखारियोंपर मोती बरसाता॥"

राजा लक्ष्मणसिंहका रचनाकाल १८१७ के लगभग था। आपने कालिदासकृत रघुवंशका गद्यमें और शकुन्तलाका गद्यपद्यमें अनुवाद किया। आपकी पुस्तकोंका मान सरकारमें खूब हुआ। राजा शिवप्रसादकी भांति आपने भी शुद्ध खड़ी बोलीका प्रयोग गद्यमें किया, परन्तु उसमें उर्दू एवं फारसी शब्दोंको आदर न देकर संस्कृतका विशेष मान रक्खा। आपकी भाषा राजा शिवप्रसादवाली भाषासे श्रेष्ठतर एवं शुद्धतर है। आपने अनुवादमात्र किया और अपनी रचनाशक्ति एवं मस्तिष्कसे बहुत अधिक काम नहीं लिया, परन्तु अपने समयके आप एक सुलेखक एवं सुकवि थे। जिस प्रकारके ग्रंथ आपने रचे वैसे उस समय भाषामें कम पाये जाते थे। आप सरकारके छापापात्र भी थे। इन कारणोंसे आपकी ख्याति हिन्दीलेखकोंमें बहुत अधिक हुई। रचना भी आप प्रशंसनीय करते थे। उदाहरण ;—

"महाराज जब मैं इस करसायलपर दृष्टि करता हूं और फिर आपको धनुष चढ़ाये देखता हूं तो साक्षात् ऐसा ध्यान बंधता है मानो पिनाक संधान किये शिवजी शूकरके पीछे जाते हैं॥

इस मृगने हमको बहुत थकाया है देखो कभी सिर झुकाये रथको फिरफिर देखता चौकड़ी भरता है कभी तीर लगनेके डरसे सिमटता है अब देखो हांफता हुवा अधखुले मुखसे घास खानेको ठिठका है। फिर देखो कैसी छलांग भरी है कि धरतीसे ऊपर ही दिखाई देता है। देखो अब इतने वेगसे जाता है कि दिखाई भी सहज नहीं पड़ता॥"

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीका रचनाकाल सं १९२० के पास है। आप प्रसिद्ध आर्य्यसमाजके प्रवर्त्तक और हिन्दू धर्म्मके सुधारक थे। अन्य बड़े बड़े धर्मोपदेशकोंकी भांति आपने भी धर्म्मशिक्षा लोकप्रचलित भाषामें ही दी और इसी लिये स्वयं गुजराती ब्राह्मण होनेपर भी हिन्दीका ही, उसे लोकमान्य समझकर, समादर किया। उपदेशोंके अतिरिक्त आपने अपने धर्म्मग्रंथ इसी भाषामें लिखे और समाजके नियमोंमें हिन्दीकी उन्नति भी स्थिर की। यह नियम आर्य्यसमाजियों-द्वारा हिन्दीगौरवका एक बड़ा कारण हुआ। हिन्दीगद्यके उन्नायकोंमें स्वामीजी एक प्रधान पुरुष थे। आप खड़ी बोलीका प्रयोग करते थे, जो शुद्ध और सरल होती थी। उदाहरण ;—

"राजा भोजके राज्यमें और समीप ऐसे शिल्पी लोग थे कि, जिन्होंने घोड़के आकारका एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि, जो एक कच्ची घड़ीमें ग्यारह कोस और एक घण्टेमें साढ़े सत्ताइस कोस जाता था वह भूमि और अन्तरिक्षमें भी चलता था और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि, बिना मनुष्यके चलाए कलायन्त्रके बलसे नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था जो ये दोनों पदार्थ आजतक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमानमें न चढ़ जाते।"

इन उपर्युक्त उदाहरणोंसे विदित होगा कि, हिन्दीगद्य सदल मिश्रके समयसे बराबर उन्नति करता गया। यहांतक कि, स्वामीजीके समयमें वह वर्त्तमान गद्यसे बिल्कुल मिल सा गया। स्वामीजी चन्द्र-बिन्दुका प्रयोग प्राय: नहीं करते थे और विराम चिन्होंका स्वल्प व्यवहार आपके लेखोंमें है। आपने शुद्ध संस्कृतके शब्दोंका व्यवहार अपने पहिलेवाले लेखकोंसे कुछ अधिक किया है, परन्तु फिर भी पूर्वोक्त लेखमें 'बल' न लिखकर आपने "बल" लिखा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीके पीछे वर्त्तमान गद्यका समय आता है। संवत् १९२५से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रका रचनाकाल प्रारंभ होता है। आपने गद्यपद्य तथा नाटक विभागोंकी बहुत अच्छी पूर्त्ति की। एक व्यक्तिसे हिन्दीको इतना भारी लाभ पहुंचाहै और पहुंचनेकी आशा है कि, यह महाशय वर्त्तमान हिन्दीके पिता कहे जा सकते हैं। भारतेन्दुने शुद्ध खड़ी बोलीका प्रयोग किया और उसमें संस्कृत शब्दोंका यथोचित व्यवहार रहा, न स्वल्प और न अधिक। आपकी भाषा ऐसी अच्छी है कि, साधारण मनुष्य उसे भली भांति समझ सकता है। गद्यमें आप साहित्यस्वादके देनेमें खूब समर्थ हुए हैं। बहुत कम लेखक ऐसा समुज्वल एवं चटकीला गद्य लिख सके हैं। कुछ लोग सहजसे सहज गद्य लिखना ही उत्तमताकी सीमा समझते हैं और अनेक महाशय क्रिया आदि दो-चार शब्दोंको छोड़कर कठिनसे कठिन संस्कृत शब्दों ही द्वारा हिन्दीवाक्योंको कलेवरपूर्त्ति करना चाहते हैं। साधारण-जनसमुदायके लिये सुगम भाषाका प्रयोग

होना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु ऊंचे दरजेकी भाषा भी छोड़ी नहीं जा सकती है। फिर भी इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि, संस्कृतशब्दके बाहुल्यसे ही भाषाकी उत्कृष्टता सम्पादित नहीं हो सकती। साहित्यका मुख्य काम अलौकिकानन्द-प्रदान है, न कठिन शब्दसंकलन। जिस भाषामें रसोत्पादनशक्ति विशेष होगी, वह पूजनीय मानी जायगी। भारतेन्दुकी गद्य-रचनामें यह गुण पाया जाता है। उदाहरण;—

"सुख तो हिन्दुस्थानमें तीनहीने किया, एक मुहम्मदशाहने दूसरे वाजिदअलीशाहने तीसरे हमारे महाराजने। मुहम्मदशाहके जमानेमें नादिरशाही हुई। वाजिदअलीसे लखनऊ ही छूटा, अब देखें इनकी कौन गति होती है। इसका तो यही फल है, फिर कौन इस रङ्गमें नहीं है, बड़े बड़े ऋषि मुनी राजा महाराज नये पुराने सभी तो इसमें फंसे हैं। अहा! स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है। यह तो कालके अर्थमें यत्न हुआ। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? इसी यंत्रके अनुष्ठान का न यह फल हुआ कि सिरपर इतनी भारी जवाबदेही आय पड़ी। किसके किसके ? किसके बल हम कूदते हैं ? अरे महाराजके ? क्या हुआ ? (ऊपर देखकर) क्या कहा तुमको क्या नहीं मालूम ? हमको इहांतक तो मालूम है कि, पहिले एक कमीसन आया था और फिर कुछ आयाके आया-जाया की बड़बड़ सुनी थी छि: छि: स्त्री ऐसी ही वस्तु उसपर भी कुमारी। बिजलीकी चमका पचड़! स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया (ऊपरदेखकर) क्या कहा "गया भी ऐसा कि फिर न बहुरैगा।" अरे कौन कौन ? क्या कहा ? वही जिसका सबेरेसे तुम पचड़ा गा रहे हो। हाय। हाय। महाराज। अरे क्या हुये ? गद्दीसे उतारे गये ? हाय! महा अनर्थ हुआ।"

पूर्वोक्त उदाहरणसे ज्ञात होगा कि, भारतेन्दुजी साधारण शब्दोंहीमें पूरा चमत्कार लाते थे। इस खड़ी बोलीमें केवल "आय पड़ी"में मिश्रण है अन्यत्र नहीं। आपने भी चन्द्रविन्दुकी ओर ध्यान न देकर विन्दु और चन्द्रविन्दु दोनोंके लिये विन्दु ही का प्रयोग किया है। उस समयतक स्यात् किसी भी लेखकका ध्यान इस ओर नहीं गया था। विरामचिन्होंका आप प्रयोग तो करते थे, परन्तु पूरे तौरपर नहीं। आपके लेखोंमें विरामचिन्ह सर्वत्र अंगरेजी नियमोंके अनुसार नहीं है, परन्तु अपनेसे पहिलेवाले लेखकोंकी अपेक्षा आपने बहुत अधिक विरामचिन्ह लिखे हैं। इनके व्यवहारसे अर्थ समझनेमें बहुत स्थानोंपर सुगमता होती है। परन्तु बिल्कुल अंगरेजी ढङ्गसे इनका लिखना हमें आवश्यक नहीं समझ पड़ता। अङ्गरेजीमें विरामचिन्होंका प्रयोग बहुत अधिकतासे होता है और अर्थ व्यक्त करनेमें उनकी सर्वत्र आवश्यकता नहीं होती। उन सबको हिन्दीमें प्रचलित करना अनावश्यक समझ पड़ता है। भारतेन्दुजी भी अंगरेजी भाषाके ज्ञाता थे, परन्तु फिर

भी उन्होंने अपने विरामचिन्होंको उसके अनुसार नहीं रखा। इससे उनका भी मत यही समझ पड़ता है। संस्कृत शब्दोंके व्यवहारमें आपने सर्वत्र शुद्ध रूप न लिखकर हिन्दीमें व्यवहृत रूप लिखे हैं। यथा ;— मुनी महाराज, वस्तु, वल इत्यादि। ये चार शब्द इसी छोटेसे लेखमें आये हैं। बहुत से लोगोंका मत है कि, पद्यमें तो हिन्दीके प्रचलित रूप लिखे जा सकते हैं, परन्तु गद्यमें शब्दोंके शुद्ध संस्कृत रूपोंके व्यवहार बाध्य हैं। भारतेन्दुजीका यह मत नहीं था। यही विचार भाषाके प्राचीन लेखकों-का भी था। महात्मा गोरखनाथ, नाभा-दास आदि लेखक संस्कृतके अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु उन्होंने गद्यमें भी शब्दोंके शुद्ध संस्कृत रूप न लिखकर भाषामें प्रचलित रूप लिखे हैं। हमारे विचारमें शब्दोंके ऐसे ही रूप लिखना चाहिये। कोई कारण नहीं है कि, हिन्दी संस्कृत या किसी अन्य भाषाकी ऐसी आसरेगीर समझी जावे कि, अपनेमें प्रचलित शब्दोंको छोड़कर अन्य भाषाओंके व्याकरणोंका मुंह ताके।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके पीछे हिन्दीमें बहुत से सुलेखक हुए, परन्तु उनका वर्णन इस लेखमें अप्रयुक्त है। क्योंकि वे किसी प्रकार प्राचीन गद्यलेखक नहीं कहे जा सकते। गद्यने अब बहुत अच्छी उन्नति कर ली है और वह दिनोंदिन करता जाता है। आशा है कि, प्रायः ५० वर्षके भीतर इसमें किसी भी उपयोगी विषयके ग्रन्थोंकी कमी न रहेगी। यद्यपि हिन्दी बहुत कालसे चल रही है और बड़े बड़े राजाओं महा राजाओंसे लेकर साधारण मनुष्योंतकने इस-पर सदैव पूरा ध्यान रखा है। यहांतक कि, इसका पद्यविभाग बहुत ही परिपूर्ण एवं पुष्ट है। तथापि हमारे प्राचीन लेखकोंने गद्यकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया। पद्यमें अलौकिकानन्ददायक विषयोंका बाहुल्य रहता है और गद्यमें लोकोपकारी विषयोंका। ऐसे विषयोंकी वृद्धि देशभक्ति एवं व्यवसायबाहुल्यसे होती है। दुर्भाग्य-वश भारतमें इन दोनों बातोंकी आपेक्षिक न्यूनता रही है। हमारे यहां महात्मा बुद्धदेवके समयसे दयाकी मात्रा बहुत अधिक रही। यह एक बहुत अच्छा गुण है, परन्तु किसी भी भावके उचितसे बहुत अधिक बढ़जानेसे व्यक्तिगत उन्नति चाहे भले ही हो,परन्तु देशकी प्रायः अवनति हो जाती है। दयाके बढ़नेसे हमारे यहां प्रायः सभी विभागोंमें अकर्मण्यताकी वृद्धि हुई। घरमें यदि एक मनुष्यकी अच्छी आय हुई तो उसने दयावश औरोंका अपने ही सा मान किया और उन्हें सुख दिया। इस अच्छे व्यवहारका फल यह हुआ कि, वे आलसी हो गये। तीर्थ स्थानोंमें लाखों पंडे-पुरोहितादि दयाके कारण आलसी हैं। लाखों समर्थ भिक्षुक इसी कारणसे आलसी हैं और करोड़ों अन्याश्रयी लोग कुछ भी काम नहीं करते। इसी प्रकार धर्मभाव एवं सांसारिक अनित्यताके विचारने उचित-से अधिक बढ़कर भारतीय आलस्यको विशेष बलप्रदान किया। हमारे यहां स्वार्थ-

त्यागी महाशयोंने लौकिक उन्नतिपर ध्यान न देकर पारलौकिक विचारोंको प्रधानता दी। इन कारणोंसे हम ऐसी सांसारिक हीनावस्थामें आ पड़े कि, जहां योरोपने सैकड़ों सुखद कला यंत्रोंको बनाया वहां हम अपना बुद्धिवैभवस्वरूप एक भी यन्त्र नहीं दिखला सकते। सांसारिक उन्नतिके लिये जीवनहोड़(Struggle for existence) की बहुत बड़ी आवश्यकता है, जिसका मुख्य अभिप्राय यही है कि, यथासाध्य प्रायः प्रत्येक समर्थ मनुष्यको जीविकार्थ पूरा परिश्रम करना पड़े। इस बातकी वृद्धिसे देशमें धनोत्पादक बल बढ़ता है और तब विविध लोकोपकारी विषयोंपर ग्रन्थनिर्माणकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे गद्योन्नति होती है। जिन देशोंमें शिल्पव्यवसायकी उन्नति है, उनका गद्य अवनत दशामें नहीं रह सकता। इसी प्रकार देशभक्तिसे भी मनुष्य देशोन्नतिकी ओर ध्यान देगा। हमारे यहां ईश्वरभक्तिकी मात्रा तो बहुत प्रचुर रही, परन्तु देशभक्ति अनेक कारणोंसे बढ़ न सकी। देशभक्ति बहुधा व्यवसायवृद्धिसे बढ़ती है, यद्यपि कभी कभी अन्य कारणोंसे भी यह बढ़ी है। भारतने सदैवसे बाहरकी विजयिनी जातियोंका स्वागत किया है। जेता और विजित जातियोंका सम्मिश्रण मनुष्यसुलभ अभिमानके कारण कठिन है। यहां समय समयपर अनेकानेक विजयिनी जातियां बाहरसे आया की हैं। स्यात् इसी कारणसे भारतीय जातिभेद समयपर अत्यंत दृढ़ हो गया। यहांतक कि,प्रधान जातियोंके अंतर्गत अंतर्जातियांतक बहुत ही दृढ़ और एक दूसरीसे दृढ़ रूपसे पृथक् हैं। देशभक्तिके लिये संसारमें भ्रातृभावका होना बहुत आवश्यक है। जबतक हम किसीको अपना न समझेंगे, तबतक उसके गौरवसे प्रसन्न क्यों होंगे? जातिभेदमें स्वजातिसे प्रेम और दूसरेसे उदासीनताका होना परम स्वाभाविक है। इसीसे हमारे यहां भ्रातृभावकी कमी रही। भ्रातृभाव संसारभक्तिको बढ़ाता है, परन्तु उसमें जब व्यवसायप्रचुरता मिल जाती है, तब स्वदेशसे इतर मनुष्योंसे धनोत्पादनका भाव उठकर हमें उनसे अधिक व्यवसायी बननेको उत्साहित करता है। यही भाव व्यवसाय द्वारा देशभक्तिको बढ़ाता है, जिससे देशोन्नतिका विचार उठकर विविध लोकोपकारी विषयोंद्वारा गद्यभण्डार भरता है।

हमारे यहां दया तथा सांसारिक अनित्यताके भावोंने पूर्वोक्त गुणोंकी हानि करके गद्यको बड़ी ही शिथिलावस्थामें रक्खा। जब हमारे पद्यविभागका गद्यसे मिलान किया जाता है, तब गद्यको आपेक्षिक महान् अवनतिपर अवाक् रह जाना पड़ता है। अंगरेजी राज्यका पूरा प्रभाव हिन्दीभाषी देशोंपर पचास वर्षसे पड़ा है। इसीने जीवनहोड़की भारी वृद्धि करके हमारे गद्यविभागका परिपोषण किया है। परन्तु अभीतक औरोंकी अपेक्षा लोकोपकारी विषयोंमें हमारा ज्ञान इतना छोटा है कि, मानो हम कुछ जानते ही नहीं। इसीसे अबतक हमारे अच्छे गद्यलेखक भी अनुवादों तथा परावलम्बी ग्रन्थोंहीमें उलझे पड़े हैं और हम श्रेष्ठ ग्रन्थोंके अभावमें ऐसे लेखकोंकी

प्रशंसा भी करते हैं। हमारा गद्य परम प्राचीन होनेपर भी दुर्भाग्यवश अभीतक सब प्रकारसे आदिम कालहीमें है। ऐसे समयमें परावलम्बी ग्रन्थोंका बनना स्वाभाविक है, परन्तु आशा है कि,समयपर हमारा लेखकसमुदाय अपने मस्तिष्कसे कुछ अधिक काम लेना सीखेगा।

एवमस्तु ! एवमस्तु !! एवमस्तु !!!

---

(२)

हिन्दीसाहित्यपर वैष्णव धर्म्मका प्रभाव।

लेखक—

पण्डित जीवानन्द शर्म्मा काव्यतीर्थ।

भाषा और भावमें वैसा ही सम्बन्ध है जैसा शरीर और प्राणमें। जिस भांति विना प्राणका शरीर व्यर्थ है, उसी भांति भाव विना भाषा व्यर्थ है। भगवान् कालिदासने भाषा और अर्थका गौरीशङ्करका * सम्बन्ध माना है। भाषाकी धारा अपने प्रबल वेगसे उधर ही दौड़ती है, जिधर भावका झुकाव होता है। हृद्गत भाव जैसा होता है, भाषा भी उसी रूपमें ढल जाती है। क्योंकि भाषाकी सृष्टि ही हृद्गत भावको बाहर प्रकाश करनेके लिये है। नये नये शब्दोंकी सृष्टि इस भावके ही अनुसार होती है। संस्कृत भाषामें जितने यज्ञीय और आध्यात्मिक शब्द मिलेंगे उतने और भाषाओंमें नहीं मिलेंगे। वैसे ही आधुनिक उर्दू भाषामें जितने नजाकतके शब्द मिलेंगे, उतने और किसी भाषामें आप नहीं पासकते एवं देशहितैषिता और विज्ञान एवं कलाकौशलके शब्द जितने अंगरेजी आदि यूरोपीय भाषाओंमें मिल सकते हैं, उतने और भाषाओंमें नहीं। इस शब्दबाहुल्यका कारण उन उन भाषाओंके आचार्य्योंकी रुचि ही है।

जिस समय हिन्दीका जन्म हुआ उस समय भारतका दुःखित हृदय करुणामय परमेश्वरकी ओर झुका हुआ था। क्योंकि दुःखके समय सिवा परमेश्वरके और कुछ दृष्टिपथमें नहीं आता। साथ ही इसके उस समय पौराणिक भावसे भी भारत बड़े वेगसे प्लावित हो रहा था।

यद्यपि उस समय विदेशीय यवनोंके स्पर्शसे भारतभूमि कलुषित हो रही थी, यद्यपि भारतसंतानके शुद्ध चित्तपर चञ्चलताकी चिनगारियां चमक रही थीं, तथापि अपने सात्विक भावोंको भारत भूला न था। तबतक ऋषिसन्तानोंके मार्जित रुधिरमें सात्विक तेज दौड़ रहा था। यही कारण हुआ कि,हिन्दी जन्मसे ही वैष्णव धर्म्मसे विभूषित होने लगी।

मृतप्राय भारतमें यदि धर्म्मका अंश न रहता,तो न जाने कब न इन सहस्रों वर्षोंकी पराधीनतामें मिस्र और ग्रीस आदि देशोंकी भांति यह अपना रूप खो बैठता। पर धन्य है उन ऋषियोंका मस्तिष्क,जिसने पराधीनताके निगड़ बन्धनमें पड़े रहनेपर भी भारतको विचलित होने न दिया। भक्ति-

---

* वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

रसकी धारा इस भांति भारतमें बहानेकी युक्ति निकाली कि, आजतक दरिद्र भारतवासी दिनरातकी चिन्ताको कुछ देरके लिये अपने चित्तसे हटाकर भगवद्भक्तिरस पान करते हुए आनन्दको पा लेते हैं ।

भक्ति भगवत् प्रेमको कहते हैं। यह प्रेम परमेश्वरकी भांति सर्वव्यापक है। आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्त इसके सूत्रमें बंधे हैं। इसी सिद्धान्तको मनमें रखकर ऋषियोंने वैष्णवी उपासनाको जोरशोरसे चलाया।

और कार्य्योंके लिये हृदयका वेग एक ओरसे रोककर दूसरी ओर उसके अनुकूल झुकानेकी आवश्यकता होती है। पर प्रेमका अङ्कुर जमानेके लिये कुछ प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं। यही कारण है कि, लोगोंके हृदयको भक्तिरससे सींचनेके लिये संस्कृतमें जितने उपासनाके ग्रन्थ बने उतने विज्ञानादिके ग्रन्थ नहीं बने और अपनी प्यारी मा संस्कृतकी देखादेखी हिन्दीने भी उसी मार्गको पकड़ा। यदि छोटा भी ग्रन्थ बना तो वह भी "श्रीगणेशाय नमःसे" खाली न रहा। भास्कराचार्य्यने अपने गणितशास्त्रमें, अगस्त्य ऋषिने अपने खनिजशास्त्रमें, वैद्यकशास्त्रकारोंने अपने वैद्यक शास्त्रमें और कलाशास्त्रकारोंने अपने अपने कलाशास्त्रोंमेंभी भगवानकी वा अपने अपने उपास्यदेवकी स्तुतिसे खाली न रखा। पुराणोंकी तो मानो इसीलिये रचना ही हुई।

यद्यपि शास्त्रकारोंने उपास्य देव पांच माने हैं, यथा—विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य्य और गणेश। तथापि भारतमें विष्णु, शिव और शक्ति इन्हीं तीनों उपास्य देवोंके आजतक भी अधिक सितारे चमकते हैं। इनमें तमोगुणके लिये शक्ति, रजोगुणके लिये शिव और सत्वगुणके लिये विष्णु उपास्य देव माने जाते हैं। देशकालपात्रके अनुसार पूर्वदेशमें शक्ति उपासक, दक्षिण देशमें शिव उपासक,उत्तर देशमें शक्ति उपासक और भारतके पश्चिम प्रान्तमें विष्णु उपासक ही अधिक हुए। जलवायु भी इन उपासनाओंमें कारण हुई।

भारतके पश्चिम देशमें हिन्दीका जन्म हुआ। पश्चिमदेश सदासे विष्णुभक्त रहा और रहेगा। इस प्रदेशमें सात्विक पदार्थ ही विशेष गुणकारी होता है। इसीलिये अहिंसाको माननेवाले जैनियोंका मत इस देशमें खूब ही प्रचलित हुआ। सतनामी, दादूपन्थी इत्यादि अनेक हिंसाविरोधी मत इधर ही प्रचलित हुए।

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, जहां हिन्दीका जन्म है वह स्थान वैष्णवप्रधान देश है, तो क्यों न हिन्दीपर वैष्णव धर्मका प्रभाव पड़े।

यों तो यह कहना कठिन है कि, हिन्दीका जन्म किस संवत्में हुआ। पर यह निःशङ्क कहा जा सकता है कि, संवत् ८९० के पहले ही हिन्दीभाषाका जन्म भारतभूमिपर हो चुका था। क्योंकि हिन्दीभाषाके आदि आचार्य्य महाराज खुमान सिंह उक्त संवत्में वर्त्तमान थे। कहते हैं कि, उक्त महाराजके इष्ट देव हनुमानजीथे। पर उनका कोई ग्रन्थ न मिलनेके कारण न तो उनके वैष्णव होनेकी बातोंपर जोर ही दिया जा सकता और न खण्डन ही किया जा

सकता है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि, उस समय वैष्णव धर्मके सितारे जोरसे चमक रहे थे। कृष्ण और रामकी भक्ति जागरूक थी। इससे कहना पड़ता है कि, कदाचित् हमारे महाराज बहादुर भी वैष्णव हों।

महाराज खुमान सिंहके रासोके बाद दूसरा रासो हमारे चन्दवरदाईजीका है। आजकलके हिन्दीभाषाके ज्ञाता लोग इन्हींको आदि आचार्य्य मानते हैं। क्योंकि इस रासोके पहलेका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। अब चन्दबरदाईजीके हृद्गत भावको देखना है कि किस रङ्गका है। कवि चन्दवरदाई पक्के वैष्णव थे। ग्रन्थके मङ्गलाचरणसे कविके उपास्य देवका पता लगता है। उन्होंने "श्रीगणेशायनमः" में ही लक्ष्मीशकी बन्दना की है। यथा—

आदी देव प्रणम्य नम्य गुरयं
वानीय वन्दे पदं
सिष्टं धारन धारयं वसुमती,
लच्छीस सर्वाश्रयं
तंगुं तिष्ठति ईश दुष्ट दहनं,
सुर्नाथ सिद्धि श्रयं
थिरचर जङ्गम जीव चन्द नमतं,
सर्वेश वर्दाभयम् ॥

स्कन्द पुराणमें लिखा है कि, "विष्णावर्पिताखिलाचारः सहि वैष्णव उच्यते।" परन्तु नारद भगवान् कहते हैं कि, "वैष्णवमन्त्र दीक्षासंस्कृता वैष्णवा"। वैष्णव सम्प्रदायमें चार भेद हैं, विष्णुसम्प्रदाय, रामानुजसम्प्रदाय, मध्वसम्प्रदाय और वल्लभसम्प्रदाय।

यहां कविने गुरुजीको प्रणाम कर केवल लक्ष्मीश वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णुको स्मरणकर सृष्टिधारण दुष्टदमन इत्यादि वाक्योंसे साकार विष्णुकी उपासना स्पष्ट कर दी है। इसके अतिरिक्त दूरदेश द्वारका जाकर द्वारिकाधीशका वर्णन तथा छापका वर्णन करना तो और भी डङ्केकी चोट वैष्णव भाव सिद्ध कर रहा है।

जिनके नामसे ये सम्प्रदाय बने हैं वे ही क्रमशः उन उन सम्प्रदायोंके आचार्य्य हुए। उनमें विष्णु स्वामीने दिल्लीके किसी राजाके मन्त्रीके घर जन्म ग्रहण किया जो द्रविड़ देशके रहनेवाले थे। इन्होंने शाङ्कर मतका खण्डन किया है। इसलिये अनुमान किया जाता है कि, यह शंकर स्वामीके पीछे हुए। (सम्प्रदायप्रदीपमें लिखा है।)

रामानुज स्वामी भी द्राविड़ी थे। इनके पिताका नाम केशव और माताका नाम 'मति' था। इनके मतमें जीव और ईश्वर सदा भिन्न हैं। ईश्वर, जीव और माया तीनों ही त्रिकालमें असत्य नहीं हैं। इसके प्रमाणमें "द्वाविमौ सुपर्णौ सजुषौ सखायौ समानं वृक्षं परिषष्वजाते" इत्यादि अनेक वेदऋचाएं देते हैं। विस्तारभयसे बहुत प्रमाण नहीं दिये जाते। ये आहारशुद्धिसे सत्वशुद्धि मानते हैं। यथा,--"आहार शुद्धेः सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धा विमुक्तिरिति पक्के पच्यमाने वाऽन्ने दृष्टि दोषोऽभ्युपेयते।"

मध्वाचार्य्य गुजराती थे। इनका जन्म गुर्जर देशमें सं० ११९८ कार्त्तिक शुक्ल दशमीको हुआ।

कविने दशावतारोंका वर्णन खूब ही किया है। वीररसप्रधान रासोके होते हुए भी भूषण कविकी भांति लड़ाईमें बिना चोटीके शिरको कालीमैयाको नहीं सौंपा है। जहां रौद्ररसका वर्णन आया है, वहां कविने वीर हनुमानका स्मरण किया है। इन्होंने संवत् १२२५ से १२४९ तक रासोको तैयार कर दिया था।

यह दो प्रकारके तत्त्व मानते हैं। यथा, तत्त्वविवेकमें लिखा है—"स्वतन्त्रमस्वतन्त्रंच द्विविधं तत्त्वमिष्यते। स्वतन्त्रो भगवान् विष्णुर्निर्दोषोऽशेषसद्‌गुणः।" अर्थात् तत्त्व दो प्रकारके हैं—एक स्वतन्त्र और दूसरा परतन्त्र। स्वतन्त्र परमेश्वर हैं और परतन्त्र जीव है। इन्होंने परमेश्वर और जीव का सेव्यसेवकभावसंबंध माना है। अर्थात् ईश्वर सदा सेव्य है और जीव सदा सेवक। उचित रीतिसे भगवानकी सेवा करना ही जीवकी मुक्ति है। अद्वैतवादवालोंपर आप बड़ी युक्तिसे आक्रमण करते हैं। आप कहते हैं कि, यदि कोई प्रजा अपनेको राजा कहने लगी, तो उसका फल यही होगा कि, पकड़कर उसे राजा फांसी दिलवा देगा और जो राजाका दास होकर रहेगा उसके ऊपर राजा प्रसन्न होकर पुरस्कार देगा। इसलिये जीवको "अहंब्रह्मास्मि" कहना नहीं चाहिये। न तो सजा हो जायगी।

वल्लभसम्प्रदाय—यह विष्णुस्वामीके अनुयायी हैं। केवल भेद इतना ही है कि विष्णुस्वामी विष्णुको मानते हैं और वल्लभाचार्य्य गोलोकवासी भगवान् श्रीकृष्णको

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, हिन्दीके जन्मसे ही इसके पीछे वैष्णव पड़ गये, तो कब सम्भव होसकता है कि, दूसरे सम्प्रदाय वा समाजका विषय इसमें अधिक आ सकता।

चित्तपर वैष्णव भावकी प्रबलतासे दूसरे रसका वर्णन नहीं हुआ।

उचित तो यह था कि, उस समयका चित्र खैंचकर कविजन समाजको उठाते। जैसे भूषण कवि शिवाजीकी गिरती हुई हिम्मतको अपनी ओजस्विनी वीररसकी कवितासे फिर भी ऊंची उठा देते थे। उसी भांति और कविजन भी क्षत्रिय वीरोंको जगाते और भारतवर्षको फिर भी क्षत्रियोंके हाथमें समर्पण करा डालते, जैसा पहले था। पर ऐसा न कर चन्दवरदाईके बादके कवियोंने "अजगर करे न चाकरी पन्छी करे न काम, दासमलूका कह गये सबके दाता राम" के न्यायका अवलम्बन किया।

यदि वैष्णव धर्मपर ही कविता करनी थी, तो श्रीकृष्णभगवान और मर्य्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी वीरताकी झांकी अपनी कलमके बलसे दिखाकर सूर्य्य और

सर्वस्व मानते हैं। इनका जन्म आन्ध्रदेशमें संवत् १५३५की वैशाखशुक्लैकादशीको हुआ। यह तो ऐसे पक्के रसीले वैष्णव थे कि, सम्पूर्ण भागवतमें केवल दशमस्कन्ध ही पसन्द कर इसका अनुवाद इन्होंने पद्यमें कर डाला।

चन्द्रवंशी क्षत्रियोंकी ललकार कर जगाते। सो न हुआ। बस, केवल इन दोनों हिन्दूप्राण श्रीराम और श्रीकृष्णको मजनू बनाकर कविताके लटके सुनाने लगी।

उस समयके राजे महाराजे भी वैसे ही थे। उन्होंने भी वैसी ही कविताका आदर किया, जैसी उनकी प्रकृति थी। यह प्राकृतिक नियम है कि, जिसका जितना आदर होता है, उसकी उतनी ही वृद्धि होती है। इसी न्यायके अनुसार धड़ाधड़ उसी भावके ग्रंथ तैयार होने लगे जिनमें धर्मकी ओटमें संसारी मजा मिल सके।

चन्द बरदाईके बाद सं० १३४४ में एक भूपति कवि हुए हैं।

विष्णुभगवानके भक्त हमारे मोरध्वज हो गये हैं, जिन्होंने परोपकारके लिये अपने पुत्रको मारडालना स्वीकार किया था। वैष्णव महाराज हरिश्चन्द्र हो गये हैं, जिन्होंने अपनी सत्यप्रतिज्ञा भगवान्‌के हाथमें दी थी। वैष्णव हमारे महाराज दशरथ भी हो गये हैं, जिन्होंने भगवान् तथा सत्यके लिये प्राणतक दे डाले थे। तो क्या इनके चरित्रका चित्र कविजन खेंचते, तो कुछ बुरा था ? पर यहां तो संसारी विषयवासना नसनसमें भरी हुई थी। विचारे कविजन करें तो क्या ? उन्होंने उसी रास्तेको पकड़ा, जिस रास्ते सभी दौड़े हुए जा रहे थे वा उनका चित्त चञ्चलभावसे जा रहा था।

दुःखका विषय है कि, इसको हमें वैष्णव भावमें लेना होता है। हां, कुछ कवियोंने यथार्थमें प्रेमभक्तिकी शक्ति अपनी कवितामें भरकर गिरे हुए भारतको फिर भी उठा दिया था। मृत्युशय्यापर सोया हुआ भारत आज भी उसी कवितासञ्जीवनीसे प्राण धारण कर रहा है। न तो कब न अस्थिमात्रावशेष रह जाता। उनमें सूरदास, तुलसीदास, देवकवि, ग्वालकवि, नारायणदेव, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्ददास, स्वामी वल्लभाचार्य्य, श्रीहितहरिवंश, स्वामी रामानन्द, नानकशाह, केशवदास, पद्माकर, मीराबाई, खानखाना, रसखान, पठान सुलतान, बाबू हरिश्चन्द्र और नारायणस्वामी इत्यादि कवि बड़ी ही हृदयग्राहिणी तथा सरस कविता करनेवाले एवं नीचेको जातेहुए भारतके हृदयको ऊपर उठानेवाले हुए।

उनमें भी हमारे सूरदास, तुलसीदास तो अपने ढङ्गके एक ही हुए। इनकी भक्तिरससे भरी हुई कलम जिधर ही मुड़ती थी उधर ही दूसरी सृष्टि ला देती थी। इन्हीं दोनोंकी लेखनीका प्रभाव है कि, हिन्दीभाषापर वैष्णवधर्मका प्रभुत्व जम गया। न इनके जोड़का आजतक कोई कवि हुआ और न हिन्दी भाषाको दूसरे पथपर ले जानेकी उसे शक्ति हुई।

भाषाकी प्रबल गंगाधारा जिस समय समाज चैत्यग्रामको बहाती हुई कविलेखनीरूपी भगीरथके रथचक्रके पीछे चलती है तो या तो जह्नु जैसे कोई महात्मा उसे पी जाय (सत्यानाश कर दें) तब रुक सकती है, नहीं तो साक्षात् महादेव जैसे प्रबलशक्तिशाली पुरुष अपनी प्रबल कविताजटाजूटके बल दूसरे पथमें फेर दें, तो दूसरी ओर जा सकती है। अन्यथा

उस प्रबल वेगको रोकना टेढ़ी खीर है।

सं० १४५३में नारायणदेव जिन्होंने सत्य हरिश्चन्द्रकी कथा हिन्दीमें लिखी, तथा सं०१४५७में रामानन्दस्वामी जिनका रामानन्दी तिलक आज भी प्रसिद्ध है एवं सं० १५४०में गुरु नानकशाह हो चुके थे। वैष्णवधर्मकी हिन्दी भाषामें मानो इन महात्माओंने दृढ़ नीव डाल दी थी, कि इतनेहीमें इसी १५४० की पुण्य शताब्दीमें भक्तशिरोमणि तथा हिन्दीभाषाके उज्ज्वल चन्द्र श्रीसूरदासजीका जन्म हुआ।

और कवियोंने हिन्दीका जन्म दिया और उससे पोस पालकर कुछ सयानी की, तो सूरदासजीने इसे पोशाक और गहनेसे सजाया। और लोगोंने हिन्दीसे तोतली बोली बोलवाई, तो हमारे सूरदासजीने उससे स्पष्ट और पाण्डित्यकी बातें कहवा दीं। तबसे हिंदी दरबारमें आसन पाने लगी। इसी महात्माकी कृपासे अकबरशाहके दरबारमें हिंदीको इतना गौरव मिला कि, आजतक वह गौरव नहीं मिल सका।

इनकी कवितारूपी कटोरीमें भरी हुई कृष्णभक्तिरसको मुसलमान भी पीने लगे। राशि राशि मुसलमानोंने कृष्णभक्तिपर कलम तोड़ी। वह समय ऐसा कृष्णभक्तिका आया कि, कविताके नभमें सिवा कृष्णभगवान्के कोई दूसरा दीख ही नहीं पड़ता था। उस समय सूरदासजीने कृष्णभक्ति तथा कविताको सजनेके लिये अनेक गाथाएं गढन्त भी जोड़कर हिन्दीको और भी सजधज दिया। जैसे एक स्थानमें आपने यशोदामैयाको व्रत कराकर उनसे ब्राह्मण निमन्त्रण कराया है। निमन्त्रणमें आये हुए ब्राह्मणने कई बार रसोई बनाई और भोग लगाया। जभी वह भोग लगाने बैठता था, तभी न जाने कौन सभी रसोईको आकर चट कर जाता था। इस बातसे रुष्ट होकर यशोदाजी कहती हैं कि,—

पाण्डे नहि भोग लगावन पावे।
करि २ पाक जबै अरपत है
तब हि सबै छु जावे॥
इच्छा करि ब्राह्मण मैं न्योत्यौं
तू गोपाल खिझावे॥
वह अपनो ठाकुरहि जिमावत
तू ऐसो उठि धावे॥
जननी दोष देइ मति मोकहं
करि विधान बहु ध्यावे।
नैन मूंदि कर जोरि नाम लै
बारहिबार बुलावे॥
कह अन्तर क्यों होइ भक्तको
जो मेरे मन भावे।
सूरदास बलि हौं ताको जो
जन्म पाइ यश गावे॥

सूरदासजीकी कविताके चमक उठनेका एक और भी कारण हुआ। श्रीकृष्णभगवानकी भक्तिको प्रकाश करनेके लिये सुदूर पूर्वमें हमारे प्रातः स्मरणीय चैतन्यदेव सूर्य्य उदित हो चुके थे। फिर उसी शताब्दीमें दूसरा सूर्य्य श्री १०८ स्वामी वल्लभाचार्य्य दक्षिणदेशसे चलकर काशीधाममें आकर अपनी प्रखर किरणोंसे कृष्णभक्तिको और भी चमका दिया था। उसी समय हमारे सूरदासजीकी कविताने मानो कृष्णभक्तियमुनामें बाढ़ ला दी।

इसी शताब्दीमें हमारे हितहरिवंशजीका अवतार हुआ, जिनके पद सूरदासजीके उच्च-कोटिके पदोंसे टकराते हैं। यथा—

व्रजवनतरुनिकदम्ब मुकुटमणि
श्यामा आज बनी।
तरल तिलक ताटंक गण्डपर नासा जलज मनी
यौं राजत कबरी गूंथित कच कनक कंजबदनी।
चिकुर चन्द्रकनिबीच अधर विधु मानहु ग्रसत
मनी॥

इन पुण्यश्लोकोंकी कविताओंमें ऐसा रस आया कि, विधर्मी मुसलमानोंमें भी कितने ही बातबातमें श्रीकृष्ण भगवान वा श्रीरामचन्द्रजीका सुपना देखने लगे। रहीम हाथीको अपने मस्तकपर धूल उड़ाते देख कर उत्प्रेक्षा करते हैं कि—

धूल उड़ावत सीसपै।
कहु रहीम किहि काज॥
जिहि रज ऋषिपतनी तरी।
सोहि ढूढ़त गजराज॥

रसखान तो जन्मान्तरका भी निबटेरा भगवान कृष्णसे ही करने लगे। आप कहते हैं कि—

मानुष हों तो वही रसखान
बसौं नित गोकुल गोपके चारन।
जौं पशु हौं तो कहा वश मेरो
चरौं नित नन्दके धेनु मंझारन॥
पाहन हों तो वही गिरि कौ
जो किये व्रजछत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हों तो बसेर करौं नित
कूलकलिन्दी कदम्बकी डारन॥

जब कभी बीचमें अन्तर पड़ता है तो कुछ दशाका परिवर्तन हो भी जाता है, पर जब निरन्तर एकके बाद दूसरे एक ही रूपसे आते जाते, उसमें भी किसी प्रकारसे प्रतिभाशाली ही दशा आती गयी, तो कब सम्भव है कि, भाषाको दूसरी ओर देखनेके लिये तिलमात्र भी अवकाश मिल सके। अभी सूरदास और स्वामी हितहरिवंशके पदोंकी गूंज कानोंसे हटी नहीं थी कि, हमारे कविकुलचूड़ामणि श्रीगोस्वामी तुलसीदास इस भारतमें आ पहुंचे। अब तो हिन्दीभाषाराज्यमें वैष्णव धर्मराजाका पूर्ण प्रभुत्व जम गया। भला गोस्वामीकी कलमके आगे कौन सरस्वतीका लाल कलम उठा सकता था। इस प्रतिभाशाली सूर्यकी ज्योतिके सामने कौन टिमटिमाता हुआ ही अपनी ज्योति दिखा सकता। इनकी कलमने वैष्णवधर्मका ऐसा अड्डा हिन्दीमें जमाया कि, आजतक शिरतोड़ परिश्रम-करनेवाले भी इस अड्डेको नहीं हिला सके। इनकी कलम जिधर मुड़ती थी उधरही श्री-रामचन्द्रजीकी मूर्त्ति सामने आ जाती थी।

जनकके बगीचेमें जानेपर दूसरा कवि होता, तो कुछ प्राकृतिक दृश्य देखता। पर हमारे गुसाईंजी वहांपर भी अपने रामकी ही झांकी देखते हैं। इस भांति इस ब्राह्मणको राममूर्ति देखनेकी एक बीमारी सी हो गयी थी।

जब १५ वीं शताब्दी बीत गयी, १६ वीं शताब्दी पहुंची, तो उस समय कृष्णरस और रामरस दोनोंसे भारत पवित्र होने लगा। गोस्वामीजीकी भी कविता सूरदास-जीकी कविताकी भांति हवा सी भारतवर्षमें फैल गयी। अब जो ही कोई कुछ कविता करनेको कलम उठाता था वह इन पूर्व

कवियोंकी कविताकी ओर अपनी दृष्टि डाल लेता था।

कहते हैं, कि कवि बिना पूर्वकवियोंकी कविता पढ़े नहीं हो सकता। "कविता जाने हजारा उसका ही गुजारा।" बात भी ऐसी ही है। जिस विषयको लिखना होता है उस विषयके पूर्व आचार्य्योंकी रचना जान लेनी पड़ती है। बस, सूरदास और तुलसीदासजीके ढर्रे ही कवियोंने अपना पथ मान लिया। इसी परम्परासे हिन्दी साम्राज्यपर वैष्णवधर्मका अधिकार और भी दृढ़ हो गया।

अब तो इसी धर्मसे सम्बन्धवाले शब्दोंकी रचना भी धड़ाकेसे चल पड़ी। नमस्कारके स्थानपर राम राम, जै श्रीकृष्ण, जयगोपाल, जय यमुनामैयाकी, इत्यादि अनेक शब्दोंकी रचना हिन्दीसाहित्यमें होने लगी।

उस समय बहुत कवि तो मनुष्यविषयक कविता करना भी पाप समझने लगे। एक बार अकबरशाहके दरबारमें कविमण्डली बैठी थी। अपनी अपनी कविताके लच्छेदार लटके कविगण सुना रहे थे। वाह-वाही लेनेके लिये अपनी नयी उक्तियुक्तियां सुनायी जा रही थीं। इतनेहीमें अकबरशाह बादशाहने एक समस्या दे दी कि, "करो मिलि आस अकब्बरकी।" इसकी पूर्त्तिमें बादशाहको खुशामदी कवियोंने ईश्वरपरमेश्वरतक बना डाला। जब "त्वमर्कस्त्वं सोमः" समाप्त हुआ तब बादशाहने श्रीधरस्वामीकी ओर इङ्गित किया। श्रीधरस्वामीने जो पूर्त्ति की उसके सुननेसे मालूम हो जायगा कि, कवियोंकी कितनी निर्भीकता थी। उन्होंने झट कलम उठाकर यह लिख दिया कि—

"अबके सुलतान भये फुनियान जो
बांधत पाग अटब्बरकी।
नरकी नरकी कविता जो करै
तेहि काटहु जीह सो लब्बरकी॥
इक श्रीधर आस है श्रीधरकी
नहिं चास अहै कोउ बब्बरकी।
जिन्हें कोऊ न आस अहै जगमें
सो करो मिलि आस अकब्बरकी॥"

इस निर्भीकतासे जब समस्यापूर्त्ति हो चुकी, तो दरबारके लोग प्रतीक्षा करने लगे कि, अब जहांपनाहकी आज्ञा होती है कि, श्रीधरका शिर काट लिया जाय। पर वाह रे गुणग्राही अकबर, तू चाहे कितना ही क्यों न कूटनीतिसे भरा हो, चाहे कैसा ही क्यों न दुराचारी हो, पर तेरे समयमें जो हिन्दीभाषाका शृङ्गार हुआ वह किसीके समयमें न हुआ। बादशाहने श्रीधरजीको धन्यवाद दिया और उसी दिनसे श्रीधरजीको कविवरकी पदवी मिली। कहनेका तात्पर्य्य यह कि, जब दूसरोंके विषय कविगण कविता करना भी पाप समझते थे, तब दूसरा भाव हिन्दीभाषामें क्योंकर आता।

मलिक मुहम्मदकी "पद्मावत" बुरी नहीं है। हनुमानचलीसा और रामकलेवासे उसकी कविता किसी प्रकार नीची नहीं है। पर आज जितने हनुमानचलीसाकी चौपाइयोंको जाननेवाले तथा रामकलेवाके गानेवाले मिलेंगे, उतने तो दूर रहे उसके षोडशांश भी महम्मद साहबकी चौपाइयोंके जाननेवाले नहीं मिलेंगे।

यदि कुछ देरके लिये यह समझ लिया जाय कि, हमारी मातृभाषा हिन्दी रूपमें न होकर किसी और ही रूपमें रहती, तो भी लोगोंके हृदयमें ऐसा वैष्णवभाव घुसा हुआ था कि, उसमें भी वैष्णवधर्मका राज्य हो जाता।

पहले कह आये हैं कि, भाषाका प्राण भाव समझा जाता है और भावका भाषा शरीर समझा जाता है। जिस देहमें प्राणका जैसा संचार होगा, वह शरीर भी उसीके अनुसार स्थिर रह सकता है। अबतक भी हिन्दी भाषाका प्राण वैष्णव धर्म ही समझा गया है। जिस दिन वैष्णव धर्म हिन्दीसे उठ जायगा, संभव है कि, उसी दिन हिन्दी भाषाका प्राचीनत्व भी लुप्त हो जायगा। क्योंकि इसके दो नायक ऐसे मिल गये हैं कि, यदि ढूंढ़कर देखा जाय, तो कदाचित ही देशान्तरकी कोई भाषा होगी जिसको ऐसे नायक पानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। न केवल हिन्दीहीमें, बल्कि भारतकी जितनी बढ़ीचढ़ी भाषाएं हैं, सबोंमें वैष्णवताकी शक्ति प्रबल रूपसे है। आजतक उन भाषाओंमें वैष्णव कविका जितना आदर होताहै, उतना किसी और कविका आदर नहीं होता। कविवर तुकाराम महाराष्ट्रीके और चण्डीदास बङ्गभाषाके और कविवर विद्यापति ठाकुर मैथिल-भाषाके कविगण यदि कृष्णभक्तिसे सनी कविता न करते तो इतने आदरके भागी न होते।

रासो अनेक बने। जैसे—खुमाणरासा, हमीररासा, राणारासा, रायमलरासा। पर पृथ्वीराजरासोका ही अस्तित्व क्यों जागरुक है और सब क्यों लुप्तप्राय हो गये? कारण यह हुआ कि, और रासोवालोंने केवल राजाओंका यशोगान किया और हमारे चन्द्वरदाईने दशो अवतार तथा कृष्णभगवानके दर्शनादिका वर्णन किया। इसलिये इनका रासो चल निकला।

भारतका मस्तिष्क श्रीराम और श्रीकृष्णभक्तिसे ऐसा भर गया है कि, आजतक जितने गणनाके कवि हुए हैं, उन्होंने वीभत्सरसको छोड़कर और जितने शेष आठ रस हैं सबोंको वैष्णव धर्ममें घसीटा है। शृङ्गार, वीर, करुणा और अद्भुत रस तो मानो भगवानके वर्णनके प्रधान अङ्ग ही हैं, अपिच हास्य,भयानक रसको भी उसी भावमें घसीट लाये हैं, जिसमें उनके उपास्य देव भगवान्‌का किसी न किसी रूपसे वर्णन हो सके। हमारे सूरदासजी तथा नारायणस्वामीने माखनचोरीमें भगवान् श्रीकृष्णसे खूब ही दिल्लगी की है।

हमारे प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रने तो आवेगमें कईएक स्थानपर भगवान्‌को धता भी बताया है।

"खोटाई पोर हि पोर भरी।"

"कुढ़त हम देखि देखि तव रीतें।
"सब पै एक सो ध्यान हि राखत
नई निकाली रीतें।"

"नखरा राह राहको नीको।"
"इत तो प्राण जात है तुम बिनु
तुम ना लखत दुख जीको।"

"आवहु वेगि नाथ करुना करि
मति करो मन फीको।"

"हरीचन्द्र अतिलाजपनेकी
विधिने दियो तुव टीको ॥"

कहनेका तात्पर्य्य यह है कि, वैष्णव कवियोंने अपने सभी रसोंका उद्गार अपने भगवान्‌पर ही निकाला है।

कहते हैं कि, किसी प्रयोगकी उन्नति वा आदर तभी समझा जाता है कि, जबतक बड़े विद्वानोंसे लेकर साधारण पुरुषोंतकमें वह प्रेम दृष्टिसे देखा जाता हो। यह वैष्णव-धर्म भारतमें ऐसा आहृत हुआ कि, यदि ग्रामीण कवि भी अपनी कविता करता है, तो वह भी अपनी कवितामें कृष्णभगवान् अथवा भगवान् रामचन्द्रजीको आसन देता है। हमारे प्रयागदासजी पुर्बी बोलीमें कविता करते हैं कि—

"हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा तोराकी रटत महेसवारे। तोरे नाम जपतबा पुजतबा सबसे प्रथम गनेसवारे॥ जल बरसैला धाम सरसैला सुख उपजैला मधवारे। प्रागदास प्रहलदवाके कारन रघवा होगैले अधवारे॥"

यहांतक कि, हिन्दी राज्यमें इसकी सम्बन्धी भी कोई भाषा न रही, जिसमें वैष्णव धर्मका राज्य न रहा हो।

ग्रामीण गीतमें, स्त्रियोंके गीतमें बड़े बड़े कवियोंके पदमें, छोटी जात ग्वालोंके पदमें, जहां देखो वहां वैष्णवमय पद दीख पड़ते हैं। हमारे बिहारमें ग्वाले सब अपने बिरहेमें गाते हैं कि—

"कानन कुण्डल भाल तिलकवा हंसि हंसि ऐंठल बैठलवा। भीतर बाहर हैला काईला कारी कामरि ऐंठल बा॥ यसोमतिनन्दन कंसनिकन्दन पर घरवा फिरि पैठलबा। चढ़िके बांका कदमवाके डरिया मुरवा लेके बैठलबा॥"

यहां पुनरुक्ति दोष देखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। देखना यही है कि, जहांसे हिन्दीका जन्म है और जहांतक चाहे किसी रूपमें हो वह बोली जाती है, उनमें कोई स्थान ऐसा न होगा जहां वह वैष्णवी परिच्छद पहन कर न बैठी हो।

भारतमें तो वैष्णव भाव प्राप्त था ही रहा था और अब भी बहुत कुछ है। पीछे तो कितने मुसलमानोंने भी इसी ओर अपनी कलम धड़ाकेसे झुकादी। एक मुसलमान मरनेके समय अपने साथियोंसे कहता है कि—

"कदमकी छांह हो जमनाका तट हो।
अधर मुरली हो माथेपर मुकुट हो।
खड़े हों आप इक बांकी अदासे।
मुकुट झोंकेमें हो मौजे हवासे॥
गिरे गर्द्दन ढुलककर पीतपटपर।
खुली रहजावें आंखें ये मुकुटपर।
हुमाले ही एवज हो ब्रजकी वह धूल।
पड़ें उतरे हुए शृङ्गारके फूल।
मिले जलनेको लकड़ी ब्रजके बनकी।
छिड़क दीजावे धूली वा सदनकी।
अगर इस तौर हो अंजाम मेरा।
तुम्हारा नाम हो औ काम मेरा॥"

शिवसिंह सरोज तथा अन्य ग्रन्थोंके देखनेसे मालूम हुआ है कि, २२७ हिन्दीके अच्छे ग्रन्थ स्वर्गीय बा० हरिश्चन्द्रके पहले बन चुकेथे। उनमें १५ ग्रन्थ छोड़कर और

सब वैष्णव धर्म्मके ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दीमें वैष्णवोंकी २५२ संख्या प्रसिद्ध है।

उक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त हमारे मान्यवर भक्तशिरोमणि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके अनूठे वैष्णवसम्प्रदायके ग्रन्थोंका तो कहना ही क्या है। इस कविके लिये तो कविजनोंने एक स्वरसे कहा है कि,—

"जो गुन नृप हरिचन्दमें।
जगहित सुनियत कान।
सो गुन श्रीहरिचन्दमें।
लखहु प्रतच्छ सुजान।"

अपने सम्प्रदायके विषयमें इन्होंने साफ कहदिया है कि,"सखा प्यारे कृष्णके गुलाम राधा रानीके।"

इन्होंने चारों वैष्णव सम्प्रदायोंकी प्रविष्ट, प्रवीण और पारङ्गत ये तीन परीक्षाएं भी नियत की थीं। इनके १२७ ग्रन्थोंमें चन्द्रिकाके चतुर्थ और पञ्चम भाग तो सबके सब हरिभक्तिसे ही भरे हैं।

यदि श्रीसूरदासजीका सूरसागर,गोस्वामी तुलसीदासकी रामायण, केशवदासकी कविप्रिया, चन्दवरदाईका रासो तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकी ग्रन्थावली हिन्दी भाषामेंसे निकाल दी जायं, तो कदाचित् हिन्दी प्राणहीन हो कही जाय, तो कुछ आश्चर्य नहीं। जो हो, अब समय दूसरा आगया। अब वैष्णवोंको अपना ढंग बदलना चाहिये।

वैष्णव धर्म्मका यही अर्थ नहीं है कि,बैठे बैठे रसीली बातें गढ़ता रहे कि,"हाय प्यारे! तेरे बिना मैं बिना पांखकी होगयी हूं। तू रात मेरे पास नहीं आया। यद्यपि कल मासिक धर्म्मका अन्त था।" वैष्णव धर्म्मका यह भी अर्थ नहीं है कि, बैठे बैठे मुरलीकी ध्वनि सुनते हुए दुनियाके सभी कार्य्योंसे किनारे हो बैठे। किन्तु वैष्णव होनेका अर्थ यह है कि, भगवानने अवतार लेकर जिस भांति लीला दिखाई है,उसके अनुसार तद्रूप होकर काम करना। भगवानने यह कहीं नहीं दिखाया है कि, पुरुषोंको भी मासिक धर्म्म हुआ करता है। भगवानने यह कहीं नहीं दिखाया है कि, भरदिन ललाटमें तिलक सजाते रहें। भगवानने लोकभलाईके लिये सात सात दिनोंतक बिना अन्नजलके गोवर्द्धनका धारण किया है। भगवान विश्वामित्रकी यज्ञरक्षाके लिये रातभर जागते रहे। भगवानने नवरत्न निकालनेके लिये अपने मस्तकपर पर्वत रखना स्वीकार किया। भगवानने वेदका उद्धार किया। भगवानने रासायनिक विद्याके उद्धारके लिये धन्वन्तरि रूप धारण किया। भगवानने भूगोलके उद्धारके लिये पाताल लोकमें जाना स्वीकार किया। भगवानने पृथ्वीके उद्धारके लिये हल धारण किया। भगवानने जगत्के जीवोंपर दया कर बुद्धरूप धारण किया। यदि तुम वैष्णव होनेकी ममता रखते हो, तो अब रसीली कवितापर ही लट्टू होना छोड़ो। तुम भी लोकभलाईके लिये कार्य्यका पर्वतभार उठाओ। खानेपीनेकी चिन्ता भी ऐसे कार्य्योंमें मत किया करो। पं० मदनमोहन मालवीय विश्वामित्रने बड़ा भारी यज्ञ प्रारम्भ किया है। उसकी रक्षाके लिये अहर्निश धनुष लेकर पहरा दो। खोये हुए वा समुद्र गर्भमें पड़े हुए रत्नोंको

ढूंढ निकालनेके लिये शास्त्र समुद्रको मथने-वालेके कष्ट दूर करनेके लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलनरूप पर्वतको अपने शरीरपर रखो। इसके कार्य्यभारसे शरीरसे रुधिर भी निकलने लगे, तो उसे सुख समझो। वेदका उद्धार करो। रसायन शास्त्रोंका उद्धार करो। भूगोलका उद्धार करो। कृषिविद्याके उद्धारके लिये हलधारण पाप मत समझो। तब तुम वैष्णव होनेका दावा करसकते हो।

यदि ऐसे कार्य्य करनेवाले वैष्णव तैयार होजायं, तो वैष्णव धर्म्मका प्रभाव और भी हिन्दी साहित्यपर पड़जाय। नहीं तो ऐसा समय आनेवाला है कि, भगतजीको रसीली कविता रद्दीखानेमें सड़ती रहेगी और दूसरे सम्प्रदायके लोग दाव मार लेजायंगे।

पहलेके भगतजी केवल भगतजी होते थे। अबके भगतजी अनेक सत्साहित्यके स्वाद लेनेवाले होते हैं। उनके सामने श्रीरामजी जैसे मर्य्यादा पुरुषोत्तमको भी अपनी कविताके बलसे यदि मिथिलाकी स्त्रियोंके साथ आंखोंकी इशारेबाजीसे कलंकित करोगे, तो तुम्हारे कारण, जो कुछ वैष्णव धर्म्मका महत्व हिन्दी साहित्यपर है, वह उठजायगा।

यों तो वैष्णव धर्म्मके चार आचार्य्य हुए, पर श्रीरामानुजस्वामी और श्रीवल्लभाचार्य्य ही मुख्य हुए। इनमें श्रीरामानुजस्वामीकी उदारताका स्मरण वैष्णवोंको सदा कर लेना चाहिये। जब गोष्ठीपूर्णाचार्य्यने मन्त्रका उपदेश स्वामीको किया और कहदिया कि, किसीके सामने इस मन्त्रको न पढ़ना। इस आज्ञाका स्वामीने उल्लंघन किया। जब यह समाचार गुरुजीको मालूम हुआ, तो उन्होंने स्वामीको धमकाया और पूछा कि, जो गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन करे, तो उसे क्या हो? स्वामीने उत्तर दिया कि नरक। तबगुरुजीने पूछा कि, तूने मेरे उपदिष्ट मन्त्रको सबको क्यों सुनाया? स्वामीजीने बड़ाकेसे उत्तर दिया कि—

"पतिष्ये एक एवाहं नरके गुरुपातकात्।
सर्वे गच्छन्तु भवतां कृपया परमं पदम्॥"*

कैसा उदार वाक्य है। इस वाक्यका अनुकरण सभी वैष्णवोंको करना चाहिये।

सर्वे सुव्रतिनः सन्तु सर्वे सन्तु विवेकिनः
सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु सुभृत्प्रियाः।

---

(२)

हिन्दी साहित्यपर वैष्णवधर्म्मका प्रभाव

लेखक—

पंडित दुर्गादत्त द्विवेदी।

वैदिक प्रवचन प्रकरणके अनुसार प्रत्येक व्याख्येय विषय प्रायः अष्टाङ्ग होता है। जैसे, उसके नामकी व्युत्पत्ति १ (अर्थात् उसकी व्याकरणरीतिसे पदसिद्धि), स्वरूपलक्षण २, भेद प्रभेद ३, तदन्वयलाभ (उससे फायदा) ४, तद्व्यतिरेक हानि (उसविना हानि) ५, तदुपयोग (किस किस कार्यमें वह लगाना चाहिये) ६,

---

* अर्थात् आपकी कृपासे जिन्होंने मन्त्र सुना होगा वे सब परमपदको जायंगे, तो यदि मैं अकेला नरकमें ही जाऊंगा तो क्या चिन्ता है।

पूर्वाचीन अर्वाचीन स्थिति (पहिली और वर्त्तमान दशा) ७, और समयानुसार तद्‌हितसाधन ८। इस शास्त्रानुक्रमके अनुसार इस समय ऊपरलिखे शीर्षकमें हिन्दीके अष्टांग और उपांगोंके दिखानेकी भी आवश्यकता है। परन्तु सम्मेलनके सदस्योंने कोई कोई अंग उनमेंसे भिन्न रूपसे नियुक्त करदिया है। इस कारण अन्य अङ्गोंको न छेड़कर खाली हिन्दी शब्दकी व्युत्पत्ति और स्वरूप लक्षणमात्र ही सूचित करना उपयुक्त समझता हूं।

हिन्दुओंके निवासस्थान हिन्दकी बोली अथवा हिन्दूसंज्ञक मनुष्य जातिकी बोली हिन्दी कहलाती है। हिन्दी व्याकरणके अनुसार हिन्द शब्दसे "ई" प्रत्यय संयुक्त कर हिन्दी शब्द बना लेना उचित है।

अब हिन्दीके स्वरूपलक्षण कहनेके प्रथम यह भी कहना आवश्यक है कि, यह हमारा भारत जब विद्याभाण्डारसे पूर्ण अन्य समस्तभूमण्डलशिक्षाशिक्षणविचक्षण था,तब दूरदूर देशके वासी सज्जन यहांसे निजयोग्य शिक्षा पाकर इस देशको अपना गुरुस्थान समझकर पूज्य बुद्धिसे इसे आर्यावर्त्त कहते थे। क्योंकि हमारे शास्त्रोंमें अपने आचार्य, गुरु, मातापिता, पितामह आदि कुलवृद्ध, ज्ञातिवृद्ध, विद्यावृद्धोंको ही आर्य कहना निश्चित है, अन्यको नहीं। तब उनकी मातृभाषाको आर्यभाषा कहते थे। इसका पुराने काव्य नाटक आदि ग्रंथोंमें उल्लेख मिलता है।

अब यहां प्रश्न यह उठता है कि, इस देशका हिन्द नाम किस कालमें कैसे पड़गया, जिससे यहांके वासी हिन्दू कहलाये और उनकी बोली हिन्दी।

संक्षेपसे इसका उत्तर यह है। इस प्रश्नका ठीकसमय ठीक ठीक न मालूम होनेपर भी इतना तो अवश्य ही कहूंगा कि, अबसे पांच हजार वर्ष पहिले राजा युधिष्ठिरके समयसे कुछ अधिक काल पूर्व महाभारतके कर्त्ता महर्षि श्रीवेदव्यासजीने निजकृत पुराणोंमें जहां तहां तन्त्रोक्त मन्त्र उपासनाओंका भलीभांति उल्लेख किया है। इससे ज्ञात पड़ता है कि, तन्त्रोंका प्रमाण श्रीवेदव्यासजीके समयसे पूर्व भी था। उन्हीं तन्त्रग्रन्थोंमें भविष्यकालीन प्रकरणगत हिन्द-हिन्दू शब्दोंका उल्लेख मिलता है। जैसे मेरुतन्त्रके २१ वें पटलमें,—

"पश्चिमाम्नायमन्त्रा प्रोक्ताः पारस्य भाषया।
अष्टोत्तरशताशीतिर्येषां संसाधनात्कलौ॥
पञ्चखाना: सप्तमीरा नवसाहा महाबला:।
हिन्दूधर्मप्रलोप्तारो भविष्यन्त्येकपत्रिय:॥
हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये॥"

इसका भावार्थ यह है, जब श्रीमहादेवजीने अवैदिक मनुष्योंके कल्याण आदि कार्योंसे सावर मन्त्रकी सृष्टि की थी,तब श्रीपार्वतीजीके पूछनेपर स्वयं श्रीशिवजी महाराजने उनसे कहा है, "आठ ऊपर आठ हजार मन्त्र मैंने पारसभाषासे पाश्चात्य देशीय तन्त्रमें कहे हैं। जिनके साधनसे कलियुगमें पांच खान, सात मीर, नव साह, बड़े पराक्रमी हिन्दू धर्मके नाशकर्त्ता भारतमें एकपत्र अर्थात् चक्रवर्ती होवेंगे।" इतना कहकर आगे हिन्दू शब्दका आपही अर्थ कहते हैं—"हे प्रिये पार्वति ! हीन जो हिंसा आदि

दुराचारको दूर करे वह हिन्दू कहा-जाता है।

इस उक्त लेखसे स्पष्ट होताहै कि, हजारों वर्ष पहिले भारत हिन्द और भारतवासी हिन्दू कहे जाते थे। उनकी मातृभाषा भी तबसे हिन्दी कही जाने लगी। यह बात यवनोंके देशवृत्त (तवारीख) में लिखे श्रीव्यासजीके चरित्रसे भी स्पष्ट है। जैसे, पारसियोंकी मुख्य धर्मपुस्तक दसातीर (मस्तीर) नाम जरतुश्तको ६५वीं आयतमें लिखा है—"अकनू बिरहमने व्यास नाम अज हिन्द आमद वसदाना के अकिल चुनानस्त।" (एक व्यास नाम ब्राह्मण हिन्दसे आया जिसके तुल्य कोई पण्डित नहीं है)। इसके आगे १६३ वें आयतमें लिखा है।—"चं व्यास हिन्दी बलख आमद। गस्तास्प जरतुश्त रा बख्वांद।" जब हिन्दका रहनेवाला व्यास बलखमें आया तब ईरानके राजा गस्तास्पने जरतुश्तको बुलवाया। आगे फिर लिखाहै।"मन मरदे अम हिन्दी निजादे।" (मैं एक हिन्दमें पैदा हुआ पुरुष हूं)। फिर आगे लिखा है। "वैव हिन्द वाज गश्ते।" फिर वह हिन्दको लौट गया, इत्यादि। बहुविस्तृत विदेशीय ग्रन्थ प्रमाणोंसे भी स्पष्ट है कि, हिन्द, हिन्दू और हिन्दी शब्दोंका प्रचार श्रीव्यासजीसे पूर्व इस भारतमें था और अब भी है।

इसका दूषित अर्थ होनेका कारण यह है। जब भारतमें हमारे विद्यावीर और पूर्व पुरुषोंने हिंसा, हास्य, ह्रास, हुंवाद, हतोत्साह, हड़बल, हड़फुट, हिचक, हीरा, हित्य, हीनता, हीना (अपमान) हठता, आदि हेय अपगुणोंका नाश कर हर्ष, हित, हितु, हेज, ह्री, हल, व्यापार, हीनजनपालन, हिम्मत, हवन, आदि हितकर पदार्थोंका चमकोला चन्द्रमा चमकाया था, तबहीसे दीर्घदर्शी गुणग्राही विदेशीय विद्वान लोग इस देशको हिन्द, निवासियोंको हिन्दू और बोलीको हिन्दी कहने लगे। इस मेरे उल्लेखका प्रयोजन यहां इतना ही है कि, एक किसी द्वेषीके किये हिन्दू शब्दके बुरे अर्थपर ध्यान देकर बहके हुए लड़के इस शब्दको घृणा दृष्टिसे न देखकर अपनी परम पूज्य मातृभाषाको हिन्दी नामसे ही पुकारते मातृवत् सदा हितके लिये समाराधन करें। अब मैं अपने वक्तव्य विषयके शीर्षकमें हिन्दी शब्दके आगे लिखे साहित्य शब्दपर आपका ध्यान दिलाता हूं।

प्रश्न उठता है, साहित्य क्या चीज है? उत्तरमें निवेदन है। परस्पर एक दूसरेकी सहायता चाहनेवाले तुल्यरूप पदार्थोंका एक सङ्ग एक किसी कार्यसाधनमें लगना साहित्य कहा जाता है। इस परिभाषासे हिन्दीवाणीका साहित्य, सरलता, माधुर्य, रसीलापन, मनोहरता, पदयोजना अर्थ गहरा, अक्षर थोड़े, भाव बहुत, आदि गुण समूह समझना चाहिये। बस इन्हीं गुणोंसे युक्त बोली हिन्दी है। यही हिन्दीका लक्षण है। ये बातें अन्य २५ या २६ आदि अक्षरोंकी बोलीमें नहीं घट सकती। यही हिन्दीका लक्षण हमारे शाण्डिल्याचार्य सुन्दर मणिदेवजीने 'भक्ति मार्ग' ग्रन्थके आरम्भमें छप्पे में कहा है;—

"हम हैं हिन्दू जाति हमारी हिन्दी बानी। मीठे पद सरबौर सरलता रसमैं सानी॥ सुर बानीकी सुता सकल भाषा महरानी। पढ़त लिखत इक सार सकल बुधवृन्द सिहानी॥ श्रीनिंबार्कने कही यामैं निजमति रीति। सुन्दर सोई मग चलत यहां न नेकहु भीति।"

इस छप्पैमें "पढ़त लिखत इकसार" यों देवनागरी लिपिका उल्लेख करनेसे हिन्दी भाषाका सांग लक्षण कहा है। अर्थात् देवनागरी लिपिमें ही हिन्दी भाषाका प्रचार और राष्ट्रीय लिपि होना कवि महाराजको वांछित है। सो यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। पुराने पुराने ग्रन्थ और राज्यघोषणा दानपत्र आदि प्रायः देवनागरी लिपिमें ही मिलते हैं और इसके प्रमाणरूप श्रीबदरीनारायणजीके समीपस्थ ज्योतिर्मठमें धर्मात्मा युधिष्ठिरजीके लिखे पांच ताम्रपत्र विराजमान सुने जाते हैं। और ऊपर लिखे छप्पैमें भी श्रीनिंबार्कदेव वैष्णवसंप्रदायाचार्यको हिन्दी-लेखक कहा है और वे महानुभाव श्रीवेदव्यासजीके समकालीन हैं। इससे स्पष्ट होता है कि, देवनागरी लिपिके साथ साथ संस्कृत-लेखक बड़ेबड़े विद्वान वैष्णवाचार्य्य पुरुष निज मातृभाषाका महत्व बढ़ाते हुए हिन्दीमें भी ग्रन्थरचना करते थे। क्योंकि वे निज मातृभाषाके बड़े ही प्रेमी थे। इसीसे तो "न पठेद्यामिनीं भाषाम्" इत्यादि वाक्योंसे विदेशीय भाषाओंका पढ़नेको निषेध करते थे। वे किसीके विरोधी नहीं थे। परन्तु वे महात्मा लोग निज मातृभाषाके गौरव देशहित सत्पक्ष आदि तत्वोंको भली-भांति जानते थे। क्योंकि वे वैदमार्गके कट्टर अनुगामी थे और वेद ही मातृभाषाका महत्व बताता है। "ब्राह्मणा उभयीं वाचं वदन्ति। या च देवानां या च मनुष्याणाम्।" यह शतपथ अथवा उपनिषदकी श्रुति है। इसका अर्थ यह है कि, ब्राह्मण लोग दोनों वाणियोंको कहते हैं, जो देवताओंकी है और जो मनुष्योंकी है। इस श्रुतिसिद्ध निज मातृभाषाके अनादरसे हिन्दूजातिको अपने पूर्व महर्षियोंके वचनानुसार अवश्य ही वेदद्रोहका पातक लगता है। यह श्रुति हमको हमारी हिन्दी बाणीका बड़ा ही महत्व बता रही है। संस्कृत वाणीके साथ साथ मातृभाषाके ग्रहणसे सदा ही संस्कृत और हमारी मातृभाषाका नित्य संबन्ध है, यह भी श्रुति सूचित करती है। इसीसे हमारे श्रीवैष्णवाचार्योंने संस्कृतग्रन्थरचनाके साथ साथ हिन्दीमें ग्रन्थरचना की है। क्योंकि संस्कृतके अपढ़ मनुष्य भी निज धर्मतत्ववेत्ता होते रहें, यह हिन्दीमें वैष्णवधर्म-ग्रन्थरचनाका मुख्य कारण है। अतएव हमारा धर्मतत्व संस्कृत और हिन्दीमें ही वर्त्तमान है। इससे सिद्धान्त यह निकला कि, निज मातृभाषाके त्यागसे मनुष्य धर्म और प्रतिष्ठासे जाता रहता है। सो हमारे पूज्यपाद श्रीसनकादिमार्गप्रवर्तकाचार्य गुरुदेव श्री १०८ हरिनारायणशरणदेव जू महाराजने एक दोहेसे स्पष्ट किया है।

"तजैं राम आराम नहिं।
उभय लोक कटिजात।
ज्यों निज कुलको भाव तजि।
दल डालसे घटिजात॥"

इस दोहेमें 'इत उतते वटिजात' इसका अभिप्राय यह है कि, जब किसीने अपनी मातृभाषाका अनादर किया, तब इससे तो वह स्वयं भ्रष्ट हो ही गया और जिस भाषा-का दास बना वह भी ठीक ठीक आयी नहीं, तब उससे भी भ्रष्ट, न इतका रहा न उतका। यह आज दिन प्रायः देखनेमें आ रहा है। अतएव अपनी ही मातृभाषाका प्रचार आपसमें होना चाहिये, यह हमारे समस्त वैष्णवाचार्य्योंका सिद्धान्त है। परन्तु हिन्दी-भाषाओंमें (?) भी प्रायः ब्रजभाषाका परम पूज्य दृष्टिसे आदर दिया है। सो श्रीनिंबार्कीय शाण्डिल्याचार्य मेरे कुल वृद्ध श्रीदामोदर-शरणदेव शास्त्रीजीने अपने 'शाण्डिल्य-वंशादर्श' नामक ग्रन्थमें लिखा है।

"कृष्णमातृभाषा समझि।
ब्रजभाषामें ग्रन्थ।
वैष्णव आचारज किये।
शुद्ध धर्मके पंथ॥
"हिन्दी भाषा वृन्दमें।
मीठे रस सरबोर।
ब्रजभाषा कवि कहत हैं।
सब भाषा शिर मोर॥"

इस बातको प्रसिद्ध कवि श्रीवैष्णव तोषनिधि भी कहते हैं।

"एक तो भालहिको कविता।
कवितोष कहै वर बुद्धि सचैजू।
दूसरे बैन सिखै ब्रजके
कवि औरसे आनिके प्रेम मचैजू।
तीसरे काव्यकी रीति सिखै
तब तो कविता कविताई खचैजू।
ज्यों कथ चून सुपारि बिहून।
सु कोटि कहूं सुख पान रचैजू।"

इस विषयमें एक और हाल सूचित करता हूं। मैं एक समय अपने पितामह श्रीरामविलासशरणदेव शास्त्रीजीके पास महर्षि वात्स्यायनकृत स्त्रीशिक्षासूत्रोंको पढ़ रहा था। उस समय एक सेवकने आकर यह प्रश्न किया। हमारे वैष्णव संप्रदायाचार्य श्रीनिंबार्कदेवजूका जन्मस्थान कहां है? इसके उत्तरमें वहां बैठे एक वृद्ध वैष्णव ब्रजभूषण दासजीने बहुत पुराने दो दोहे पढ़कर सुनाये।

"बैडूरज पत्तन प्रकटि आनि पढ़ो ब्रज थित्ति।
कृष्ण कथानी प्रिय लगी ब्रजभाषा रस गित्ति
सुरबानी अज्ञान हित गांठी ब्रजकी भांख।
वैष्णव धर्म पसारने अविचलरसकी शांख॥"

इन दोहोंका भावार्थ यह है। "दक्षिणमें एक 'वैडूर्यपतन' नामका नगर है, वहां प्रकट होकर ब्रजमें आय स्थिति की। उनको श्रीकृष्णकी विहारस्थली और ब्रजभाषामें श्रीकृष्णगुणरसगान प्रिय लगा। देववाणी (संस्कृत) के अपढ़ लोगोंके हितके लिये और सर्वत्र वैष्णव धर्मके प्रचारके हेतु ब्रज-भाषा गांठी जो अचल रसकी शांख (सांक) अर्थात् जलेबीका सा टुकड़ा है।" इन दोहोंमें पड़े हिन्दीके बहुत पुराने शब्द ही हिन्दी साहित्यपर वैष्णव धर्मके प्रभा-वको चिरकालसे जमाये हुए सूचित करते हैं।

परन्तु यहां शोकके साथ कहना पड़ता है कि, क्षत्रियराज्यफुलवारीके प्रलय-मार्तण्ड कन्नौजो जयचन्द्रके महमान यवन सम्राटोंकी कृपा और हमारे दुर्भाग्यवश श्रीनिंबार्कदेवरचित हिन्दी ग्रन्थावली और उक्त दोहावाले उनके पूरे जीवन-चरित्रका पूरा पूरा पता नहीं लगता।

अब मेरे मातामह श्रीशिवाशंराम कवि-रत्नजीकी छप्पैकी ओर और ध्यान दीजिये।

"हिन्दी भाषा वृत्त सकल हिन्दुन उपजायो। नाना देश निवास भेद शाखा दल छायो। अलङ्कार घुनि विंग कली कल कुसुम सुहायो। रसिक लाड़िलो सुयश गन्ध कवि भृंग लुभायो। नवरस जल सींच्यो लसै व्रजभाषा तिहि मूल। आदि सृष्टि या देश भइ याते यह अनुकूल।"

इस छप्पैमें व्रजदेश अंतर्वेद और उसके आसपासके भूभागका उपलक्षक है। क्योंकि मनुस्मृतिमें देवदेश (ब्रह्मावर्त्त) के पार्श्व-वर्त्ती भूभागको ब्रह्मर्षि देशके नामसे एक ही संख्यामें निबद्ध कर इसी स्थलसे सृष्टि-सदाचारका आरम्भ सूचित किया है। यह हाल मनुके दूसरे अध्यायके १७वें श्लोकसे २१वें श्लोकतक देखनेसे स्पष्ट है। सो प्रत्यक्ष देखा जाता है।

अन्तर्वेद और उसके आसपासकी हिन्दी बोली कालवश उत्पन्न हुए थोड़ेसे अवांतर शब्दभेदोंको लिये भी व्रजभाषा ही है। अतएव हमारे श्रीवैष्णवाचार्योंने श्रीवैष्णवधर्मके वर्णनमें प्रायः व्रजभाषाको मुख्य कर हिन्दी साहित्यपर अजब प्रभाव चमकाया है। सो आज दिन भी प्रत्यक्ष है कि, विदेशीय मातृभाषावाले देशोंके निवासी हिन्दूसन्तानोंकी विदेशीय भाषा मातृभाषा होजानेपर भी वैष्णव धर्मके प्रचारसे ही उनको निज मातृभाषा हिन्दीका परिचय हो रहा है और उन्हीं हिन्दूसन्तानोंके संगसे वैष्णव धर्मके हिन्दी भाषाग्रन्थोंके पढ़नेसे पाश्चात्य देशीय जन भी हिन्दीके परिचयका लाभ प्राप्त करते हैं। यहांतक कि, वहां कोई कोई कवि पुरुष हिन्दी भाषामें कविता भी करते हैं और हिन्दीकी प्रशंसा भी पत्रोंमें प्रकाशित करते हैं। जर्मन आदि देशोंमें तो उन्हीं वैष्णव धर्मग्रन्थोंसे निकाल निकाल शब्दरत्नोंको अपना कोश भी बनाते सुने जा रहे हैं। यदि आज भारत-वासी भी उन्हीं अपने वैष्णवधर्मग्रन्थोंका संग्रह कर अपने पुराने मीठे शब्दोंको ढूंढ़ ढूंढ़ एकत्र करना प्रारम्भ करें, तो सहजमें हिन्दी शब्द रत्नाकर एक अनूठा कोश तैयार हो सकता है। तब हिन्दी साहित्यपर वैष्णव धर्मका प्रभाव अपने आप विचार-नेत्रोंके समक्ष खड़ा हो जायगा। उसके परिचयवाले दीर्घदर्शी कवि लोगोंके बुद्धिभवनमें तो अब भी वह प्रत्यक्ष विराज-मान है।

इसके उदाहरणमें प्रथम जगत्ख्यात महा-कवि श्रीतुलसीदासजीको ही लीजिये। जिनकी कविताका चमकीला प्रभाव चन्द्रमा अंधेरी रात्रिमें षोड़शकलापूर्ण चन्द्रकी भांति अविद्याकी अंधेरी रात्रिमें षोड़शग्रन्थ-कलाओंसे पूर्ण निज पौर्णिमाको चमकाता चमकता चित्तचैत्योंसे अज्ञानतिमिरको नाश करता हुआ भारत तड़ागमें हिन्दी-साहित्यकमोदिनीगणको खिलाय रहा है।

इसी रीतिसे सनाढ्यकुलभूषण श्रीका-शीनाथजी भट्टाचार्यके पौत्र प्रसिद्ध कवि श्रीकेशवदासजीकी कविप्रिया, रसिकप्रिया, श्रीरामचन्द्रिका नाम धारिणी कविता रमणी इस धरणीपर अलंकार, अलंकारभूषिता नायकाभेदरूप अपने रसीले पुष्ट

अङ्गोंको दिखाती हुई मृदुल मीठी अपनी हिन्दी मात्र भाषाके रसभरे वचनोंसे किस रसिक युवकके मनको आकर्षित कर उसे अपने वश नहीं करती।

इसी प्रकार महात्मा वैष्णव सूरदासजी-कृत सूरसागर सच्चा कवितासागर हिन्दी-सागर है। जो कि बहुत पुराने ठेठ हिन्दी-शब्दरत्नोंसे पूर्ण अपने रागरत्नाकर नामको सफल करता हुआ अलंकार, ध्वनि, व्यञ्जना, वर्णमैत्रिचित्र आदि विविध रस रंग उमंगभरी विचित्र ढंग तरङ्गके समुदायसे कवियोंके मन-मतङ्गको भकोर भकोर शीतल करता हुआ भीतर गोता लगानेवाले सज्जनोंको क्षीरसा-गरकी भांति अन्तमें अविनाशी शेषशायी सुखदायी पीड़ानाथजीका साक्षात् दर्शन करा रहा है।

इन उक्त कवियोंसे पूर्व वैक्रम संवत् १०११ के बीचमें सनाढ्यचूड़ामणि शिरताज उपनामधारी वैष्णव भक्तमणि हिवेदी हुए हैं, जिनकी कविता सविताकी भांति प्रकाश करती अपने वैदिकधर्म तेजदार हिन्दी शब्दरूपी मृदुल भाव सुनहरी किर-णोंके प्रसारसे अज्ञानरात्रिके भ्रमतिमिरको मिटाती हुई विद्याभिनसारको दिखाती भारतीय धर्मव्यापारियोंको निजनिज कृत्यके लक्ष्यको भली भांति लखाती है। इन श्रीवै-ष्णवाचार्यजीका हिन्दीमें चित्रकाव्य भी विलक्षण है। जैसे—"राधानवयोवनधारा" "लवकतरवरतक चल" इत्यादि। इन पद्योंमें पद गतागत और अर्द्ध गतागत चित्र है। अर्थात् इधर उधरसे पढ़नेपर एक सा पढ़ा जाता है और पुराने ललित हिन्दीके शब्दोंका विन्यास भी इनकी रचनामें बहुत मिलता है। जैसे, 'जोह्यो करै घनश्याम मगै कुंडलीकी मुंडेली अकेली भटू।' 'मानूं तोर निहोर मैं जो व्रजराज मिलाऊं।' 'प्यारी तेरो रूप निहार। करत रिभावन कछु रिभवार।' 'मकराय भरी मकवाय रही।' इत्यादि

इसी प्रकार वैक्रम संवत् १४०० की शताब्दीमें श्रीनिंवार्कसंप्रदायपोषका-चार्य श्रीहरिव्यासदेव हिन्दी साहित्यके रसिक हुए हैं। इनको हिन्दीसाहित्य-प्रवर्तक आचार्य कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी। इनकी हिन्दीसाहित्यशब्द-रत्नावली आज दिन भी वैष्णवमात्रको भूषित करती है। इनकी गद्यपद्यरचना अति मृदुल रसीली 'महावाणी'के नामसे प्रसिद्ध है। इनके समयसे अन्य सम्प्रदायोंके महानुभावोंने भी इनका अनुकरण कर अपने अपने मत अनुसार उपासना मार्गको ग्रन्थरचना प्रायः महावाणीके नामसे प्रसिद्ध की है। इनका हिन्दी साहित्य मेरे अनुमान-एक लक्षसे कम नहीं है। और इनके ही समकालीन मेरे कुलवृद्ध श्रीश्यामदेवजा शाण्डिल्याचार्य हुए हैं, जिनकी गद्यपद्य-रचना हिन्दीसाहित्यशब्दरत्नोंसे पूर्ण अपूर्व रसीली है।

जिसका गद्य वासवदत्ताकी 'कादंबरीके' ढङ्गपर है। जैसे,—"नव ग्रहस्थली ज्यों। ग्रह भूषण समर्चित भासकर है। प्रकाशित चन्द्रवदन है। सदा वर्त्तमान मङ्गल है। बुधपूजित पाद है। सुखित जीव है। कविश्लाघित है। सदामंदगति

है। शोभित राहु है। पूजित केतु है।" इस गद्यमें श्लेष अलङ्कार है और सूर्यादि नवग्रहोंको निवासभूमिकी उपमा शब्दोंसे देते हुए श्रीराधिकाजीका वर्णन है।

अब गद्यमें रूपक अलङ्कारके साथ हिन्दी शब्दरचनाकी बानगी भी लीजिये। "तहां अकेली चमेलीकी गूंथन मानों प्रिय मनरंगा गङ्गा है। सुवेश केश श्यामता ही यमुना है। सिन्दूर सुहाग मांग सरस्वती है। या विधि लहरदार पन्नगीकी भांति पीठरूपी प्रयागमें घहराती लहराती प्यारीकी वैनी त्रिवैनी-की छवि छहराती छलकती प्यारे छबीले छैल बिहारीके हजारी मनकूं छिन छिनमें उछाहकी कलाकैं भरा रही है।" इत्यादि।

अब पद्यगत पुराने हिन्दी शब्दोंकी भी बानगी लीजिये।

"श्यामकी सखी मिलामन भई। रूप बजार दुकान चाहकी प्रेम मिलौनी दई। तज्यो मान वृषभानुदुलारी रस सौदा गति लई। श्यामदेव सौदागर नागर नागरि वह बिक गई।"

"कौन कहै रिझवारकी रीझन सीझन मांझ।"

"अतरौटा धरे वृषभानलली कजरौटा लिये हरि नैननु आंजत।"

"रङ्गराती सुहाती प्रिया चुनरी।"

"गहगहो लहलही रंग छटायुत चीरा सुहावनो भावनो है।"

"सुनते ही कहानी बिहानी निशा भिन-सार भयो उदयो दिनधारी॥"

"हरिप्रेमके पन्थ अली खिसिली।"

"आवास नशी सिगरी ब्रजकी आवास करी अब आय बिहारी।" इत्यादि।

इन महात्माके हिन्दीसमुन्नतिप्रद वैष्णवमतके रसग्रन्थ बहुत हैं। इन उक्त शाण्डिल्याचार्यके समान १२ भट्ट आचार्य हिन्दी साहित्यके परम पोषक हुए हैं। जिनमें श्रीभट्टजी महाराज बहुत ही रसीली मीठी साहित्य कला रसके स्वादी थे, जिनकी पद्यरचनाके ग्रन्थ वार्षिकोत्सव १, निकुंज-रहस्य २, मांझ ३, सझी ४, श्रीराधाकेलिकौ-तुक ५ आदि बहुत हैं। इन उक्त कविके समकालीन शाण्डिल्याचार्य श्रीभगवत-शरणदेवजू हुए हैं। ये निज हिन्दीमातृ-भाषाके यहांतक आग्रही थे कि, एक समय किसी यवन राजाने उर्दूमें काव्यरचना करनेको कहा और कैद किया, परन्तु हिन्दी-भाषाका प्रण नहीं छोड़ा। अन्तमें अपने इष्टदेवके प्रतापसे चेटक दिखाय आप ही बंदीगृहसे छूट आये और यह दोहा पढ़ा।

"भगवत निज माता तजैं कोउ न होत सपूत।
माताके वचनैं गहत बंधते सबरे सूत।"

इस दोहेमें माता शब्दसे हिन्दीपर कविका लक्ष्य है। दोहेमें सूत शब्दका अभिप्राय सर्वव्यापारोंसे है। इत्यादि इन महात्माकी हरिभक्ति, देशभक्ति, निजमातृ-भाषाभक्तिके बहुत से उदाहरण हैं।

इसी प्रकार परम हिन्दीसाहित्यरसिक श्रीपरशुरामदेवजू हुए हैं। जिनने हिन्दी-साहित्यके महाकाननमें सवा लक्ष दोहे रूप रसीले बढ़िया आमके पौधोंका 'लाखा' हजारोबाग लगाकर हरिभक्तिरसयुत हिन्दी-साहित्यके विविध भावफलोंसे समस्त वनको

सुगन्धित और रसिक पांथ जनोंको खूब ही तृप्त किया है। ऐसे ही श्रीहंस, सनकादि, नारद प्रतिपादित रस उपासनाके रसिक निकुंज रसके स्वादी महानुभाव श्रीहरिवंश देव गोस्वामी हिताचार्य हुए हैं। और निजवंशभूषण विरक्त गृहस्थ महानुभावों सहित इनकी उज्वल शृङ्गार बसन्ती बहारदार महावाणी रूप रसमाती कोकिला हिन्दी साहित्यकी हजारी फुलवारीमें जोससे कुहकती हुई शुद्ध रसिकके मनको अपनी ओर खींचकर प्यारे चित्तचोर श्रीनन्दकिशोरकी ओर शीघ्र ही लगा देती है। इस हिन्दीहितकारक हितकुलमें हिन्दीसाहित्यगन्दरभोंमें पूर्ण भक्तिरसचुहचुहाते परम सुहाते अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। उन ग्रन्थोंके कर्त्ता प्रथम श्रीहिताचार्यजी और गो० वनचन्द्रजी, गो० वृन्दावनचन्द्रजी, गो० रूपलालजी आदि पुत्रपौत्रपरिवार और सेवकजी, कृष्णदासजी, प्रियालालजी वृन्दावनदासजी सरीखे शिष्यप्रशिष्यगण बड़े बड़े हिन्दी साहित्य कवि दिग्गज हो गये हैं। इन रसिक वैष्णववरोंके संग्रहीत हिन्दी साहित्यकी बानगी मात्र दिखानेमें ही कमसे कम २० पृष्ठोंका लेख होगा। सो लेखविस्तारभयसे और इस अपनी रोगदशासे बानगी दिखानेमें मैं असमर्थ हूं।

अब श्रीसनाढ्यकुलकमलदिवाकर योगाचार्य रसिक अनन्य वैष्णवशीर श्रीहरिदास स्वामीजीके हिन्दी साहित्य तरुकी सींचनेवाली काव्यरचनाके महत्वकी ओर ध्यान खींचता हूं।

इन महात्माके हिंदी साहित्य प्रेमका यही प्रभाव जताना बहुत है कि, इनके प्रतापसे अकबरके समयमें साह, फैजी, रसखान, तानसेन, आलम, आदि बड़े बड़े साह मुसाहब अपनी मातृभाषासे इसे अच्छी समझकर हिन्दीसाहित्यके रसिकोंमें गिने जाने लगे और अबतक प्रशंसापात्र हो रहे हैं। श्रीहरिदास स्वामीके परम कृपापात्र श्रीविट्ठल विपुलदेवजी महाकवि अनन्य वैष्णव हुए हैं। इनकी हिन्दी कविता सरल शब्दवाली, रसीली, गम्भीरभाव उज्वल-शृङ्गार रसपूर्ण है। इसके उदाहरणमें एक पद है—

"प्यारी तेरो नैननपर तृन टूटत।
मानो कुन्दकलीपर भौंरा
हित अमृत रस घूंटत
कहरी कहूं इन बान विशेषे
इत लागत उत फूटत।
विट्ठल विपुल विनोदविहारिणि
पियको सर्व्वस लूटत।"
"लाल करत तेरे गुन गाने,
जो न पत्याहु शपथ नहिं
मानत चल सुनु अपने काने।"

इत्यादि।

इसी रीतिसे इन महात्माका हिन्दी साहित्य और पुराने शब्दका योजन, साहित्यवेत्ता ही समझ सकते हैं। इसी भांति इनके शिष्य श्रीविहारिणिदासजी हिन्दीरसिक हुए हैं। जो कि अकबरशाहकी पंचमुसाहिबीको छोड़कर परम वैराग्यशील हिन्दीके कवि थे। जिन्होंने हिन्दीसाहित्यप्रचारके लिये पारसी उर्दू मदरसोंमें भी हिन्दी पढ़ाना शाहसे कहकर प्रवृत्त कराया था। इनका हिन्दी काव्य साहित्य और

पुराने हिन्दी ग्रन्थरत्नोंसे पूर्ण है। उसकी भी थोड़ी बानगी दिखाता हूं—

"सब सखी मन अनुसारिनी,
उन सज कीनी सब सौज।
लाल रतन मनकी कुण्डी,
केसरिको श्रोजाश्रोज।
गावत चैत सुहावनो,
पिय प्यारीके हेत।
खेलत मेले मिल वही
बढ़्यो सबनु संकेत।
ले लामन लांगे कसीं,
बैनी कटि लिपटाय।
आधे कुच कंचुका कसो,
उर आनंद न समाय।
चोवाके चहले मचे,
भये अंबर अरुन अबीर।
हार जीतन ही समझ हीं,
रति मनहिमगन गम्भीर।
फाग खिलावत फूल सों,
दै सैननु सनकार।
नैनकमल कज्जल भरे,
मचो कटाक्षनु मार।
सौंधेमें सोंधी सबे,
कौन पिछाने काहि।
सबै प्रेमरसमें रंगीं,
रहे रसिक मुख चाहि।"

इत्यादि। इन महानुभावके हिन्दी भाषा-ग्रन्थ अपूर्व रस भरे हैं।

इन महानुभावके कृपापात्र हिन्दीप्रेमी अनन्य वैष्णव श्रीनागरीदासजीका हिन्दी साहित्य ग्रन्थ रत्नभण्डार भी आज दिन बड़ा उपकारकारक है। इससे हिन्दी समर्थकोंको ग्रन्थरत्नसे बड़ी सहायता मिल सकती है। उसकी बानगी यह है—

"हौराखूं ललचान लिवासी,
परचो पूंजो न मरमी।
नागरिदास बिहारै चाहत
बिन अनन्य धन धरमी।
छकी छविसों पलकें वह बरनी,
नैननुमें मुसकाते।
अपनी अपनी सौंज साजि सब,
बेगि चलोरी।
सोंधें सुरङ्ग अबीर अरगजा,
नैनरस रङ्ग ठरें री।"

इनके शिष्य श्रीसरसदासजीके "हरिगुण काव्यकोषमें" उज्वल शृङ्गाररसभरे हिन्दीके ग्रन्थरत्न चमकीले, चटकदार बहुत हैं। जैसे—"राजत अलकलड़ी अलबेली। शिथिल अंग रतिरंग पीय संग जोवन प्रान नवेली। लटकि लटकि उर सामल तनमन, मिलि मदन मुदित जिमि खेलो। सरसदास नैननु सचुपावत, विहरत गर्व गहेलो।"

इस महानुभावके उत्तराधिकारी वैष्णववीर श्रीनरहरिदासजी 'महा हिन्दी कविके' उपाधिधारी थे। जिन्होंने धर्मविरोधी औरङ्गजेबको अपनी जोशीली हिन्दीकवितासे खूब ही छकाया और हिन्दी भाषाका प्रवेश शाही दरबारमें करवाया। इनकी कवितामेंसे सारङ्ग रागका एक पद है—

"जाको मनमोहन दृष्टि परे।
सो तो भयो सामनको आंधो सूझत रङ्ग हरे। जड़ चैतन्य कछू नहिं समुझत जित देखे तित श्याम खरे। विह्वल विकल

सम्हार न तनकी घूमत नैना रूप भरे। करनि अकरनी दौड सुधि भूले विधिनिषेध सब रहे धरे। नरहरिदास भये जे बावरे प्रेम प्रवाह परे"

अब मैं सनाढ्य चूड़ामणि श्रीरसिकदेवजूके हिन्दी काव्यकी रसीली नशीली जोशीली चुपैलो कुछ बानगी भेंट कर अपने लेख-संक्षिप्त करना चाहता हूं।

"जावक जुत जुग चरण ललीके।

अद्भुत अमल अनूप दिवाकर मोहन-मानस कंजकर्ल के। मंजुल, मृदुल, मनोहर, सुखनिधि सुभग सिंगार निकुंजगलीके। सुरतरु कामधेनु चिंतामनि, भगवत रसिक अनन्य अलीके।"

"लखी जिन लालकी मुसक्यान।

तिनहिं बिसरो वेदविधि जप योग संयम ध्यान। नेम व्रत आचार पूजा पाठ गीता ज्ञान। रसिक भगवत दृग दई असि रोंचिके सुख म्यान।"

इत्यादि, भाव भावुक हिन्दी रसिक विद्वान ही समझ सकते हैं।

इस भेदाभेद मतवाले निराले वैष्णव घरानेमें श्रीललितमोहिनीजू, श्रीपितावंरदेवजू आदि बड़े बड़े महात्मा पुरुष हिन्दी-साहित्यपर वैष्णव धर्मका प्रभाव जमा गये हैं। जिनकी कविता रूप हमारी माता संस्कृत और हिन्दी रूप पुष्ट स्तनोंमेंसे धर्मदुग्धको पिलाती हमें युवक वीर बनाकर काम क्रोध लोभ मोह कलह ईर्षा आलस्य अनुद्यम पारतन्त्र्य आदि शत्रुओंके जीतनेको ललकारकर उत्तेजित कर रही है।

इसी उक्त मतका भेद एक अचिन्त्यभेदाभेद मत है। इस दलके भी वैष्णवग्रन्थ हरिभक्तिरसचुचैमा मीठे रसगुल्लेसे रसिकोंको तृप्त करते हैं। इसी प्रकार अन्य श्रीव्रजवासीदासजी आदि व्रजविलास आदि हिन्दी-भाषाके ग्रन्थकर्त्ता बहुत हुए हैं, जिनका हिन्दी साहित्य आदित्य (सूर्य) की भांति अविद्या तिमिरको नाश कर ज्ञानभक्तिरूप कमलोंको वैष्णवमत तालाबमें खिलाय कर रसिकमनभ्रमरसमुदायको सुखी कर रहा है।

इस समय लेखविस्तारभयसे मैं उन महामान्य महानुभावोंका नाममात्र सूचन करनेमें भी असमर्थ हूं। तथापि इतना तो अवश्य कहूंगा कि, इस निकुंज-सेवी भावुक दलका अनुभूत, स्वतन्त्र-लेख और आर्षधर्मग्रन्थ अनुवादलेख इस समय भारतमें ५० लक्षसे कम नहीं हैं। यह सब खोजीको खोजकरनेपर मिलसकते हैं। परन्तु रिझावन देवीकी कृपासे कुछ कुछ उक्त हिन्दीसाहित्य व्रज-भूमिसे निकल सुचित्त होकर, महियर, चरखारी आदि नरेशोंके भाण्डारमें प्रलय समय शेषशायीके सदृश न जाने कितने कालके लिये पांव पसार सोय रहा है। तथापि संतोष इतनाही है कि, किसी परिचित झिचौलियाकी सहायतासे उसकी निद्रा दूर होसकती है। मयपालनरेशके निरपराध पुस्तकसमूहकी भांति दण्ड समझकर उक्त साहित्यको देशनिकारेका दण्ड नहीं मिला है।

अब श्रीविष्णुस्वामीमत परितोषक श्रीवल्लभाचार्यजी सहित उनके वंशभूषण गोस्वा-

मी स्वरूपोंके हिन्दीसाहित्यकी सूचना मात्र निवेदन करता हूं। श्रीवल्लभाचार्यजीकी कविता जैसी संस्कृतमें उच्च कोटिकी है वैसी ही व्रजभाषा काव्य भी बहुत ही अनूठा है। इस कुलमें प्रथम लेखक स्वयं श्रीवल्लभाचार्य हैं और उनके वंशप्रवर्तक गोस्वामी श्रीविट्ठलेशजी निज पुत्रोंसहित हिन्दीसाहित्यके बड़े ही सुलेखक हुए हैं। जिनके रचित सदाचारदर्पण, व्रजयात्रा, नित्योत्सवपद, वार्षिकोत्सव, सेवाप्रकार, व्यंजनविधान नित्यकीर्त्तन आदि ग्रन्थ, रसिकोंको रसमय करदेते हैं। इस कुलमें श्रीहरिरायजीकी ५२ वार्त्ता आदि ग्रन्थोंके गद्य बड़े ही गमकदार विचार, साहित्यसारयुक्त मेरी बुद्धिसे प्रशंसाके बाहर हैं। इस कुलके महाकवि अष्टसखा, स्वीरस्वामी, कुम्भनदासजी, परमानन्दजी आदि हुए हैं जिनका हिन्दीसाहित्यसिंह मनुष्यभाषावनमें गर्जना करता हुआ अपने द्वेषीदलवनचरोंके छक्के छुड़ाय रहा है।

इस उक्त वैष्णव घरानेके हिन्दी साहित्यशब्दरत्नोंकी सिंदूखी खोलकर दिखानेमें लेखविस्तारभयसे मैं असमर्थ हूं। तथापि श्रीसंप्रदायकी उपासनामाताकी गोदमें खेलते हुए प्रसन्न परिपुष्ट हिन्दीसाहित्यरूपी मनोहर निर्भय बालककी सदांकी बांकी झांकी कराये बिना भी नहीं रहसकता।

यह हमारा प्यारा वंशयशोधारी उक्त बालक श्रीवैष्णवग्रन्थसदनमें प्रचण्ड प्राकृतभाषिक आदि बालकोंके खिलोने छीन कर आप ही स्वतन्त्र क्रीड़ा कर रहा है और नये नये शाखागण बना बना भारतमातकी रिझा रहा है। इसकी शाखा पूर्वोक्त वैष्णववर श्रीतुलसीदासजीके षोड़श ग्रन्थ, श्रीरामसनेही रघुनाथदासजी कृत विश्राम सागर, अग्रदासजी कृत भक्तमाल, कवीर दासजीके ग्रन्थ समुदाय आदि बहुत हैं जिनने अपने भारतसदनसे बाहर भी विदेश गलियोंमें धूम मचा दी है।

और यह हिन्दूमनोरञ्जन हिन्दूधर्मका प्यारा हिन्दी साहित्य पुत्र यद्यपि अवस्थामें बहुत पुराना है, तथापि अपने वृद्ध देवताओंके दुलारसे दुलराया हुआ श्रीसनकादिकों की भांति बालक बन रहा है। इस हमारे वंशरखवारे प्यारे बालकपर वैभाषिक तोतले जरैलाओंने जरापनसे कुछ वैष्णवधर्म, ग्रन्थ शाखाओंको इधर उधर भजायके इसके गहने-पाते उतार इसपर धूल डाल दी है। इससे यह मैलासा दीखने लगा है। अतएव मेरी प्रार्थना है, हे हिन्दू भाइयों! यदि आप इस उक्त बालकसे निजवंशवृद्धि समृद्धि चाहते हो और अपने बालकोंको इसके साथ प्रेमसे मित्र बनाया चाहते हो, तो अब केवल वैष्णवधर्म प्रभावमात्रसे संरक्षित इस बालकको परस्पर जलप्रेमसे स्नान कराय विद्याके गहने पहराय निज पुत्रोंको इसके सच्चे सखा बनाय इसकी सुकुमार बहारदार मीठी बोलीसे निज मनको रिझाय, छातीसे लगाय, प्यार दिखाय, हृदयसे निज कण्ठका कठला बना लीजिये, फिर इसके प्रतापसे श्रीहरिभक्ति धर्मरसके निराले प्याले पीजिये। इसको की हुई रक्षाके निहोरसे श्रीवैष्णवधर्म प्रभावके कृतज्ञ भी हूजिये और पारितोषिकमें श्रीवैष्णवधर्मको धन्यवाद भी दीजिये।

(४)

तुलसीदासकी विशेषता।

लेखक—

श्रीयुत पण्डित प्यारेलाल मिश्र।

गुसाईंजीकी विशेषता दिखलानेके लिये गुसाईंजी सरीखा विद्वान होना चाहिये। मुझमें वह योग्यता नहीं, न मैं उनके गूढ़को अधिक समझ सकताहूं। मैं साधारणत: दो एक बातोंके विषयमें कहना चाहता हूं। मैं हिन्दीलेखक नहीं, कोई विद्वान नहीं। इसलिये जो भूलचूक इस लेखमें हो, वह कृपाकर क्षमा की जाय।

दीनता।

गुसाईंजी एक अद्वितीय कवि थे, इतनेपर भी उनमें अहमत्व लेशमात्र न था।

"कवि न होंउ नहिं चतुर कहाऊं।
मति अनुरूप रामगुण गाऊं॥"

बहुधा ग्रन्थकर्त्ता और कवि लोग किसी न किसी बहाने अपनी योग्यताका परिचय दे दिया करते हैं। पर गुसाईंजीमें यह बात न थी। उनने अपने गुणोंको प्रकट करनेकी अपेक्षा छिपाया है।

"जो अपने अवगुण सब कहहूं।
बाढ़े कथा पार नहिं लहहूं।"

बस दीनताकी इससे हद है। इसपर भी यदि कोई उनकी कवितामें दोष निकाले या भावमें भङ्ग डाले, तो उसकी नादानी है।

रामायणका प्रभाव तथा भाषा।

गुसाईंजी सच्चे हिन्दीहितैषी थे। उनकी बराबरीका न कोई हिन्दीहितैषी हुआ है, न होगा। उनकी केवल एक ही पुस्तक सहस्रों उपदेशकों और सभाओंका काम दे रही है। विश्वविद्यालयोंमें उसका प्रचार आप ही आप हो रहा है। गुसाईंजीकी भाषा बहुत सरल, सरस और स्वाभाविक है। उसमें बनावट और गढंत कहीं नहीं है। यही कारण है कि, रामायण आज सर्वप्रिय बन रही है। तिसपर भी गुसाईंजीने दीनता जाहिर की है;—

"भाषा भनित मोर मति थोरी।
हंसिबे योग हंसे नहिं खोरी।"

प्रभाव।

रामायणपर लोगोंकी असीम भक्ति है। उसका प्रभाव धर्म्म, कर्म्म, नीति आदिपर गहरा और अमिट पहुंचा है। सैकड़ों बार पढ़नेपर भी उसपर प्रीति कम नहीं होती। उसने सम्प्रदायसम्बन्धी एकता उत्पन्न की है। यह उसीका प्रताप और प्रभाव है कि, उत्तर भारतमें सम्प्रदायी झगड़े नहीं पाये जाते। दक्षिण प्रान्तमें जिस दृष्टिसे एक सम्प्रदाय दूसरेकी ओर देखता है, वह सबको विदित है। शाक्त और शैव एक दूसरेके जानी दुश्मन हैं। एक दूसरेकी छायाको भी अपवित्र समझता है। एक दूसरेकी बोलीको भी सुनना भ्रष्ट होना मानता है। पर भाग्यवश ये झगड़े उत्तर भारतमें नहीं हैं। "आठ कनौजिया नौ चूल्हे" तो वैसे ही थे। यदि सम्प्रदायसम्बन्धी झगड़े भी होते, तो न जाने आधे भारतवर्षकी क्या दशा होती। इस विषयमें न बाइबिल, न कुरान बराबरी कर सकती है। वह इन झगड़ोंसे बाहर नहीं हैं।

हिन्दी साहित्यकी शोभा रामायण द्वारा है। विना उसके साहित्य फीका पड़जाता, रोचकता और निर्जीवताका ठिकाना न रहता, रामायणकी उपमाएं और कहावतें कहां नहीं पाई जातीं? यहांतक कि, मामूली बातचीतमें अपढ़ स्त्री पुरुष भी उनका उपयोग करते हैं। यथा;—

"सुर नर मुनि सबकी यह रीती।
स्वारथ लागि करैं सब प्रीती॥"
"धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखियहि चारी॥"
"जहां सुमति तहां सम्पति नाना।
जहां कुमति तहां विपति निदाना॥"
"ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़नके अधिकारी॥"
"नारि मुई गृह सम्पति नासी।
मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी॥"
"बिछुरत एक प्राण हर लेहीं।
मिलत एक दारुण दुख देहीं॥"
"यहि तन सतिहि भेंट अब नाहीं।
शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥"
"जस दूलह तस बनी बराता।"
"समरथ कहं नहिं दोष गुसाईं।
रवि पावक सुरसरिकी नाईं॥"
इत्यादि।

उपमाएं।

गुसाईंजीकी उपमाएं भी अनूठी और उत्कृष्ट हैं। हिन्दी साहित्य उनसे भरा है। उदाहरणार्थ कुछ यहां दी जाती हैं;—

"सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दशनन महं जीभ बिचारी॥"
"भक्ति हीन नर सोहै कैसे।
बिनु जल बारिधि देखिय जैसे॥"
"अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसत धन जैसे॥"
"ऊसर बरषे तृण नहिं जामा।
सन्त हृदय जस उपज न कामा॥"
"प्रभु पद महं माया सब काटी।
जिमि रवि उदय जाहिं तम फाटी॥"
"भक्तिहीन गुण सुख सब ऐसे।
लवन बिना बहु व्यञ्जन जैसे॥"
"नारि कुमुदिनी अवध सर,
रघुपति विरह दिनेश।
अस्त भये विकसत भई,
निरखि राम राकेश॥"

तर्क।

गुसाईंजीकी कवितामें तर्ककी कमी नहीं है। इस बारेमें एक दो उदाहरण बस होंगे;—

१—राम निकाई रावरी,
है सबहीको नीक।
जो यह सांची है सदा,
तौ नीको तुलसीक॥

२—जाने बिनु न होय परतीती।
बिनु परतीत होय नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई।
जिमि खगेश जलकी चिकनाई॥

उपदेश नीति।

नाथ बैर कीजे ताहीसों।
बुधिबल जीति सकिय ताही सों॥

अथवा

"प्रीति बैर समान सन,
करिय रीति अस आहि"
"मातु पिता प्रभु गुरुकी बानी।
बिन हि बिचार करिये शुभ जानी।"

"नीति विरोध न मारिये दूता।"
"जो सभीत आवा शरणाई।
राखिहौं ताहि प्राणकी नाई॥"

उक्त उदाहरणोंमें कितने गूढ़ तत्व भरे हैं। उनपर टीका करना व्यर्थ है।

मित्र, साधु, असाधु, स्वामी,
सेवक, इत्यादिकी भक्ति,
कर्त्तव्य इत्यादि।

गुसाईंजी विलक्षण पुरुष थे। रामायण कुल सद्ग्रन्थोंके मूल सिद्धान्तोंका अर्थ है। उसमें सब तरहके स्त्री पुरुषोंके लक्षण इत्यादिका चित्र खींचा है। थोड़ेसे उदाहरण यहां दिये जाते हैं;—

मित्र।
"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हें बिलोकत पातक भारी॥"

स्त्री।
"नारि स्वभाव सत्य कवि कहई।
अवगुण आठ सदा उर रहई॥"

पण्डित।
"पण्डित सोइ जो गाल बजावा।"

सेवकभक्ति।
"प्रत्युपकार करों का तोरा।
सनमुख होय न सक मन मोरा॥"
"सुनु कपि ताहि उऋण मैं नाहीं।
देखहु करि विचार मन माहीं॥"

जीविका।

रामायण द्वारा सहस्रों पण्डितोंकी जीविका चल रही है। लोग रामायणका पाठ कराते हैं। भक्तिपूर्वक सुनते हैं। समाप्त होनेपर पण्डितजीका खूब सत्कार करते हैं। बहुतसे गरीब ब्राह्मण बल्कि मुसलमान लोग भी रामायणको बेचकर अपना उदर भरते हैं।

गुसाईंजीने इस अपूर्व ग्रन्थ द्वारा हिन्दू मुसलमान सबहीका उपकार किया है। बाइबिल और कुरानका यह हाल नहीं है। उन्हें हिन्दू लोग नहीं बेचते, न उनकी इतनी बिक्री है।

रामायणकी खराबियां।

स्वार्थी लोगोंने रामायणकी बड़ी खराबियां कर रखी हैं। जो जिसके जीमें आता रामायणका मनमाना अर्थ करता है। ऐसे लोग सोचते होंगे कि, हम गुसाईंजीका गौरव बढ़ा रहे हैं। पर मेरी अनुमतिमें (?) उनकी यह बड़ी भूल है। ऐसा करनेसे वे लाभकी अपेक्षा हानि पहुंचा रहे हैं। अर्थकी ऐंचातानी और तोड़मरोड़से वे लोग रामयणपर घोर अत्याचार कर रहे हैं। रामायण धर्मपुस्तक है। यह लोकहितार्थ लिखी गई है। अतएव उसका अर्थ भी सरल और स्वाभाविक है। स्वयं गुसाईंजी कहते हैं;—

"सरल कवित कीरति विमल,
सोउ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु,
जो सुनि करहिं बखान॥"

रामायणमें क्षेपकोंकी बड़ी भरमार है। वह दिनदिन बढ़ती जाती है। डर लगता है कि, कुछ कालमें उसकी दशा महाभारतकी तरह न हो जाय। बड़ा अन्याय हो रहा है। बड़ी स्वतन्त्रता दी जा रही है। धीरे धीरे रामायणसे भक्ति उठ जायगी। धर्म और देशको बड़ी हानि पहुंचेगी। क्षेपक घुसेड़नेवाले रामायणके पूरे शत्रु हैं। वे गुसाईंजीकी बराबीर

करना चाहते हैं। आश्चर्य नहीं कि, धीरे धीरे खड़ी बोलीको कविताको भी स्थान मिलने लगे। गुसाईंजीके भक्तोंको उचित है कि, वे क्षेपकवाली रामायणको हाथसे न छुएं, न दूसरोंको छूने दें। प्रेसाध्यक्षोंका काम है कि,वे ऐसी रामायणको कभी मुद्रित न करें। बस, आपही आप सब सुधार हो जायगा।

सब कोई जानते हैं कि,रामायणमें केवल सात काण्ड हैं। पर किसी महात्माकी कृपासे आठवां काण्ड भी पैदा होगया है। इस पांचवें वेदको भी रामायणमें स्थान देना उचित नहीं। यदि ऐसा न किया जायगा, तो क्षेपकोंकी भांति काण्डोंकी संख्या बढ़नेमें कोई शंका नहीं।

किसी किसी महात्माने बालकाण्डमें श्रीरामचन्द्रजी और उनके भ्राताओंकी लग्न-कुण्डली भी घुसेड़ दी है। मानों ये लोग जन्मसमय जीवित ही थे। यही दशा चित्रोंकी है। हरएक काण्डमें मनमाने चित्र छपे हैं। शायद ये लोग केमरा लिये पीछेपीछे फिरा करते थे।

कोई कोई बुद्धिमान कहते हैं कि,रामायणकी चौपाइयां और दोहे सिलसिलेवार नहीं हैं। अतएव आठ आठ चौपाई बाद दोहे होने चाहिये।

यह सब धृष्टता है। इससे एक पवित्र महात्माका निरादर होता है। उसकी अयोग्यता प्रकट होती है। आशा है, ये खराबियां दूर करनेका उपाय किया जायगा।

उपसंहार ।

आश्चर्यकी बात है कि,गुसाईंजी सरीखे महात्माके लिये आजतक भारतमें कोई स्मारक चिन्ह नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि, गुसाईंजी प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें विराजमान हैं। पर इतनेसे ही उनका सत्कार पूरा नहीं हो सकता। इससे पूरी कृतज्ञता प्रकट नहीं होती। औरङ्गजेबी मसजिदकी भांति काशीमें कौन सा स्थान है, जो दूरसे कह दे कि, वह गुसाईंजीका स्मारक है। क्या उनके नामका कोई मेला भरता है अथवा वार्षिकोत्सव होता है? अन्य देशोंके विद्वानोंसे हम गुसाईंजीका मुकाबला नहीं करना चाहते। पर इतना अवश्य कहेंगे कि, पाश्चिमात्य देश अपने विद्वानों और वीरोंका आदर करने और उनकी कीर्त्ति चिरस्थायी रखनेमें हमसे बहुत आगे बढ़े हैं। हमें उनसे इस बातकी शिक्षा लेनी चाहिये। शेक्सपियरकी यादमें स्ट्राफर्ड आन एवन' (Stratford on Avon) पर प्रति वर्ष भारी मेला भरता है। यूरोप और अमेरिकासे यात्री आते हैं। बड़े चाव और भक्तिसे शेक्सपियरके स्थानको देखते हैं। उसको हराभरा रखनेके लिये आर्थिक सहायता देते हैं। जबतक पृथिवी है, तबतक वह स्थान है। कहिये, गङ्गा तटपर गुसाईंजीके नामका कौनसा मेला भरता है? कितने यात्री वहां जाते हैं? लन्दनके वेस्टमिनिस्टर एबी (Westminister Abbey) और पैरिसके पैंथियोन (Pantheon) की भांति भारतीय विद्वानोंके लिये कौन कौनसे भवन हैं? हालमें विलायती कवि(Shelly) की

एक चिट्ठी कई सहस्र रुपयेमें बेची गयी है। शेक्सपियर, मिल्टन आदि कवियोंकी हस्तलिखित पुस्तकोंकी कीमत लाखोंतक पहुंची है। हमारे यहां भी कभी किसी कविता या विद्वानकी पुस्तकोंकी यह कदर हुई है? हमारी ये कमजोरियां अवनति-सूचक हैं। जिस देशमें विद्वानोंका आदर नहीं, वह कहांतक उन्नति प्राप्त कर सकता है।

---

(५)

समालोचनासे साहित्यकी लाभ।

लेखक—
पंडित गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, व्याकरणाचार्य, न्यायशास्त्री।

जिस प्रकार किसी उपवन (बाग)को स्वच्छ सुथरा बनानेके लिये कलम करनेकी आवश्यकता होती है। उसमें बहुतसे वृक्ष निकाले जाते, बहुतसे काटछांट दिये जाते, और बहुतसे यथास्थान अच्छे प्रकार सजाये जाते हैं। इसी प्रकार साहित्यरूप उपवनको सजानेके लिये समालोचनाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। समालोचक ही मालीका काम करता हुआ सुन्दर पौधोंको साहित्य उपवनमें उचित स्थान देता है। और जो उसकी दृष्टिमें खटकते हैं—साहित्य उपवनकी शोभा बिगाड़ते हुए प्रतीत होते हैं, उन्हें काटछांट करने वा उपवनसे निकाल बाहर करनेकी भी चेष्टा वह किया करता है। जिसका कि उद्देश्य केवल साहित्य-उपवनकी सुन्दरता ही सुरक्षित करना है। समालोचना ही साहित्य मार्गकी सुन्दर सड़क है। अतः समालोचनाके गणनातीत लाभ थोड़ेमें बता देना यद्यपि कुछ कठिन कार्य्य है, किन्तु शिष्टजनोंके आज्ञानुसार इस सम्बन्धमें कुछ लिखना अपना कर्तव्य समझकर यथाशक्ति चेष्टा की जाती है।

समालोचनाशब्दार्थ—

प्रथम 'समालोचना' शब्दके यथार्थ अर्थ-पर दृष्टि डालना आवश्यक है। यह शब्द 'सम्' 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'लोचृ' धातु स्वार्थणिजन्त और हेतुमण्णिजन्त दोनोंसे 'युच्' प्रत्यय करनेपर सिद्ध होता है। अतः इसका अर्थ है—'सम्यक् प्रकार सब ओरसे देखना।' न केवल स्वयं देखना, किन्तु उसी प्रकार औरोंको भी दिखलाना इस शब्दार्थके अन्तर्गत है। जिनको भगवान्ने दृष्टि दी है, वे सब ही प्राणी प्रत्येक पदार्थको देखते हैं। किन्तु इस देखनेमें और उस देखनेमें बड़ा भेद है। किसी कविने सत्य कहा है—"कहिबो सुनिबो देखिबो, चतुरनको कछु और।" हम साधारण लोगोंकी दृष्टिमें दोचार पैसेके नकली मोती और हजारों रुपये मूल्यके महार्घ मोतीमें कोई बड़ा भेद नहीं होता, मोती मोती सब एकसे ही होते हैं। तथापि उनके अवान्तर भेदों और गुणदोषोंकी जांच तो हम साधारणतया कर ही नहीं सकते। यदि साहससे करने ही लगें, तो सम्भव है, बहुतसे धनकुबेरोंका दिवाला निकलवा देंगे और बहुतसे ठगोंको मालामाल कर देंगे। सुतरां, हमारी दृष्टि उस विषयमें सम्यग् दृष्टि नहीं कही

जा सकती और हमें उस दृष्टिके भरोसेपर संसारभरको वंचित करनेका भी कोई हक नहीं है। अतः हम रत्नोंको स्वयं सम्यक् देखने और दिखाने दोनोंके अधिकारी नहीं। किन्तु सौभाग्यवश जब वह रत्न एक सच्चे जौहरीकी दृष्टिमें आता है, तो अब उसका यथार्थ मूल्य छुप नहीं सकता। अब उसके 'पानी'की परीक्षामें कोई गड़बड़ नहीं हो सकती। उसके एक एक रत्ती गुण और दोष स्वयं अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं। अब एक हजार रुपये और नौ सौ निन्नानवें रुपयेके रत्न भी एक से नहीं हो सकते। अधिक भेदकी तो कथा ही क्या? सार यह हुआ कि, उस जौहरीका रत्नोंको देखना कुछ और ही देखना है। उसकी दृष्टि उस विषयमें सम्यग् दृष्टि है। और वह औरोंको भी रत्नोंके गुणदोष बतानेका पूर्ण अधिकारी है। इस दृष्टिमें साधारण दृष्टिसे क्यों भेद हो जाता है? इसके कारणपर यदि विचार किया जाय, तो मुख्यतया दो कारण कहे जा सकते हैं—परिभाषाज्ञान और अभ्यासपाटव। प्रत्येक पदार्थ क्यों उत्तम वा अधम कहलाता है? उसकी उत्तमताअधमता किस आधारपर अवलम्बित है? इस लौकिक वा शास्त्रीय परिभाषाका ज्ञान पहले अवश्य होना चाहिये, और फिर उस ज्ञानके अनुसार पदार्थोंकी परीक्षा करनेका पूर्ण अभ्यास भी होना चाहिये। इनही दोनों कारणोंसे यह दूसरी दृष्टि जो चतुर दृष्टि कहलाती है, बनाई जाया करती है। यद्यपि इससे भी परे एक और दृष्टि है, जो वैज्ञानिक दृष्टि व दार्शनिक दृष्टि कही जाती है। जो पदार्थोंके कारण, अवस्था आदिका पूर्ण विवेक करती है, जिसके अनुसार रत्नरत्नको तो कौन कहे, कोयले और हीरेतक एक प्रतीत हुआ करते हैं। किन्तु वह व्यवहारिक मार्गसे परे होनेके कारण प्रकृतमें उपयोगी नहीं।

इस प्रकार दृष्टिके तीन भेद सिद्ध हुए—१ साधारणदृष्टि, २ व्यवहारचतुरदृष्टि और ३ वैज्ञानिक दृष्टि। इनमें आदिकी दृष्टि सम्यग् न होनेसे और अन्तकी व्यवहारपथातीत होनेसे समालोचना शब्दसे कहे जाने योग्य नहीं, किन्तु मध्यकी अर्थात् व्यवहारचतुरकी दृष्टि 'समालोचना' कहलाती है। इस दृष्टिके द्वारा वस्तुके गुण और दोषोंको पूरा तोल लेना और उसही प्रकार औरोंपर भी प्रकट कर देना समालोचकका कर्त्तव्य है। समालोचना, समीक्षा, विवेचना, परीक्षा, न्याय आदि शब्दोंका एक ही अर्थ है। यद्यपि परीक्षा, न्याय आदि शब्द प्रायः उसही स्थानमें प्रयुक्त होते हैं, जहां वस्तुसे सम्बन्ध रखनेवाला परीक्ष्य स्वयं परीक्षा करानेमें प्रवृत्त हो, वा अन्य किसी विशेष कारणवश परीक्षककी प्रवृत्ति हुई हो और सामाजिक लाभकी दृष्टिसे किसी वस्तुके गुणदोषविवेचनमें निरपेक्ष स्वतः विवेकी पुरुषका प्रवृत्त होना समालोचना है, यह इन शब्दोंके प्रयोगमें आवान्तर सूक्ष्म भेद है। इतना भी विशेष अवश्य स्मरण रहना चाहिये कि, परीक्षा आदि शब्द समालोचनाके प्रथम अर्थको भी बता सकते हैं अर्थात् स्वयं गुणदोष

विचार ही परीक्षा आदि शब्दोंका अर्थ है और समालोचना शब्दके अर्थमें औरोंपर गुणदोषोंका प्रकट करना भी अन्तर्गर्भित हो जाता है। किन्तु फिर भी स्थूलदृष्टिसे उक्त सब ही शब्दोंको समानार्थक कहनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह समालोचना वा परीक्षा नामका गुणदोषविवेचन प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें किया जा सकता है, किन्तु 'समालोचना' शब्दका व्यारसिक सम्बन्ध वाङ्मय (साहित्य)के साथ ही अधिकतया संघटित होता है। अर्थात् साहित्यके सम्बन्धमें की हुई गुणदोषविवेचनाको ही प्रायः विज्ञ लोग समालोचना शब्दसे व्यवहार करते हैं। सुतरां, स्वयं साहित्यके गुण और दोषोंको भली भांति सब प्रकारसे देखना और उसके रसिक अन्य पुरुषोंको भी अपनी बुद्धिके अनुसार दिखाना समालोचना शब्दका अर्थ सिद्ध हुआ।

दोषदर्शनपर आक्षेप।

यद्यपि किसीके दोषोंका उद्घाटन सभ्यसमाजको दृष्टिमें अच्छा नहीं समझा जाता। कोई भी सभ्यपुरुष काणेको काणा ही कहकर बोलनेके लिये तैयार न होगा। बहुत स्थानोंमें तो वह परस्पर कलहका कारण हो जानेसे अनर्थोत्पादक भी हो पड़ता है। अतएव विज्ञ पुरुषोंकी कदापि किसीके दोष दिखानेमें प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। किसी कविने सत्य कहा है कि —

"गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति॥"

अर्थात् भगवान शङ्कर जिस प्रकार चन्द्रमा और विष दोनोंको ग्रहण करते हुए पूर्व अर्थात् चन्द्रमाको शिरपर धारण करते हैं और पर अर्थात् विषको कण्ठके भीतर रोके हुए हैं। इसही प्रकार बुद्धिमान पुरुष भी चन्द्रसमान गुण और विषसमान दोष दोनोंपर दृष्टिपात करता हुआ पूर्व अर्थात् गुणको शिरनम्र करते हुए प्रशंसा करता है और दोषको केवल कण्ठके भीतर ही रोक लेता है, बाहर नहीं प्रकट करता। ऐसी स्थितिमें गुणदोषविवेचनारूप समालोचनासे सभ्य पुरुषोंका मुंह मोड़ लेना सम्भव है। तथापि व्यक्तिगत दृष्टिसे किसी पुरुषविशेषको प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें और सामाजिक दृष्टिसे साहित्यलाभके सम्बन्धमें विचार करनेपर इनका विषयभेद स्फुट हो जाता है। तात्पर्य यह कि, जहां समाजमें किसी व्यक्तिकी प्रतिष्ठाका प्रश्न हो, वा किसीके लाभका प्रश्न हो वा साधारणतः परस्पर व्यवहारका प्रसङ्ग हो वहां ईर्षा-अभिमानादिके कारण उस व्यक्तिके वा उसके साहित्यके सम्बन्धमें दोष प्रस्थापित कर उसकी प्रतिष्ठा वा लाभमें न्यूनता करना वा परस्पर व्यवहारमें वैमनस्य उत्पन्न करना विज्ञ पुरुषोंका कार्य्य नहीं हो सकता। जैसा कल्पना करिये, किसी पुरुषने कोई ग्रन्थ वा श्लोक आदि बनाया। उसके सम्बन्धमें किसी राजा महाराजा वा समाजके प्रतिष्ठित लोकोंने किसी विशिष्ट विद्वानसे सम्मति मांगी। उस ही सम्मतिपर उस ग्रंथकी वा उस ग्रंथके बनानेवालेकी प्रतिष्ठा निर्भर हो, उसे किसी प्रकारकी प्राप्ति की सम्भावना हो, वा साधारणतः

अवलोकनार्थ जहां उस ग्रन्थ बनानेवालेने ही स्वयं अपना ग्रन्थ विशिष्ट विद्वानके समीप उपस्थित किया हो, ऐसी दशामें उसके गुण मात्र ही प्रकाशित करना विद्वानका कर्त्तव्य होगा। दोष प्रख्यापित करनेसे वह ईर्षालु वा अभिमानी माना जायगा। और व्यक्तिविशेषका अपकार करनेसे वा उसका चित्त दुःखानेसे अनौचित्य भी अवश्य उसके शिरपर पड़ेगा। किन्तु जहां साहित्यकी सम्बन्धका सामाजिक प्रश्न हो, साहित्यमें उस ग्रन्थ विशेषको कौन सा स्थान मिलना चाहिये, इस प्रकारकी साहित्यरसिकोंकी जिज्ञासा है, वा स्वयं ग्रन्थकर्त्ता भविष्यत्में सावधान होनेकी गुणदोषजिज्ञासासे प्रेरित होकर अपनेसे विशिष्ट विद्वानके समीप उपस्थित है, वा स्वयं साहित्य वाटिकाका माली होनेका अभिमान रखता हुआ विद्वान अविवेकी जनों द्वारा कांटेके वृक्षको सुन्दर आम्रोपवनके मध्यमें लगता देखकर सहन नहीं कर सकता। ऐसे स्थानोंमें गुणोंके समान दोषोंकी विवेचना करना उन्हें साहित्यसेवियोंमें प्रख्यात करना भी विद्वानोंका आवश्यक कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्यका पालन न होनेसे उनकी साहित्यसेवितामें बहुत बड़ा आघात लगता है, और इस प्रकार साहित्यसेवासे विद्वानोंकी उपेक्षा हो जानेपर वह भयङ्कर परिणाम होगा कि, साहित्यसरोवर तुरन्त ही कलुषित हो जायगा। इसलिये यह विद्वानोंका ही कर्त्तव्य है कि, यथाभूत स्थितिको दृष्टि पथपर चढ़ा लेवें। जहां जैसा अवसर हो वहां उस ही रीतिसे प्रवृत्त हों। सार यही है कि, समालोचनाके वक्ष्यमाण लाभपर दृष्टि दान करते हुये उचित समालोचनासे उपेक्षा कर देना विद्वानोंको कदापि उचित नहीं हो सकता। योग्य समयपर योग्य समालोचना योग्य पुरुषों द्वारा होनेसे ही साहित्यकी योग्यता रक्षित रह सकती है। अवसरपर योग्यताके साथ की हुई समालोचना कलह उत्पन्न करनेवाली भी नहीं हो सकती। कारण पुरुषको यदि कहा जाय कि 'भाई तुम्हारे नेत्रोंमें जो यह रोग है, इसकी कुछ चिकित्सा करो' वा सावधान करनेकी दृष्टिसे किसी पुरुषके आचारोंके सम्बन्धमें गुणदोष योग्यताके साथ उसे बताया जावे, तो वह सब बात हितकर ही होगी, अनर्थोत्पादक नहीं हो सकती।

समालोचना कैसे होनी चाहिये—

इसपर विचार करते हुवे इस सम्बन्धमें फिर भी कुछ कहनेका अवसर होगा। 'समालोचना'के प्रकार—स्थूल दृष्टिसे 'समालोचना'के प्रायः तीन भेद देखे जाते हैं। किसी विषयपर अपना मत स्थिर करते हुवे उसहीके सम्बन्धमें अन्य मतोंकी परीक्षा करना एक प्रकारकी समालोचना है। हम यदि पृथिवीको गोलाकार वा घूमती हुई सिद्ध करना चाहते हैं, तो चिपटी वा स्थिर माननेवालेके मतमें क्या क्या गुण और दोष हैं इसकी विवेचना भी हमारा आवश्यक कर्त्तव्य होगा। ऐसा किये बिना 'तत्त्वनिरूपण' नहीं हो सकता। हम किस आधारपर अपने मतको ही ठीक समझते हैं? दूसरोंके मन्तव्योंसे

हमारे ग्रन्थोंमें क्या अधिक गुण है ? यह सर्वसाधारणको दिखाना अत्यावश्यक है। सम्भव है, हमारे पाठक हमारे मतकी अपेक्षा दूसरे मतोंमें ही अधिक गुण समझें। फिर सब विषयोंके गुण और दोष सबकी दृष्टिमें तो झटपट नहीं आ जाते, इसलिये जो इस ही विचारमें प्रवृत्त हो रहा है, उसको अपने परिश्रमका फलरूप गुणदोषविवेचन पाठकोंके लिये उपायन करना ही चाहिये। इस प्रकारकी आलोचना 'संस्कृत साहित्य'में बहुत अधिक है। और तो क्या 'वैदिक साहित्य' भी इस आलोचनासे शून्य नहीं। कर्मकाण्डके प्रकरणमें एक शाखावालोंने अन्य शाखाके मतकी आलोचना की है। उदित होमवादी अनुदित होमके और अनुदित होमवादी उदित होमके दोष दिखाते हैं। दैवत विज्ञानके सम्बन्धमें भी कहींकहीं ऋषियोंकी आलोचना--प्रत्यालोचना होती है। दर्शनशास्त्रोंके ग्रन्थ तो प्राय: इस प्रकारकी आलोचनासे भरे पड़े हैं। दर्शनग्रन्थोंमें पूर्वपक्षमें अन्य मतके गुण, उत्तर पक्षमें दोष और सिद्धान्तपक्षमें उस मतके साथ तारतम्य दिखानेकी परिपाटी बंधी हुई है। केवल दूसरेके साथ "अहंच त्वंच" करनेके लिये वा अपना उत्कर्ष दिखानेके लिये यह खण्डनमण्डनकी परिपाटी नहीं चली, जैसा कि आजकल बहुधा समझा जाता है। किन्तु इसका उद्देश्य है, अन्यमतकी आलोचना, जो तत्त्वज्ञानका एक प्रधान अङ्ग है। अतएव पूर्वपक्षमें अन्य मतका अच्छी तरह निरूपण करना, अपने मतकी समकक्षतामें उसके गुण दिखाना ग्रन्थकारोंकी शैली है। यह सत्य है कि, आगे कालक्रमसे ईर्षा आदि वश इस प्रकारकी समालोचनाकी परिपाटी बिगड़ गई। इसमें अन्यमतका सार न दिखाकर वा न समझकर केवल "यथा तथा" खण्डनकी दृष्टि प्रधान हो पड़ी और अपने सत्त्वोंको एक तरफ रखकर व्यक्तिगत आक्षेपोंतककी मात्रा जोर पकड़ गई। इससे अब यह परिपाटी केवल 'खण्डन-मण्डन' नामसे कहने योग्य है। इसे समालोचना' कहनेमें भी हिचकना पड़ता है। किन्तु मूलतत्त्वपर दृष्टि डालनेसे यह अवश्य समालोचना ही है, जो कि तत्त्वज्ञानके लिये नितान्त आवश्यक है। लोकमें कहावत प्रसिद्ध है कि, 'एक तरफकी बात गुड़से मीठी होती है।' दूसरेकी बातका भी ध्यान पाठकोंको दिला देना उदारताकी रक्षाके लिये आवश्यक है। अत: इस प्रथम प्रकारकी आलोचना अवश्य होनी चाहिये, किन्तु योग्य रीतिसे होनी चाहिये अर्थात् केवल अन्य मतोंके गुणदोषविवेचनपर दृष्टि रखना, मध्यस्थतासे विचार करना, अन्य मतोंको स्पष्ट दिखाना, व्यक्तिगत आक्षेपोंसे बचना, और ईर्षा आदिको उस समय चित्तमें स्थान न देना, इसमें अत्यावश्यक हैं। जो प्रथमसे ही किसी मतविशेषपर दृढ़ अभिनिवेश (आग्रह) रखते हैं, जिसके कारण अन्य मतपर योग्य रीतिसे विचार ही नहीं कर सकते, वा समालोच्य मतका ठीक ज्ञान जिनको नहीं उनको ऐसी आलोचनामें हाथ नहीं डालना चाहिये। देशकालपात्रका विचार भी इसमें अत्यावश्यक है।

दूसरे प्रकारकी समालोचना यह है जो संस्कृतके अलङ्कारग्रन्थमें भिन्नभिन्न कार्यों-की की गई है। अर्थात् दोष गुण आदिके साधारण नियम प्रदर्शित करते समय उदाहरणकी रीतिसे भिन्नभिन्न कवियोंकी भिन्न-भिन्न रचनाओंमें उन दोषगुण आदिका सम्बन्ध बताना यह भी एक प्रकारकी उन उदाहरणकाव्योंकी समालोचना हुई। वस्तुतः समालोचनाकी यह दूसरी रीति बहुत प्रशंसनीय है। साहित्यके साधारण नियम स्थिर हो जानेसे साहित्यका उपकार इससे स्पष्ट है। दोष और गुणोंके सम्बन्धसे भिन्न-भिन्न रचनाओंका तारतम्य भी स्पष्ट विदित हो जाता है। विशेष प्रशंसाकी बात इस प्रकारमें यह है कि, वैमनस्य उत्पन्न होनेका इसमें कोई कारण ही उपस्थित नहीं होता। साधारण निश्चित नियमोंपर उदाहरणकी रीतिसे आलोचना करनेमें किसीको असमंजस प्रतीत नहीं हो सकता! इस ही कारणसे संस्कृतभाषामें आलङ्कारकोंने उदाहरणोंका संग्रह प्रायः अन्यान्य काव्योंसे ही किया है, जिससे कि प्रासङ्गिक काव्योंकी आलोचना भी सम्पन्न होती गई। एक प्रकारसे अलङ्कारोंके सब ही ग्रन्थ प्रायः 'समालोचना'के ग्रन्थ कहे जा सकते हैं। क्षेमेन्द्रकी "औचित्य विचारचर्चा" तो स्पष्ट ही 'समालोचना'-ग्रन्थ है और उसमें इस ही (द्वितीय) प्रकारकी समालोचना की गई है। हिन्दीभाषाके प्राचीन आलङ्कारिकोंने उदाहरणोंकी इस परिपाटीको प्रायः अपने ग्रन्थोंमें स्थान नहीं दिया। इसका कारण सम्भवतः यही था कि, एक तो हिन्दीभाषामें सर्वाङ्गसम्पन्न काव्यग्रन्थोंकी न्यूनता रही, काव्योंकी अपेक्षा अलङ्कार ग्रन्थोंकी ही प्रचुरता हुई। एकोऽक्रमसे काव्यग्रन्थरचनाकी अपेक्षा भिन्न विषयोंपर मुक्तककविता करनेका प्रचार ही उस समय अधिक था और आलङ्कारिक भी स्वयं मुक्तककविता करनेमें विशेष रुचि रखते थे। अतः संस्कृतसाहित्यके चरम चक्रवर्ती पण्डितराज जगन्नाथने अपने 'रसगङ्गाधर'में जिस परिपाटीका अवलम्बन किया था, और 'कस्तूरी उत्पन्न करनेकी शक्ति रखनेवाला मृग पुष्पोंके परागको मनमें भी कभी स्थान नहीं देता' इस गर्वोक्तिसे जिस परिपाटीको प्रौढ़ किया था, उसका ही भाषाके सब आलङ्कारिकोंने अनुगमन किया। वे अपने नियमोंके उदाहरण भी अपने आप ही कल्पना करते गये। फल यह हुआ कि, हिन्दीभाषाका कोष इस प्रकारकी समालोचनासे भी शून्य रहा। किसी नियमका उदाहरण यत्नपूर्वक कल्पना किया जाय, इसमें 'समालोचना'की रीति घटित नहीं हो सकती। वहां गुण वा दोष यत्नपूर्वक स्थापित करना पड़ता है। स्वाभाविक उक्तिमें स्वभावतः आये हुए गुण वा दोषकी तरफ दृष्टि दिला देना ही समालोचनाकोटिमें आ सकता है। इस प्रकारकी आवश्यक आलोचनाकी ओर हिन्दीभाषारसिकोंका ध्यान अब भी आकर्षित हो, तो आनन्दका विषय होगा। अर्वाचीन एकदो ग्रन्थ इस प्रकारके बने भी हैं, किन्तु इनसे यह अभाव अभी दूर नहीं हो सकता। केवल अलङ्कार ही नहीं, किन्तु सब प्रकारके औचित्यके

नियम समयानुसार निश्चित कर उदाहरण रीतिसे प्राचीन कविताओंकी आलोचना करना इस समय हिन्दीसाहित्यके लिये बहुत ही लाभदायक होगा। हिन्दीसाहित्यकी विशृङ्खल गति इस प्रकार रुक सकती है। हिन्दीके सब विज्ञ समाजकी दृष्टि इस समयानुसारी नियमनिर्धारणकी ओर आकर्षित होनी चाहिये। समयानुसार प्राचीन नियमोंमें क्या परिवर्त्तन होना चाहिये, इसका यहां विषय नहीं है। अतः अप्रकृत कथासे विराम करना पड़ता है।

किसी एक निर्दिष्ट ग्रन्थकी वा एक रचयिताके अनेक ग्रन्थोंकी स्वतन्त्र रीतिसे गुणदोषपरीक्षा, अथवा भिन्न भिन्न रचयिताओंकी रचनाओंमें परस्पर तुलनारूपसे कीहुई गुणदोषपरीक्षा, यह सब तृतीय प्रकारकी समालोचना है।

इस प्रकारकी समालोचना 'पाश्चात्य-साहित्यमें' अधिकतर आदृत होनेपर भी 'संस्कृत-साहित्य'में प्रायः नहीं पाई जाती। जो कुछ दर्शन आदि शास्त्रों वा 'चित्रमीमांसाखण्डन' आदि अलङ्कार शास्त्रमें इस प्रकारके ग्रन्थ पाये जाते हैं, वे ईर्षा वा अभिनिवेशपूर्वक लिखे जानेसे केवल खण्डनपर ही दृष्टि रहनेके कारण समालोचनाकी श्रेणीमें गिने जाने योग्य नहीं हो सकते। अतः 'संस्कृत साहित्य'की उन्नतिके समयमें इस प्रकारकी समालोचनाकी परिपाटी ही नहीं थी, यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि टीकाकार भी स्थानस्थानपर गुणदोषविवेचन किया करते हैं, किन्तु स्वतन्त्र रीतिसे समालोचनापर उन लोगोंकी दृष्टि नहीं रहती।

जब 'संस्कृतसाहित्य'में ही यह अवस्था है, तो हिन्दीभाषाका साहित्यकोष इस आलोचनासे शून्य है, यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या? हां, इङ्गलिशसाहित्यके विद्वानोंकी दृष्टिमें यह रीति 'समालोचना' कहाने योग्य है। अर्थात् इङ्गलिशसाहित्यमें इस प्रकारकी आलोचनाकी ही बड़ी धूम है। इस समालोचनाकी वहां बहुत बड़ी उन्नति हुई है। अतः इसकी परिपाटी हमें 'इङ्गलिशसाहित्य'से ही सीखनी होगी। सार यह कि, 'हिन्दीसाहित्यमें' किसी भी प्रकारकी 'समालोचना'के ग्रन्थ नहीं पाये जाते, जो कि साहित्यका एक आवश्यक अङ्ग है।

समालोचनाके लाभ—

अब हम सङ्क्षेपसे 'समालोचनाके लाभ, प्रदर्शित कर उनपर पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित करना चाहते हैं। 'समालोचना'का प्रथम और मुख्य लाभ है, 'साहित्यपरिष्कार'। प्रत्येक भाषाका साहित्य उन्नत दशामें रहना चाहिये, उसके अङ्गोंमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होनी चाहिये, यह प्रत्येक तत्तद्भाषाका रसिक और हितैषी अवश्य मानेगा। किन्तु यदि योग्य समालोचना न हो, तो साहित्यके शनैः शनैः हीनदशामें चले जानेका बहुत बड़ा भय है। समालोचक सिंहोंके भयसे अल्पयोग्यतावाले कुरङ्ग साहित्यवनस्थलीके मुख्य स्थानोंको अधिकृत नहीं करने पाते, और वस्तुविद्गजोंको भी अपनी स्वाभाविक 'गजनिमीलिका' छोड़नी पड़ती है। यदि निर्गन्ध वा दुर्गन्धि कुसुम 'पक्षपात'-कलु-

-चित दृष्टिसे प्रधान स्थानोंमें पिरोये जावें (उन्हें ही ऊंचा स्थान दे दिया जाय), तो धीरेधीरे ऐसे ही कुसुमोंका बाहुल्य और प्रधानता होनेपर "साहित्यमाला"की कैसी शोचनीय अवस्था होगी, इसपर विज्ञ पाठकोंको अधिक कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। एक यही क्या, प्रत्येक व्यावहारिक, सामाजिक, लौकिक और पारलौकिक कार्योंमें किसी प्रकारका भय अवश्य रहना चाहिये। किसी प्रकारका भय न होनेपर उच्छृङ्खल स्वतन्त्रताका परिणाम किसी भी विषयमें उत्तम नहीं हो सकता। जैसे व्यावहारिक कार्योंमें राजा आदि शासकोंका, सामाजिक कार्योंमें समाजवड़ोंका, पारलौकिक कार्योंमें अन्ततः ईश्वर आदिका भय रहना अत्यावश्यक होता है। इस ही प्रकार साहित्यमें 'समालोचना' ही भीतिद्वारा मर्यादाकी रक्षा करा सकती है। समालोचक ही साहित्यकी 'दण्डनीति'का कर्णधार है। यदि समाजमें 'खल', 'गुड़' एक भाव माने जावें, तो विज्ञ पुरुष भी उपेक्षावश अच्छे ग्रन्थ उपस्थित करनेमें प्रवृत्त न हों। वैज्ञानिक, दार्शनिक, धार्मिक आदि विषयोंमें तो उच्छृङ्खलतासे बहुत ही बुरी दशा होती है। इनके दृष्टान्त भी हमारे लिये परोक्ष नहीं है। आज जो धार्मिक विषयोंमें धर्मपिपासु, किन्तु धर्मज्ञानहीन समाजको भेड़ोंके झुण्डकी तरह नेता लोग जिधर चाहें उधर लेजा रहे हैं, यह 'धार्मिक साहित्य'की समालोचनामें की गई उपेक्षाका ही स्पष्ट निदर्शन है। परन्तु, तात्पर्य यह कि, समाजके सर्वसाधारण सब विषयोंमें अभिज्ञता नहीं रख सकते। उनके द्वारा 'अपूज्यपूजा' और 'पूज्यपूजाव्यतिक्रम'का बहुत सम्भव रहता है, इसलिये सब ही विषयोंमें विषयाभिज्ञ रागद्वेषशून्य समालोचक अवश्य होने चाहियें, जिनके द्वारा समाजको यथार्थ तत्त्वतक पहुंचनेमें सहायता प्राप्त हो सके और सब ग्रन्थ आदि साहित्यमें उचित ही स्थान पा सकें। इससे सब लोग सदा उन्नत साहित्यके ही ग्रन्थमें सचेष्ट रहेंगे और साहित्यकी अधोगतिके स्थानमें निरन्तर उन्नति ही होती रहेगी। एक किसी पुस्तककी आलोचनासे उस ही पुस्तकका परिशोधन हुआ, यह कभी ध्यान नहीं करना भी चाहिये। उस पुस्तकके गुणदोषोंकी विवेचनासे अन्यान्य पुस्तक रचयिताओंको भी वैसे गुणों और दोषोंकी ओर ध्यान देनेका पूर्ण अवसर मिलता है। अतएव प्राचीन ग्रन्थोंकी समालोचना भी फलशून्य नहीं, प्रत्युत प्रचलित ग्रन्थोंकी गुणदोषपद्धतिपर ध्यान देते रहनेसे गुणदोषोंके समझनेका मार्ग अति सरल हो जाता है। और इस प्रकार विज्ञ पाठक अपनी रचनाओंमें गुणोंके समावेश और दोषोंके निराकरणका पूर्ण प्रयत्न करते रहते हैं।

इस ही प्रकार समालोचनाका एक दूसरा प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है, "साहित्याङ्गोंकी पुष्टि"। प्रत्येक औचित्य और अनौचित्यपर, जब विज्ञ समालोचकोंकी विचारधारा प्रवृत्त रहती है, तो वही विद्वानोंकी विचारधारा क्रमशः नियमरूपमें परिणत होती जाती है। यह

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, साहित्यके नियम अपरिच्छिन्न होते हैं। उचितता और अनुचितताकी इयत्ता (हदबन्दी) नहीं हो सकती। साथ ही इन औचित्यके नियमोंमें समयानुसार परिवर्त्तन भी होता रहता है। मेरे एक पद्यकी आलोचना करते हुये एक विज्ञ मित्रने कहा था कि, इसमें नितान्त पुरानी बातोंका समावेश हुआ है जो कि आजकल नहीं देखी जाती। आजकलकी सभ्यतामें 'शत्रु खड्गसे नहीं मारे जाते और उनके शिरोंपर रत्नभूषण भी नहीं होते, एवं उनकी स्त्रियोंके अश्रुजलसे कस्तूरी-तिलकोंके धुलनेका वर्णन भी समयानुसार अस्वाभाविक है।' अस्तु, तात्पर्य्य यह है कि, सामयिक सभ्यताके अनुसार साहित्यके औचित्य नियमोंमें परिवर्त्तन करना आवश्यक होता ही है। यह नियम-परिष्कारण समालोचनाओंके द्वारा समयानुसार अच्छे प्रकार हो सकता है। नियम-निर्धारक विद्वत्समाज ही होता है और वे ही प्रसिद्ध विद्वान 'समालोचक' पदको अलंकृत करनेवाले होने चाहियें। समालोचनाओंद्वारा नियमनिर्धारणका काम अच्छी तरहसे हो जाता है। इतना ही नहीं, किन्तु उस रीतिसे उन नियमोंका हृदयंगत कर लेना भी सर्वसाधारणके लिये अति सुगम होता है। अत: साहित्यके अङ्गोंकी पुष्टता भी समालोचनाका प्रयोजन सिद्ध हुआ।

समालोचनाका तीसरा लाभ यह है कि, समालोचनाके द्वारा साहित्यकी ओर सर्व-साधारणकी दृष्टि विशेष प्रकारसे आकर्षित की जाती है। जो लोग कार्य्यान्तर व आलस्य आदिवश साहित्यविनोदके लिये बहुत कम समय अपना निकाल सकते हैं, वे भी आलोचनाप्रत्यालोचनाओंके द्वारा इतने आकृष्ट होते हैं कि, समालोच्य साहित्यमें लीन से देख पड़ते हैं। गुणदोषविवेचनामें यह स्वाभाविक गुण है कि, उस ओर सर्व-साधारणका चित्त स्वभावत: अधिक खिंचता है। प्राचीन साहित्यका भी जब समालोचनाओंके द्वारा अधिकतर प्रचार हो जाता है, तो नव्यसाहित्यके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या। नव्य साहित्यके प्रचारका एकमात्र उत्तम साधन समालोचना ही है। अहा! आज हमारी इस हीन दशा और अल्पज्ञताके समयमें भी कितने अच्छे २ ग्रन्थ लिखे जाते हैं, कितने उत्तम विद्वान् अपना समय सांसारिक सुखोंसे बचाकर इस कार्यमें व्यय करते हैं। किन्तु जहां एक तरफ उनको इस बातका मार्मिक दु:ख रहता है कि, उनकी उक्ति सुननेवाला कोई नहीं, उनके परिश्रमको लक्ष्य करनेवाली दृष्टिका अभाव है, तहां कुछ इन गिने विद्याव्यसनियोंके अतिरिक्त सर्वसाधारण उनके परिश्रमके फलरूप उत्तम पदार्थोंके ज्ञानसे वञ्चित रहते हैं। किसी कविकी यही उक्ति चरितार्थ होती है कि,—

निरर्थकं जन्म गतं नलिन्या
यया न दृष्टं तुहिनांशुविम्बम्॥
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव।
यत: प्रबुद्धा नलिनी न दृष्टा ॥१॥

अर्थात् कमलिनीने कभी सुधांशुके दर्शनका आह्लाद प्राप्त नहीं किया, अत: उसका

जन्म निरर्थक गया, इधर चन्द्रमा भी अपने साम्राज्यके समय प्रफुल्लित कमलिनीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त न करसका, अतः उसका भी जन्म एक प्रकार निरर्थक ही है। यही दशा यहां होती है कि, साहित्यरसिकचन्द्र सुविज्ञोंकी कृतिरूप कमलिनीका दर्शनसुख प्राप्त नहीं करसकते और वह कृतिकमलिनि गुणग्राही सहृदयोंके सम्मुख प्राप्त न होनेसे वञ्चित रहती है। इस अभावको मिटाकर साहित्यवाटिकाका सौरभ सर्वत्र फैलानेवाली यदि कोई है, तो समालोचना ही है। समालोचनाके द्वारा गुणदोषोंका परिचय पाकर हठात् सर्वसाधारण उस ग्रन्थके देखनेमें प्रवृत्त होते हैं। और अपनी कृतिके योग्य पुरुषोंकी दृष्टिमें आने मात्रसे अपनेको कृतकृत्य मानते हुवे ग्रन्थकार अधिकाधिक उत्साहसे नवीन ग्रन्थ लिखनेमें प्रवृत्त होते रहते हैं। किसी ग्रन्थकर्त्ताके दोषोंका उल्लेख यदि कोई योग्य पुरुष योग्यतासे उसके सामने ही करे, तो उदार ग्रन्थकर्त्ताको इतना दुःख दोषश्रवणसे न होगा, जितना कि उसे इस बातसे आनन्द होगा कि, मेरी कृतिपर योग्य पुरुषोंका दृष्टिपात तो होता है। अपने परिश्रमका फल किसी योग्य पुरुषकी दृष्टिमें न आनेका दुःख दोषश्रवणके दुःखसे कहीं अधिक बढ़कर हैं। बहुतसे विज्ञ इस ही दुःखसे हताश होकर आगेको साहित्यसे मुख मोड़ बैठते हैं। ऐसी दशामें वे यदि अपनी कृतिके गुणदोषोंका आन्दोलन समाजमें सुनें, तो इसमें उनका चित्त कितना आह्लादित होगा, इसका अनुभव वे स्वयं ही करसकते हैं, किसीके कहनेसे उसका ज्ञान नहीं होता। तहां भी विज्ञ समालोचकोंके मुखसे अपनी कृतिके सम्बन्धमें कुछ सुननेकी इच्छा किसे नहीं रहती? क्या ही मार्मिक उक्ति है—

सरस कविनके हृदयको,
बेधत है सो कौन?।
असमझवार सराहिबो,
समझवारको मौन।

कथा अप्रकृत होती जाती है। तात्पर्य यही कि, साहित्यका प्रचार होनेमें समालोचना बहुत बड़ी सहायक है और इसके प्रचारसे साहित्य उन्नत होता है।

समालोचनाका चौथा लाभ है 'साहित्यके गूढ़ार्थोंका विकाश।' चतुर ग्रन्थकर्त्ता अपने ग्रन्थोंमें जोजो रत्न छुपाकर रखते हैं, उन सबके ज्ञानके लिये उस प्रकारका चातुर्य ही 'कुञ्जी' है। वह चातुर्य सर्वसाधारणके पास नहीं रहता। और स्वयं ग्रन्थकर्त्ताके पास इसके लिये कोई उपाय नहीं है। अतः समालोचक ही अपनी बुद्धिरूपी तालीसे ग्रन्थके ताले खोलकर उन रत्नोंकी प्रभा सर्वसाधारणको दिखा सकता है। इसपर एक प्रसिद्ध विद्वानने लिखा है कि, सर्वसाधारणकी तो कथा ही क्या, समालोचक वह बातें निकालता है, जिन्हें सुनकर स्वयं ग्रन्थकर्त्तातक कभी कभी आश्चर्यमें डूब जाते हैं कि, ये विषय कहांसे निकल आये। इस प्रयोजनकी सिद्धि संस्कृतमें कहीं कहीं टीकाकारोंने कुछ कुछ की है। किन्तु अधिकतर यह समालोचनाके तृतीय प्रकारसे सम्बन्ध रखता है। अतः पाश्चात्य-साहित्यमें ही इसका विकाश अधिकतर

हुआ है। इस प्रयोजनका अनुभव पाश्चात्य-साहित्यरसिक ही विशेष प्रकारसे कर सकते हैं और यह एक ऐसी बात है कि, जिसे हमें पाश्चात्यसाहित्यसे अवश्य सीखना चाहिये। इस प्रयोजनकी सिद्धिसे हमारे प्राचीन साहित्यकी सामयिक उन्नतिका बड़ा सम्बन्ध है। प्राचीन साहित्यकी आलोचनासे विशेषकर यही प्रयोजन सिद्ध करनेका प्रयास होना चाहिये। प्राचीन साहित्यसे उत्तरकालकी व्यावहारिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थितिका परिचय व वैज्ञानिक, ऐतिहासिक आदि विषयोंका आविष्कार, यह सब इस ही प्रयोजनके अन्तर्गत मानने चाहियें। बस, साहित्यके सम्बन्धमें समालोचनाके ये चार अखण्डनीय मुख्य लाभ सिद्ध हो चुके। व्यक्तिगत दृष्टिसे समालोचनाका प्रयोजन है, योग्योंका सम्मान और अयोग्योंका हठनिराकरण। जिस समाजमें योग्य पुरुष उचित सम्मान नहीं पाते, धूर्तोंकी जहां बन पड़ती है उस समाजकी उन्नतिकी चिरकालतक कोई आशा नहीं हो सकती। बिना उचित सम्मानके योग्यताके लिये प्रयास ही कौन करेगा। इसका विवेचन करते हुये प्राचीनोंने यहांतक लिख दिया है कि—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते
पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति,
दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

कहा जाचुका है कि, सर्वसाधारण, पूज्य और अपूज्यकी पहचानकी क्षमता नहीं रख सकते। इससे जो कुछ विप्लव होता है, वह हमारे समाजमें ही अनुभवरसिक लोग सुस्पष्ट देख रहे हैं। अतः योग्य समालोचकोंके द्वारा योग्यायोग्यके परिचयमें समाजकी सहायता होती रहनी चाहिये, और उस ही प्रकार समाजमें उनका सम्मान और तिरस्कार होना चाहिये। यद्यपि साहित्यरसिक प्रत्येक मनुष्यको प्रोत्साहित करना विज्ञ पुरुषोंके लिये आवश्यक है, किन्तु यह प्रोत्साहन उसही दर्जेतक होना चाहिये कि, वे अपनी योग्यताके बढ़ानेका प्रयत्न करते रहें। अल्पयोग्यतावालोंकी हठप्रवृत्ति समाजरक्षाके लिये रोकनी ही चाहिये। इस सम्बन्धमें पूर्व भी बहुत कुछ कहा जाचुका है। विज्ञ पाठकोंके लिये इतना ही पर्य्याप्त होगा।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, समालोचनाके ये लाभ संक्षेपसे दिखलाये गये हैं। विस्तार करनेसे इनहीके आवान्तर भेद बहुत होसकते हैं। किन्तु विस्तारसे पाठकोंका समय नष्ट करनेका यहां हम अवसर नहीं देखते।

कुछ आपत्तियां—

अब हम उन आपत्तियोंका कुछ दिग्दर्शन कराना चाहते हैं, जो हमारे हिन्दी-साहित्यमें समालोचनाके प्रचुर प्रचारमें प्रबल बाधक हैं। प्रथम—'समालोच्य साहित्यकी अल्पता।' खेद है कि हिन्दीका साहित्य-कोश ही बहुत स्वल्प है, फिर समालोचना हो तो किसकी हो? प्रथम सामलोच्य 'कोश'-की वृद्धिका उपाय हो, तब तो समालोचना-रूप अङ्ग भी उन्नतिपथपर आरूढ़ हो सके।

किसीके लड़का होगा, तब तो उसे सुन्दर सुडौल या काना, बहरा, कहनेका अवसर मिलेगा? लड़का ही न होगा तो कहोगे किसे ?। दूसरी भाषाओंके साहित्यकी समालोचना दूसरी भाषामें लिखनेसे समालोचनाके पूर्ण लाभ सिद्ध नहीं होसकते। प्रत्येक भाषाके साहित्यके सूक्ष्म नियम प्राय: भिन्न भिन्न होते हैं। अत: कुछ स्थूल बातोंके उल्लेखके अतिरिक्त अन्यभाषाके साहित्यकी सूक्ष्म आलोचना हिन्दीरसिकोंको विशेष लाभदायक नहीं होसकती।

हां, अन्य भाषाओंके साहित्यकी योग्य आलोचनासे भी सामाजिक स्थिति आदिके ज्ञानमें उपयोग अवश्य होता है। किन्तु इसमें भी आपत्ति यही होगी कि, सर्वसाधारणको अपनी बुद्धि समालोचककी बुद्धिके आधारपर छोड़ देनी पड़ेगी। वास्तवमें समालोचनाके पाठकोंको समालोचककी बुद्धिका सहारामात्र लेना चाहिये, न कि उसपर ही निर्भर होजाना चाहिये। समालोचकका कहना कितने अंशोंमें ठीक है और कितनी इसमें अत्युक्ति हुई है, इसका विवेचन प्रत्येक साहित्यरसिकको अपनी बुद्धिके अवलम्बसे ही करना होगा। किन्तु जहां अन्य भाषाके साहित्यकी आलोचना कीजायगी, वहां उन उन भाषाओंके अनभिज्ञ जो उन समालोचकप्रवरोंके भक्त हों वे उनहीके वाक्योंको "बाबावाक्यं प्रमाणम्" मानलें जो विवेचक हों वे तटस्थ रहें, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय पाठकोंके लिये नहीं होसकता। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि, अन्य भाषाओंके साहित्यकी आलोचना हिन्दीमें होनी ही नहीं चाहिये। हिन्दी जब अभी अपने ही हित्वके सब ही अङ्गोंकी पूर्त्तिके लिये अन्य भाषाओंका उपजीवन करनेको बाध्य है, तो समालोचनाके लिये भी उसे अन्योपजीवन कई अंशोंमें करना ही पड़ेगा। तात्पर्य्य केवल यही है कि, अन्य साहित्यकी आलोचनासे आलोचनाके पूर्ण प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकते और अपना साहित्य उन्नत अवस्थामें नहीं। यह समालोचना मार्गमें लगी हुई एक बड़ी कांटोंकी बाड़ है।

दूसरी आपत्ति एक ऐसे विघ्न समाजके सम्मुख उपस्थित करनेमें चित्त संकुचित होता है, किन्तु कर्त्तव्यवश करना ही पड़ेगा, क्षमाप्रदान कियाजाय। हिन्दीरसिकोंके अन्त:करण इतने उन्नत नहीं कि, वे योग्यरीतिसे समालोचना करसकें वा योग्य समालोचना सुन सकें। इस सम्बन्धमें हम केवल पाठकोंको ही दोष नहीं देसकते। मान लिया कि, सर्वसाधारण समालोचना सुननेकी क्षमता नहीं रखते। वे समालोचनाको महापाप समझते हैं, किन्तु लेखकोंका कर्त्तव्य तो सर्वसाधारणकी रुचिको उन्नत करना और उनकी रुचिके साथसाथ साहित्यका परिष्कार करते जाना है, न कि सर्वसाधारणों दोचार जलीभुनी सुनाकर ही उनकी इष्ट सिद्धि होजायगी। जो मार्ग आपके समाजको रुचिकर हो, आपके समाजमें आदृत होसके, उसही मार्गसे आप समालोचनाकी उन्नति करिये। सर्वसाधारणकी रुचि पहचानना और उसे अपने हस्तगत करना भी तो विद्वानोंका ही कार्य है। किन्तु यहां तो बात ही निराली है, समा-

लोचना जैसे महत्त्वके कार्य्यपर हाथ डाल-नेमें हर एक सामान्य मनुष्य भी संकुचित नहीं होते। न जिनको यह ज्ञान है कि, समालोचना किस नियमित आधारपर होनी चाहिये, व समालोचनासे प्रयोजन क्याक्या सिद्ध करने चाहियें, न समालोच्य विषयके महत्त्वपर दृष्टि है। बस, यह भी एक लेख लिखनेका और प्रसिद्ध होनेका मार्ग खुल गया कि, चलो और कुछ नहीं तो किसीकी जलीकटी थोड़ी समालोचना ही लिख डालें। फिर बहुतसे महानुभाव तो इस ही मार्गमें व्यक्तिगत ईर्षा आदिको खूब काममें लाते हैं। अमुक पुरुषने कोई ग्रन्थ लिखा है, या उसने किसीकी समालोचना की है, तो बस मुझे उसके विरुद्ध अवश्य कहना है। कई एक विज्ञ महाशय साहित्यकी आलोचनामें ही "सोशल रिफार्म"का स्वप्न देखते हैं। प्राचीन काव्य और इतिहास केवल कल्पनाके सूत्रपर अवलम्बित हैं, यह कई एक महानुभावोंने सुस्पष्ट मान लिया हैं। और अतएव वे उनकी दृष्टिमें जो चरित्रनायकोंकी त्रुटियां प्रतीत होती हैं, उनको कवियोंके शिरपर लाद देनेके लिये तैयार हैं। इधर कुछ दिनोंसे भगवान् रामचन्द्रके चरित्रपर हिन्दीपत्रोंमें बड़ी आलोचनाकी धूम मच रही है। कहीं कहा जाता है, लक्ष्मणको कटुवाक्य कहना सीताका महान् अपराध था। कोई कहता है, शूर्पणखासे उपहास करके रामचन्द्रने घोर अनर्थ कर लिया। किसीके मनमें आता है कि, सीतापरित्यागका कलङ्क रामचन्द्रके चरितचन्द्रसे धुल ही नहीं सकता। कोई लक्ष्मणपर ही ऐसी ज्येष्ठकी आज्ञा मान-नेके बदलेमें वचनवाणकर्षण करनेको तैयार हैं। तिसपर विशेष आनन्द यह कि, इन बातोंके जिम्मेवार माने जाते हैं, बिचारे वाल्मीकि, कालिदास, या तुलसी-दास। समझो कि, रामचन्द्रका चरित्र निरी एक यक्ष-मन्दिरकी कल्पना है। बिचारे रामचन्द्रको कभी स्वप्न भी न हुआ होगा कि, अट्ठाइसवें कलियुगकी विक्रमकी बीसवीं शताब्दिमें यों उनके चरित्रकी 'बालकी खाल' खींची जायगी। इस प्रकारकी आलोचनाओंसे साहित्यका क्या लाभ है? सो कुछ समझमें नहीं आता। सामाजिक स्थितिपर भी इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि तब और अबकी सामाजिक सभ्यतामें नन्दनवन और पातालका भेद है। मेरा यह सब लिखनेसे यह प्रयोजन है कि, एक ओर समालोचक समालोचनाके साथ मनमाना अत्याचार कर रहे हैं, तो दूसरी ओर पाठक समालोचकोंकी उक्ति-योंको सुननेतकके लिये तैयार नहीं हैं। उन्हें समालोचनाका नाम सुनते ही उसका खण्डन करनेकी धुन सूझती है। और चतुर सभ्य पाठक तो इस आलोचनाप्रत्या-लोचनाके झगड़ोंको दूरतः प्रणाम करनेके लिये तत्पर देख पड़ते हैं। सबका सार यह है कि, वर्त्तमानमें न समालोचक ही योग्य मार्गपर हैं और न समालोचकोंकी उक्ति-का समाजमें योग्य आदर है। इस रीतिसे समालोचनारूप साहित्यके अङ्गकी पूर्त्ति कदापि नहीं हो सकती, और न इसके उपयुक्त लाभ ही समाज उठा सकता है।

अत: समालोचनाकी समयोचित सर्वहृदयंगम पद्धति निर्धारित करना विज्ञ समाजका प्राथमिक कर्त्तव्य है। बिना नियमके कोई कार्य बलयुक्त नहीं हो सकता। सब विषय नियमित रीतिसे ही प्रवृत्त होने चाहियें।

इस विज्ञसमाजके कर्त्तव्यके सम्बन्धमें कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता। लेख भी बढ़ता जाता है। अत: अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार 'समालोचना कैसी होनी चाहिये' इस सम्बन्धमें दो एक बात कहकर समाप्त करता हूं।

समालोचना कैसी होनी चाहिये —

प्रथमत: सुयोग्य विद्वानोंके हाथमें ही समालोचनाका कार्य होना चाहिये। हिन्दीकी उन्नतिके लिये चेष्टा करनेवाली संस्थाएं योग्य विद्वानों द्वारा समालोचनाएं लिखवाया करें और उन समालोचनाओंको गौरवके साथ समाजमें उपस्थित किया करें। इस बातका पूर्ण प्रयत्न किया जाय कि, हिन्दीहितैषी समाज उन्हें गौरवकी दृष्टिसे देखें। यह कर्त्तव्य यदि संस्थाएं अपने ऊपर ले लेंगी, तो समालोचकोंको स्वयं अपनी समालोचनाओंके लिये सार्टिफिकेट संग्रह करनेका प्रयास नहीं करना पड़ेगा। समालोचनाओंकी युक्तता व अयुक्तताका विचार भी प्रथम संस्थाओं द्वारा ही हो जाना चाहिये। यों तो इस लेखस्वतन्त्रताके जमानेमें कोई किसीको कुछ लिखनेसे रोक नहीं सकता। किन्तु हर एक मनुष्य समालोचनामें हाथ न डाले, इसका कुछ प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। ऐसी ऊटपटांग समालोचनाएं समाजमें उपेक्षासे देखी जानी चाहियें। और उक्त संस्थाओंको उनके प्रति तिरस्कार समय समयपर प्रकट करना चाहिये। योग्य सम्पादक भी अपने पत्रोंको उचित समालोचनाओंसे ही अलंकृत करनेमें दृष्टि देवें। यह कहना तो कुछ भी आवश्यक नहीं कि, समालोचनामें पक्षपात व विद्वेषसे काम न लिया जाय। क्योंकि यह एक ऐसा सूत्र है, जो सबको कण्ठस्थ है, और इसकी व्याख्या करनेमें भी सब ही विशेष चतुर हैं। किन्तु "कार्यकाले समुत्पन्ने" क्या होता है, सो भी सबपर विदित है! किन्तु इतना स्मरण दिलाना ही होगा कि, साहित्यको रसातलमें जानेसे बचाना है, तो साहित्यके सम्बन्धमें रागद्वेषकी मात्रा घटानेका अवश्य प्रयत्न कीजिये।

जिन कारणोंसे रागद्वेषोंकी उत्पत्तिका अधिकतर सम्भव हो, उनसे समालोचकोंको बचना चाहिये। इसके लिये यह भी वर्त्तमानमें आवश्यक है कि, जो प्राचीन व नवीन व्यक्ति समाजमें पूज्यताका गौरव पा चुके हैं, उनकी दोषात्मक समालोचना विशेषत: न लिखी जाय। उनके ग्रन्थोंकी यदि आलोचना करनी हो, तो वह भिन्न ही प्रकारसे की जाय।

जिस समालोच्य विषयका तलस्पर्शं ज्ञान हो, उस ही विषयकी समालोचनाके लिये लेखनी उठानी चाहिये। अन्यथा परस्पर इस ही प्रकार 'अहंच त्वंच' होकर साहित्यके लाभका प्रश्न दूर धरा रह जायगा।

सामाजिक स्थितिकी आलोचना करनी हो, तो प्राचीन और आधुनिक सामाजिक

स्थितिके भेदपर भी दृष्टिपात कर लेना उचित है। और सामाजिक स्थितिबन्धन-का सम्पूर्ण दोष कवियोंके ही शिरपर मान न लिया जाय।

साहित्यके लाभकी यदि दृष्टि हो, तो तीक्ष्ण आलोचनासे किंचित बचना चाहिये। अवश्य ही उपहासप्रधानतासे परिहासप्रिय लोक अधिक आकृष्ट होते हैं, किन्तु अधिकांश साधारण उन्हें द्वेषमूलक समझकर उपेक्षा करनेको ही बाध्य हो जाते हैं। अतः विज्ञ सभ्यसमाजमें आदर न पानेसे वे समालोचनाएं साहित्यके लिये पूर्ण लाभदायक नहीं हो सकतीं। विज्ञ समाजकी विचारधारा प्रवृत्त करनेके लिये यह सूत्रपातमात्र है। इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी मैं स्वयं शक्ति नहीं रखता। अतः विज्ञसमाजके सम्मुख ही यह प्रश्न रखकर समयहानिकी क्षमा मांगता हुआ प्रकृत विषयसे विराम करता हूं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

(६)

उर्दू और हिन्दी एक है या दो?

लेखक —
बाबू राधामोहन गोकुलजी।

इस प्रश्नपर बहुत बार बहुतसे साधारण और असाधारण विद्वानों और भाषामर्म-ज्ञोंने अपने विचार, लेखों और वक्तृताओं द्वारा प्रकट किये हैं। तथापि मैं आज अच-म्भेके साथ देखता हूं कि, हिन्दीविद्वानोंको अभीतक सन्तोष नहीं हुआ। यदि उनकी इन दो नामोंका पृथक् पृथक् भाषाओंका द्योतक होना अथवा एक ही भाषाके पर्य्यायवाचक शब्द होना निश्चय होगया होता, तो इस वर्ष साहित्य सम्मेलनमें और अनेक विषयोंके साथसाथ इस विषयको इस वास्ते न रखा जाता कि, विद्वान् लोग उसपर लेख द्वारा प्रकाश डालें। यद्यपि मैं इस विषयपर प्रकाश डालनेवाला अधिकारी व्यक्ति नहीं हूं, तथापि हिन्दीभाषी भारतनिवासी होनेके नाते और बालकालसे ही हिन्दी व उर्दूको एक जानतेमानते चले आनेके कारण अपना परम कर्तव्य समझता हूं कि, मैं उन कारणोंको विद्वन्मण्डलके समक्ष उप-स्थित करदूं, जिनके आधारपर मेरा उपरोक्त विचार चला आता है और अनेक बार विरोध होनेपर भी एक जव नहीं डिगा।

मेरी प्रतिज्ञा है कि, भाषासम्बन्धसे हिन्दी उर्दू एक है अर्थात हिन्दुस्थान या भारतवर्षमें सर्वत्र बोली जानेवाली व सम-झीजानेवाली भाषा समस्त हिन्दूमुसलमा-नोंकी एक भाषा है। हिन्दीप्रेमी मिस्टर ग्रीव्ज़के शब्दोंमें मैं अपनी साधारण प्रति-ज्ञाका स्पष्टीकरण यों करूंगा कि, हिन्दी-उर्दू एक ही बोलीका नाम है। उसी बोलीमें जब तुर्की अरबी शब्दोंका बाहुल्य होता है, तो वह उर्दू कहलाती है और प्राकृत संस्कृत शब्दोंका बाहुल्य होनेसे हिन्दी। यहां मैंने तुर्की अरबीके साथ पारसी भाषाको जानकर छोड़ दिया है, क्योंकि उसका मूल संस्कृत और विशुद्ध संस्कृत है, जैसा कि आगे चलकर निवेदन करूंगा।

अपने प्रमाणोंको दिखलानेके पहले मुझे दो तीन बातें और बतला देनी होंगी, जिससे विषय बिलकुल साफ हो जाय और मेरे उपस्थित किये हुए प्रमाण और भी स्पष्ट रूप धारण करसकें। इस विषयकी मीमांसाको बढ़ाना और एक निश्चित परिणामपर बहुत कालतक न पहुंचना देशको कई प्रकारसे हानिकर हो रहा है व होगा। पक्षपातपरायण व्यक्तियोंके उलटेसीधे लेखोंसे राष्ट्रमें दलादली, बलाबली व विरोधकी बढ़वारी दिनोंदिन होती है। इसका फल भाषाकी उन्नतिमें रुकावट पड़ना और राष्ट्रकी भी समुन्नतमें बाधा होना प्रत्यक्ष है, हुआ है और होगा।

उर्दू हिन्दीमें एक बड़ा भारी भेद यह है कि, वह तो अरबी अक्षरोंद्वारा लिखी जाती है और यह संस्कृत द्वारा। यदि यह लिपिभेद न होता, तो निस्सन्देह आज इस प्रश्नका नामनिशान भी न होता। किन्तु याद रहे कि, लिपि किसी भाषाके मूलको बदल नहीं सकती। आज हिन्दीको चीनी, जापानी, अंग्रेजी, यूनानी आदि अक्षरोंमेंसे किसीमें लिखें, तो क्या भाषा दूसरी होजायगी? हम केवल लिपिके कारण भाषाके मूलको नहीं भूल सकते। अंग्रेजी शब्दोंका उच्चारण सीखनेके लिये बालक उन्हें हिन्दीमें लिखलेते हैं। मुसलमानी शासनकालकी अनेक छन्दें (?) विदेशी भाषाको, अरबी मिश्रित पारसीको, हिन्दी लिपिमें मिलती हैं। पर क्या कोई कह सकता है कि, उस बालकके लिखे अंग्रेजी शब्द केवल नागराक्षर होनेके कारण हिन्दी भाषाके शब्द होगये और यह छन्दें (?) विदेशी भाषाकी नहीं रहीं, किन्तु हिन्दी या संस्कृतकी हो गईं?

यद्यपि कोई भाई ऐसा मानलें, तो हम इसी तर्कके अनुसार कहेंगे कि, हिन्दी उर्दू दोनों ही आकाशके फूल हैं और वास्तविक उनकी स्थिति ही नहीं है। क्योंकि उर्दू अरबी अक्षरोंमें व हिन्दी संस्कृत अक्षरोंमें लिखि जाती है।

फिर हम देखते हैं कि, उर्दू संसारमें सिवा भारतके और कहीं नहीं बोलीजाती। तब तो उर्दू हिन्द या भारत या हिन्दुस्थानकी भाषा हुई। जब हिन्दुस्थानकी भाषा हुई तो उसका असली नाम हिन्दी होना चाहिये। हिन्द शब्दसे सम्बन्धसूचक तद्धित हिन्दी बनता है न कि उर्दू। यदि कोई कहे कि, व्याकरणमें अनेक शब्द नियमविरुद्ध भी बनजाते हैं और जनश्रुत भी होते हैं। अतः उर्दूका अर्थ है हिन्दी, तो भी झगड़ा मिट गया, हिन्दी व उर्दू एक दूसरेको पर्य्याय ही हुई।

हां, एक प्रश्न हो सकता है कि, उर्दू शब्द कहांसे आया, कैसे बना और हिन्दी भाषाका नामान्तर कबसे व कैसे माना जाने लगा? इस प्रश्नका स्पष्ट उत्तर बहुत दिन हुए कि, राजा शिवप्रसादजी दे चुके हैं। मैं आप सज्जनोंके जाननेके लिये यहां याड़ेसे शब्दोंमें उसीको दोहरा देना चाहता हूं। क्यों कि आजतक किसीने इस उत्तरका यथेष्ट रूपसे खण्डन नहीं किया और न उसका युक्तियुक्त खण्डन हो ही सकता है।

उर्दू तुर्की भाषामें सेनाको कहते हैं। सैनिकोंके एक समान वस्त्रोंको हम लोग

आजपर्य्यन्त उर्दी कहते हैं। उर्दवीम-अल्ला नामकी एक पुस्तक गालिबने लिखी है। गालिब अमागती मुसलमान उर्दू और पारसी—वही अरबीकी दासी बनी हुई पारसीका—एक प्रतिष्ठित कवि हुआ है। इसको हुए बहुत थोड़े दिन हुए हैं। दीवान-गालिबने इसमें तत्सामयिक बादशाही प्रसंसामें जो कसीदा लिखा है,उससे और अन्य कई छन्दोंसे उसके इतिहासका पूरा पता मिलता है। मैं इसके इतिहासमें आप लोगोंका समय लगाना नहीं चाहता। जो महाशय चाहें डेढ़ दो आनेमें दीवानगालिब लेकर देख लें। गालिबका नाम असदुल्लाहखां था, लोग इनको मिरजा नोशा भी कहते थे। गालिब उपनाम उनका खगृहीत था।

जिस तरह आजकल कण्टोनमेण्ट होते हैं, उसी तरह यह उर्दवी बाजार भी था। यहां सैनिक लोग रहते थे। दुर्भाग्यवशात् जब आर्य्य जातिका भाग्यसूर्य्य अस्त हुआ, तब भारतमें मुसलमानी राज्य स्थापित हुआ। इस कारण मुसलमानोंकी एक अच्छी संख्या भारतमें आ पड़ी। हिन्दू मुसलमानोंका स्वाभाविक सम्बन्ध बढ़ने लगा। उच्च श्रेणीके मुसलमान हिन्दू चाहे कुछ कालतक अलग अलग रहते सहते हों, पर मध्य और नीचली श्रेणीके लोग आरम्भसे ही मिलने जुलने लगे। सार यह कि, हिन्दू मुसलमान मिलकर रहनेको सहज ही बाध्य हुए। इनके परस्पर स्वभाव बर्त्ताव रीतिभांति आदि बहुत अंशोंमें एक थे। मुसलमान विजेता जातिके होनेके कारण प्रजासे दूर दूर हटकर नहीं रहे। दोनों ही विजेता व पराजित एशियाई थे। इससे इनके सम्बन्धोंमें घनिष्टता जल्दी हो गई और इसीसे मुसलमानी राज बहुत कालतक रहा। इस सम्बन्धसे परस्परकी भाषाओंका भी मेल होता था। क्योंकि इस प्रकार भाषाओं और भावोंका सम्मिश्रण स्वाभाविक है।

सेनामें रसद देनेको हिन्दू वणिक जाते थे। फौजोंके खाई खानोंमें व्यापारके लिये भी और राज्यकी आज्ञासे बाध्य होकर भी दुकानें रहती थीं। यह उर्दूबाजार या कण्टोनमेण्ट सबसे पहले प्रधान नगर दिल्लीमें हुआ और कुछ कालके अनन्तर हिन्दू मुसलमानोंके सम्पर्कजनित परिवर्त्तनयुक्त हिन्दीका नाम सबसे पहले उर्दू अर्थात् सेनाकी बोली पड़ा।

विदेशी सैनिक अफसर और दूसरे लोग भी, जब एतद्देशियोंसे काम पड़ता, तो हिन्दीमें अपना मन्तव्य प्रकाश करनेकी चेष्टा करते। जो शब्द उन्हें ज्ञात न होता अपनी भाषाका मिला देते। कुछ अर्थापत्तिसे कुछ सम्पर्कजनित अनुभवसे हिन्दूलोग समझ लेते और यह भी अपना मतलब उसी तरह समझाना चाहते। यही बोलियोंके मेलका प्रधान कारण आदिमें हुआ। इस व्यवस्थाके पहलेकी हिन्दी सर्वाङ्ग-शुद्ध हिन्दी, प्राकृतसे निकली हुई पवित्र हिन्दी, थी। अब इसमें मेल होने लगा। यह मेल जहांतक कि, शुद्ध पारसीका हुआ, कुछ हिन्दीका रूप नहीं बिगड़ा। क्योंकि हम कह चुके हैं कि, पारसी संस्कृतकी ही मूलसे है। पारसीकी छः प्रसिद्ध भाषा-

ओंमेंसे पहली तीन हरदी, हरवी, जावली मुसलमानी धर्मके प्रादुर्भाव और अरबके समृद्धिशाली होनेके पूर्वकी हैं। जो पुस्तकें उस समयकी मिलती हैं, उनके देखनेसे विद्वानोंको निश्चय हुआ है और वर्त्तमान पारसीपर भी भाषातत्वज्ञोंने विचार किया, तो स्पष्ट होता है कि, पारसी वास्तवमें संस्कृत ही है। देशकालके अनुसार कुछ कुछ परिवर्त्तन जो है सो स्वाभाविक है।

उक्त छः भाषाओंमेंसे अन्तिम तीन फारसी पहलवी और दरी मुसलमानी प्रभाव-सम्पन्न है। जब मुसलमानोंने फारस जीता, तो वहांके रहनेवालोंको तलवारके बल मुसलमान किया। मुसलमानी धर्म-पुस्तकें अरबीमें थीं ही। क्योंकि महम्मद मुस्तफा अरब थे। इसलिये पारसीमें अरबी इस तरह मिली कि, धीरेधीरे पारसी अरबीसे निकली हुई नहीं, तो अरबी बिना अपंग सी प्रतीत होने लगी। मसनवी मौलाना रूमकी पारसी पहलवी भाषामें है। तूसीकी भाषा पारसी है जिसने महमूदके वास्ते शाहनामा लिखा था। अब हम पारसी भाषाके इतिहासमें न पड़कर अपने मूल मतलबकी ओर आते हैं।

उक्त कई प्रकारसे पारसी और हिन्दी-का संयोग तो हुआ है, साथ ही राजकाजमें भी न्याय करनेमें, हिसाबकिताब रखनेमें, प्रजासे बल आदि प्राप्त करनेमें मुसलमान विजेताओंको हिन्दी लिखनेकी जरूरत पड़ी, तो वे अपनी सुविधाके लिये हिन्दी-को अर्थात् रूपान्तरगता हिन्दीको अरबी अक्षरोंमें लिखने लगे। यही कारण है कि, मुसलमान लोग आजतक हिन्दीको अरबी अक्षरोंमें लिखते आते हैं। जहांके मुसल-मान अरबी अक्षर नहीं जानते, आजतक अपनी प्रान्तिक भाषा द्वारा उसी प्रान्तकी विकृत अक्षरोंमें लिखापढ़ी करते हैं।

यहां उर्दूके जन्मका कारण उसके अरबी लिपिबद्ध होनेका सच्चा हेतु है। लेकिन जब भाषा हिन्दी, उसका व्याकरण हिन्दी, उसकी सारी बातें हिन्दी, तब केवल कुछ विदेशी शब्दोंके मिलने और विदेशी लिपिमें लिखे जानेके कारण उर्दूको हिन्दीसे भिन्न बतलाना और उसका कोई पुष्ट प्रमाण न देना मेरी समझमें विद्वानोचित (?) काम नहीं है।

किन्हीं दो या अधिक भाषाओंके एक होनेका या भिन्न होनेका विचार उनके प्रत्यङ्गोंपर विवेचना करनेसे ही हो सकता है। जब हम हिन्दी और उर्दूके अङ्गोंपर विचार करते हैं, तो देखते हैं कि, दोनों भाषाओंके (दोनों उन महानुभावोंके शब्दमें जो कि हिन्दी उर्दू दो मानते हैं) मौलिक शब्द एक हैं। जैसे—घर, पानी, आग, चाचा, मामा, नाना, गांव, बेटा बेटी, दूध, दही, रोटी, आटा, छप्पर, घोड़ा, गाय, भैंस, खेत इत्यादि इत्यादि। यहांतक कि सौमेंसे सौ ही दोनोंमें एक ही शब्द हैं। सिवा उस दशाके जब कि अरबी तुर्कीके बड़े भारी विद्वान जान बूझकर लिखने व बोल-नेमें कठिन विदेशी शब्द मिला देते हैं। जैसा कि हम अपने यहां हिन्दीमें भी देखते हैं कि, संस्कृतवेत्ता लोग हिन्दीको कठिन संस्कृत शब्दों और समस्त पदोंसे भर देते हैं।

जहां एक ओर हमारे मुसलमान अरबी विद्वान फौनफ्सही, ऐनुलयकीन, हत्तुलइम-कान,गूनागूं. मस्तगरकुलखयाल, हमादानी इत्यादि 'जडमें, बिश्वास. बशभर, तरहतरह, सर्वज्ञमता होनेके अभिमानसे चूर,के स्थानमें लिखकर हिन्दीको गन्दी करते हैं, वहां हमारे संस्कृतके ज्ञाता भी पान लानेवाली को 'ताम्बूलकर करण्डवाहिनी' रूमालको 'मुखमार्ज्जनवस्त्रखण्ड' आदि अनेक शब्दोंको लेकर व्यर्थ संस्कृतकी भरमार करते हैं। और यही लोग वह हैं जो हिन्दी उर्दूको दो बनानेमें सिरतोड़ चेष्टा कर रहे हैं, अवसर पानेपर धरती आकाश एक कर मारते हैं। नहीं तो प्रत्यक्ष है कि, जो भाषा जनसाधारणमें बोली जाती है, वह एक है और यही सच्ची हिन्दी है। इसे अरबी अक्षरोंमें और संस्कृत अक्षरोंमें अपनी अपनी जानकारी और रुचिके अनुसार भारतवासी लिखते पढ़ते हैं। शब्दोंका उच्चारण भी एक समान करते हैं।

शब्दोंकी रचनाकी ओर देखते हैं, तो लिङ्गभेद, वचनोंकी बनावट और कारकोंका व्यवहार हिन्दी उर्दूमें एक ही है। 'आग'को चाहे संस्कृतज्ञ पुंल्लिङ्गमें व्यवहार करें, परन्तु हिन्दीमें वह स्त्रीलिङ्ग ही बोली जाती है। 'कलम'को चाहे मोलवी साहब पुल्लिङ्ग बोलें, पर जनसाधारण तो उसे लेख-नीकी भांति स्त्रीलिङ्ग ही बोलता है। घोड़ा, घर, हाथी, मकान, रेल, जहाज आदि सारे ही शब्दोंके लिङ्ग व बहुवचन बनानेकी रीतियां हम जो हिन्दीमें देखते हैं वही मोलवी हिन्दी (उर्दू) और पण्डित हिन्दीमें भी देखते हैं। चाहे संस्कृतके पक्षपाती 'शकना' कहें, पर हिन्दीवाले तो 'सकना' ही कहते हैं। मोलवी साहब 'मअलूम' कहें तो कहें, हम तो सीधे 'मालूम' ही बोलेंगे। इस तरह विचारशीलोंको मानना पड़ेगा कि, शब्दरचना हिन्दीको और पृथक मानी हुई हिन्दी व उर्दूको एक ही है।

क्रियाओंके रूप आद्योपान्त उर्दू हिन्दीमें एक ही हैं। चाहे मूल शब्द पण्डितजी या मोलवी साहब अरबी संस्कृतका लगा दें, किन्तु उनके वचन, लिङ्ग और काल-सूचक रूप तो हारकर एक सा ही बनाना पड़ता है। जैसे, 'खड़ा हुआ होता' या 'चतुर हुई होती'को 'एस्तादा हुआ होता' और 'जफी हुई होती' 'दण्डायमान हुआ होता' आदि। यहां 'हुआ होता' तो कहना ही पड़ेगा।

यहांतक कि, जब धींगाधींगी संस्कृत अरबीके धातुओंको काममें लाना होता है, तो उनके साथ 'करना' या 'होना' और भी मिलाना पड़ता है। नहीं तो हिन्दी अर्थात् उर्दू अपने घरमें घूमने ही नहीं देती। चाहे जितना ही हाथ पैर क्यों न हिलाये। देखिये—अनुधावन करना, शिकस्त देना, खमीदा होना, कशीदः होना, इत्यादि।

वाक्‌विन्यासकी ओर विचार करते हैं, तब तो हिन्दी उदूको दो कहनेवालोंको और भी कलई खुल जाती है। देखिये, सच्ची हिन्दीमें सरदीका स्वभाव सिकोड़ना व गरमीका स्वभाव फैलाना है। इसीको मोलवी हिन्दीमें सरदीका खासा इजलमाद

व गरमीका इन्तशार है। पण्डित हिन्दीमें शीतका स्वभाव संकोचन अथच उष्णताका संप्रसारण है। हम नहीं देखते कि, केवल शब्दोंके अदलबदलके सिवा इस वाक्यकी रचनामें कोई अन्तर हो। और कुछ उदाहरण लेकर देखिये, जैसे;—

मोलवी हिन्दी— यह छोटी तकतीदका रिसाला एक मिसरी डाक्टरकी अरबी तसनीफका तर्जुमा है—

२८ अगस्त सेहशम्बाको दिनकी एक बजे रूसायहिन्दके सरताज हैदराबादके हरदिलअजीज महबूब-खलायक फरमांरवाके, रह गराय आलम जावेदानी होनेकी रूह फरसा खबर होनेकी कसरे फलकनुमासे जब मुशाहिर हुई तो कौन ऐसा शख्स था जिसको इसके सुननेसे सकता सा न हो गया। लोग इस जांकाह खबर सुननेके लिये बिलकुल तय्यार न थे।

पण्डित हिन्दी यह लघु आकारका पुस्तक एक मिसरीय डाक्टरकृत अरबी ग्रन्थका उल्था है –

२८ अगस्त भौमके दिवस एक बजे भारतीय शासकगण मुकुटमणि हैदराबादके जनपद प्रियजगत् प्रेमभाजन शासकके संसार असार परित्यागकर स्वर्गारोहणके प्राणघाती समाचार अग्रवरा राजप्रासादात् विश्रुत हुए तो कौन सा ऐसा पुरुष था जो इसके सुननेसे स्तम्भित सा न रह गया हो। लोक इस प्राणशोषक समाचारके श्रवणको उद्यत न थे।

शुद्ध हिन्दी—यह छोटी काटकी पोथी एक मिसरी डाक्टरकी अरबी पुस्तकका उल्था है—

२८ अगस्त मंगलवारके दिन एक बजे हिन्दुस्थानके शासक सिरमौर हैदराबादके सर्वप्रिय जनपदके प्यारेकी संसार छोड़ स्वर्गवासी होनेकी खबर जब राजभवनसे प्रकाशित हुई तो ऐसा कौन प्राणी था जो इसके सुननेसे जकड़ा सा न रह गया हो। लोग इस जोदुखानेवाले समाचारके सुननेको कुछ भी तय्यार न थे।

अब हमें इन उदाहरणोंके देखनेसे यह नहीं प्रतीत होता कि, हिन्दी उर्दूमें शब्दभेदके सिवा और कोई अन्तर वाक्य विचारोंमें हो। यदि कुछ है तो मुझे आशा है कि, आज विद्वान मण्डलके सामने उसके जाननेवाले स्पष्ट करके बतला देंगे और सदाके लिये झगड़ा मिट जायगा।

इस स्थानमें कुछ उर्दू व हिन्दीकी कविताका भी नमूना दिखला देना चाहता हूं, जिससे और भी हिन्दी स्थितिका पक्का बोध हो जायगा।

जफर—

हर खार बियाबान है
मोतीसे पिरोता।
जब फूटके रोता है
मेरे पांवका छाला

दाग—

तुम इसीमें रोदिये
कैसा है खिसियाना मिजाज
झक गया ऐ फोर्ट विलियम

आज क्यों झगड़ा तेरा,
बेकसी छाई है तुझपर
आज क्यों रे इण्डिया
न समझो मुझको शायर हां
मगर समझो तो यह समझो
अबीहै कौम पसमांदाका
एक फोटोगराफर हूं।
राधे—
भारतसुती विचारी
क्या काम है तुम्हारा,
किस जातिके हो बालक
क्या नाम है तुम्हारा।
तन छीन हीन धनसे
परबश पड़े हो क्यों तुम ?
सब वस्तुओंसे पूरा
सुखधाम है तुम्हारा।

देखना यह है कि, इनमें शब्दोंके सिवा वाक्‌विन्यासमें क्या अन्तर है जिससे हम समझें कि, उर्दू और हिन्दी दो हैं। सार यह है कि, हिन्दी तो एक ही है और वही हिन्दी है, वही समस्त भारतकी भाषा है। इसी एक हिन्दीके दो नाम हैं—एक तो मौलवी हिन्दी जिसे उर्दू कहते हैं, दूसरे पण्डित-हिन्दी जिसे साधु-हिन्दी कहा करते हैं। इन मौलवी और साधु हिन्दियोंमें अरबी संस्कृत शब्दोंकी क्लिष्टता प्रधान होती है और कुछ नहीं।

अब केवल दो बातें और हैं। एक तो यह कि, उर्दूवाले पारसीका अनुकरण करके इजाफत काममें लाते हैं और पारसी हरफ जारका प्रयोग जो विभक्तिके रूप हैं शब्दके पूर्व लगाते हैं, जैसे—'आबेदरिया और बरबाम 'नदीका पानी और छतपर'। यहां 'का' उड़ा दिया गया है, और पारसी इजाफत 'ए' लगी है और 'पर'के स्थानमें 'बर' पहले लगा है। लेकिन हम देखते हैं कि, यह रीति हिन्दीमें भी है। जैसे—नदीजल, कूप-जल और संस्कृत शब्दोंके प्रयोगमें विभक्ति संस्कृतकी रख देते हैं। जैसे हठात्, बलात्। अतः जहांतक 'बर' व 'अज' आदिका प्रयोग होता है, वहांतक ही भेद है। सो भेद प्रत्यक्ष है कि, धींगाधींगी मौलवियों और पण्डितोंकी है। हिन्दी उर्दूको दो करनेवालोंकी जबरदस्ती है, हिन्दीका दोष नहीं।

अब रही एक यह बात कि, जब हम किसी विषयको लिखने बैठें व हिन्दोके सरल शब्द न मिलें तो क्या करें। क्यों, तुम संस्कृत अरबीके कठिन शब्दोंके प्रयोगपर अभी बौछारें कर आये हो। तो इसका सीधा सरल उत्तर यह है कि, जो शब्द अधिकांश लोग समझ सकते हों, चाहे वह किसी भाषाका क्यों न हो, प्रयोग करो। अरबी संस्कृतका पक्षपात छोड़कर अपनी भाषाके द्वारा ज्ञानवृद्धिकी ओर ही ध्यान दो। जैसे, यदि तुमको 'करामिङ्ग' लिखना है और जहाज लिखना है या रेल लिखना है, तो धूम्रपोत, धूमयान या दरवनी जहाज और इसी प्रकार अन्य शब्द न घड़कर सरल सीधे शब्द जो सब समझते व बोलते हों लिखो, वही हिन्दी है। विदेशी भाषा होनेके ही कारण शब्दोंको चुन चुनकर मत फेंको। उर्दूवालोंमें यह बात नहीं है। लेकिन हिन्दीके पक्षपाती इसको लज्जाकी

बात समझते हैं कि, विदेशी भाषाका शब्द लिया जाय। आज यदि यही बात अंग्रेजी भाषाके पण्डितोंमें होती, तो अंग्रेजी इतनी उन्नत न हुई होती जितनी कि अब है। अंग्रेज लोग संसारभरकी भाषाओंके शब्द जरूरतके अनुसार ले लेते हैं और मनमाने शब्द घड़कर भी उसका एक अर्थ स्थापित कर लेते हैं। इसीसे उनकी शब्दावली सबसे अधिक है। जो लोग अंगरेजी पढ़े हैं और डिक्शनरियां देखते हैं, वह इस बातको तुरन्त मान लेंगे कि, ऐसी स्यात् ही कोई लिखी जानेवाली भाषा होगी जिसके शब्द अंग्रेजीमें न पाये जाते हों। प्राचीन कालकी भी यही परिपाटी हम देखते हैं कि, अरबीमें संस्कृतके अनेक शब्द विज्ञान-सम्बन्धी ले लिये गये हैं और संस्कृतमें भी अनेक शब्द बाहरी मिलते हैं। तो अब हमें कोई कारण इस बातका नहीं मालूम होता, क्यों स्वतन्त्रतासे अपने मतलबके बाहरी शब्दोंको अपनी भाषामें स्थान न देकर देशके विज्ञान व कलाकी उन्नतिमें बाधक हों।

प्यारे हिन्दीप्रेमियो! आप विश्वास रखें कि, आपकी वर्त्तमान हिन्दी सौ वर्षमें बिलकुल कुछकी कुछ हो जायगी। आजके कोष व व्याकरण इतिहासमें स्थान पाने मात्रको होंगे और आपका देश सब भांतिसे समुन्नत होगा। आपकी इस समयकी संकुचितहृदयता आपके भविष्यत्‌के महत्वको लानेमें बाधक हो रही है। आपका काम है कि, भाषासम्बन्धमें उसी उदारतासे काम लो, जिससे राजनैतिक विषयोंमें ले रहे हो। आगे आनेवाली सन्तान ो यह कहनेका अवसर मत दो कि, हमारे पितरोंकी नादानी और उनके कार्पण्यके कारण हमारी उन्नतिमें अकारण देर हुई। नहीं तो आज हम कुछ के कुछ होते।

साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि, लिखने व बोलनेवाले अपने स्वभावसे विरुद्ध चल नहीं सकते। इसलिये उर्दू व हिन्दीका नाम मिट एक भारती नामधारिणी भाषाका पैदा होना अभी दूर है। समय इस कामको स्वयं पूरा करेगा। हम जो कुछ कर सकते हैं वह यही है कि, उदारता और विश्वाससे काम लें। भविष्यत् हमारा है।

---

(७)

कवितामाहात्म्य।

लेखक —

पण्डित पुलकित मिश्र।

इस विषयपर कुछ लिखनेके लिये मुझ अल्पज्ञका साहस करना, केवल प्रांशु पुरुष लभ्य फलाकांक्षी बामनके समान उपहास-प्रद है; तथापि कतिपय गुणगणाग्रसर, कविवर गुणज्ञ महाशयोंसे प्रोत्साहित हो, अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार आप सज्जनोंकी सेवामें अपनी क्षुद्र सम्मति प्रगट करता हूं।

मनुष्य अपने मनके भावको दो प्रकारसे प्रगट कर सकता है, एक गद्य और दूसरा पद्य। कवेरिदं काव्यं कवेर्भावः कविता - अर्थात् कवियोंसे वर्णित रसमय शब्दसमूहका नाम काव्य और कविता है।

कविता एक बड़े महत्वकी वस्तु है। किसी मृत भावमें सञ्जीवनी शक्तिका सञ्चार कर उसे जीवित करना कविताहीका काम है। लिखा है कि "काव्यं यशसे व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।" अर्थात् कविता (१) यशके लिये, (२) व्यवहार जाननेके लिये, (३) विघ्ननाशार्थ, (४) शत्रुनिवारणार्थ, एवं (५) कान्तासम्मित उपदेश सम्पादनार्थ की जाती है।

(१) पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः। अद्यापि तत्तुल्यकवेर भावादनामिका सार्थवती बभूव।

किसी समय यह प्रसङ्ग चला, कि श्रेष्ठ कवि कौनकौन थे। इसपर किसीने कहा कि पूर्व समयमें कालिदासकी गणना कनिष्ठिकापर होती थी अर्थात् कवियोंकी गणनामें सबसे प्रथम वही थे। अब भी उनके समान किसी कविके न रहनेके कारण अनामिका ही चरितार्थ होती है। इत्यादि बातोंसे यशकी उत्पत्ति स्पष्ट ही विदित होती है।

(२) धनकी उपलब्धि भी कवितासे होती है, सो किसीसे छिपी नहीं है।

(३) आनन्दप्राप्ति भी इसके द्वारा यथेच्छ होती है। यथा, सुबन्धु कविने लिखा है :—

अविदितगुणापि सत्कविभणितिः
कर्णेषु वमति मधुरधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि
हरति दृशं मालतीमाला।

अभिनव भानु कविने भी कहा है कि,—
"वित परिवार सुराज्यको,
उत्सव लागत नीक।
भानु तदपि सब लागही,
काव्य सामुहे फीक॥"

(४) दुःखनाश—मयूरादि कविवरोंको स्पष्ट ही हुआ है और प्रायः कतिपय कविवर ऐसे हो गये हैं जो कवितामें स्तुति करके अपने अनेक क्लेशसे विनिर्मुक्त हुए हैं।

(५) कवितासे चातुरी कला भी प्राप्त होती है। यथा - सर्वसुख उपजायिका एक नायिका अपनी सखीको एक चिट्ठी इस प्रकार लिख रही थी—"सखि वर्षतु कालेऽस्मिन् घनपीनपयोधरे। कान्तः सर्वगुणः श्रीमान् बाले दुःखेन लभ्यते।" उसी समय उस नायिकाके कोई गुरुजन वहां आ पहुंचे। बस, उन्हें देखते ही उसने 'बाले' के 'ले' पर एक बिन्दु रख दी, जिससे उस वाक्यका अर्थ कुछका कुछ हो गया। उसके पहले लेखका अर्थ यह था, कि 'हे निविड़ स्थूल स्तनयुक्त बालसखि! इस वर्षाकालमें सर्व गुणआगर कान्त मिलना दुर्लभ है।' पर 'ले' पर एक बिन्दु देनेपर उसका अर्थ इस प्रकार हो गया कि, सघन मेघयुक्त वर्षा कालमें सर्व शोभासम्पन्न कान्त (अति रमणीय) इन्दु दुर्लभ है। यही चातुरी कला है। ऐसे और भी कई पद्य हैं। यथा—'तनोषि संसार ससारभाखना।' यहांपर बिन्दु च्युतक है। 'संसार'का 'अनुस्वार' च्युत करनेसे 'ससार' हो जाता है। किसी किसी स्थानमें (१) दत्ताक्षर, (२) च्युताक्षर,(३) च्युतदत्ताक्षर होता है। यथा "कूजन्ति कोकिला साले" 'यौवने फुल्लमंजुलम्" 'किं करोतु

कुरङ्गाक्षी वदनेन निपीड़िता” यहां प्रथम वाक्यमें ‘सालपर कोकिलका कूजना’।’दूसरेमें ‘यौवनमें कमलका विकसित होना, और तीसरेमें ‘वदन द्वारा निपीड़ित होना’ सर्वथा असम्भावित है—अतएव ‘साले’में ‘र’ देकर ‘रसाले’ और ‘यौवने’से ‘यौ’ च्युत कर ‘वने’ अर्थात् ‘जले’ एवं ‘वदनेन’से ‘व’ च्युत कर उसके स्थानमें ‘म’ देकर ‘मदनेन’ बनानेसे तीनों वाक्योंका अर्थ सर्वथा सुसङ्घटित होता है।

(६) कविता वशीकरण है। यथा—‘विनय प्रेमवश भई भवानी’ (मा० रा०)

(७) कवितासे व्यवहार जाना जाता है। यथा—रामके समान सत्कार्य करना चाहिये, न कि रावणके समान। क्योंकि रामादि प्रवृत्तिमें मङ्गल और रावणादि प्रवृत्तिमें अमङ्गल होता है।

(८) कवितासे कान्तासम्मित उपदेश सम्पादन होता है। उपदेश तीन प्रकारके होते हैं—(१) प्रभुसम्मित अर्थात् जो उपदेश स्वामीके सदृश हो—अवश्य करणीय हो। जिसके न करनेसे पुरुष दण्डार्ह होता है। यथा, वेदोक्त उपदेश। (२) सुहृत्सम्मित उपदेश अर्थात् जो उपदेश मित्रके सदृश हो और जिसका करना कर्त्ताकी इच्छापर निर्भर हो। यथा, नीतिशास्त्रोक्त उपदेश। (३) कान्तासम्मित अर्थात् जो कान्ताके समान माधुर्य्यसे प्राप्त हो। यथा,—‘अन्यदाभूषणं पुंसां क्षमा लज्जेव योषितः। पराक्रमः परिभवे वैजात्यं सुरतेष्विव।’ यह श्लोक कविकुल-तिलक ‘माघ’का है। अर्थात् अन्य कालमें स्त्रीकी लज्जाके समान क्षमा पुरुषका भूषण है और परिभव अर्थात् शत्रुसे आक्रमण होनेके समयमें सुरतकालमें स्त्रीकी निर्लज्जताके समान पराक्रम भी पुरुषका भूषण है। इन तीनोंमें ‘कान्तासम्मित उपदेश’ जैसा अपना प्रभाव दिखावेगा, वैसा अन्य कोई उपदेश भी स्वकीय प्रभाव नहीं दिखला सकता है।

येही कविताके माहात्म्य हैं, जिसके विवश हो, नट मर्कटके समान मानवसमूह तदुपदिष्ट कार्य्य करनेके निमित्त तत्क्षण प्रस्तुत होजाते हैं। किं बहुना यह कविता हीकी महिमा है, कि चित्र-शिल्पविद्या आजतक चल रही है। नहीं तो कोई मनुष्य अननुभावित अदृष्ट पदार्थके रूपको चित्रित करनेमें कब समर्थ हो सकता था? अथच कविताने ही इतिहासादिकोंमें भी मधुर योग अगदके समान उपदेशत्व प्राप्त कराया है। कविता रूपेण प्रतिबद्ध नहीं रहनेसे कभी उपादेयता नहीं रहती। क्योंकि ‘मधुरप्रियो हि लोकः।’ अतएव कविताहीके द्वारा सामञ्जस्य और सौमनस्य रहता है। यथा—आप कहांसे आते हैं और आपका क्या नाम है? इसके बदले यदि इस प्रकारसे कहा जाय कि—“कस्यायि देशः कतमस्त्वयाद्य वसन्तमुक्तस्य दशां वनस्य। अव्यापिनानेन जनेन संज्ञा त्वदासङ्गतितया कृतार्था” अर्थात् श्रीमन्! आज आपने किस देशकी दशा वसन्तमुक्त वनसी की है और आपके संसर्गसे कृतार्थ संज्ञा क्या मुझ अधन्यसे श्रवण योग्य नहीं है? अब विचारनेकी बात है, कि ऐसा कौन मनुष्य निष्ठुर होगा, जो इस मधुरता-

को विवश हो, पिघलकर उत्तर न दे, और प्रसन्न न हो। हां, उसकी प्रसन्नता तभी असम्भावित समझी जा सकती है, जब आज्यको आंचपर देनेसे उसका पिघलना असम्भव हो। इसी प्रकार और भी कतिपय पद्यसमूह हैं, जिनके श्रवण मनन करनेसे ही आनन्दकी धारा बहने लगती है। एतदृरिक्त कवितामें अनेकानेक गौरव और गुणकी बातें भरी हुई हैं, जिनका उल्लेख यहां विस्तारभयसे न कर, अपनी त्रुटियोंके निमित्त क्षमाप्रार्थी हो, इतने होमें अपना लेख समाप्त करता हूं। क्योंकि "गतो गिरः पल्लवनार्थलाघवे मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता"।

---

(८)

समालोचनासे साहित्यका क्या लाभ है

लेखक—

पण्डित श्यामजी शर्मा काव्यतीर्थ।

इस विषयका जब विचार करने बैठते हैं, तब बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। प्राचीन कोई पुस्तक हमारी संस्कृत भाषामें नहीं मिलती जिससे हमें समालोचनाका वास्तविक रूप मालूम हो सके। समालोचनाका नियमपूर्वक कोई लेख न मिलनेपर भी यह देखा जाता है कि संस्कृतके टीकाकारोंने ग्रन्थके गुणदोषोंका अवश्य विचार किया है। और ग्रन्थोंके गुणदोषोंका निर्णय करनेकी ओर उनका कैसा ध्यान था, यह एक श्लोकसे ही भली भांति प्रगट हो सकता है;—

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं,
त्वमेव तनुषे चेत्
विश्वेऽस्मिन्नधुनान्यः
कुलव्रतं पालयिष्यति कः।

अर्थात् हे हंस यदि जल और दूधको विलग करनेमें तुम्हो आलस्य करोगे, तब इस संसारमें हंसके कुलका यह व्रत कौन पालन कर सकेगा?

इससे स्पष्ट है कि, हमारे देशके विद्वान प्राचीन कालसे ही समालोचनाकी महिमाको समझते आये हैं और ग्रन्थोंकी टीका करते समय उन ग्रन्थोंके गुणदोषको भी यथासम्भव दिखलाते गये हैं। साहित्यदर्पणमें साहित्यसम्बन्धी गुण और दोषोंकी विवेचना भी इसी बातकी पुष्टि कर रही है, इसमें सन्देह नहीं। तथापि जिस अभिप्रायसे वर्त्तमान कालमें "समालोचना" शब्दका प्रयोग होता है उस अभिप्रायसे समालोचनाकी रीति संस्कृत-भाषामें नहीं थी। वर्त्तमान रीतिकी समालोचना हमारे देशमें पाश्चात्य शिक्षाके साथ आयी है। इङ्गलैण्डमें भी यद्यपि वर्ड्सवर्थ स्वयं भारी समालोचक थे, तथापि उनके समय (१७७० से १८५० तक) समालोचनाकी वैसी कदर नहीं थी। वर्ड्सवर्थ समालोचनाकी अपेक्षा ग्रन्थरचनाको, चाहे कैसी ही खराब हो, उत्तम समझते थे। जर्मनीका प्रसिद्ध विद्वान गोएथ (Goeth) बड़ा उत्तम समालोचक था। जर्मनीका साहित्य समालोचनाके कारण जिस समय उन्नति कर रहा था, उस समय इङ्गलैण्डका साहित्य समालोचनाके अभावसे उन्नतिमें अग्रसर होनेमें

असमर्थ था। अंगरेज समालोचकोंने निश्चय किया है कि, समालोचनाके बिना साहित्य-की वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती।

हमारी हिन्दी-भाषामें समालोचनाके विषयमें विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूणकरके मराठी भाषाके प्रबन्धका अनुवाद "निबंध मालादर्श"में "समालोचना" शीर्षक लेख बहुत उत्तम और उपयोगी है। उससे पूर्व समालोचनाकी कोई पुस्तक शायद हिन्दी-भाषामें नहीं थी। इस पुस्तकका प्रचार हिन्दीभाषाभाषियोंमें जितना ही अधिक हो उतना ही साहित्यके गुणदोषके विवेचनके लिये लाभदायक है। इस समय समालोचनाका काम अधिक करके समाचारपत्रके सम्पादकोंके हाथमें है। पर खेदकी बात है कि, समाचारपत्रोंके सम्पादक भी प्रायः इस ग्रन्थसे परिचित नहीं जान पड़ते। नहीं तो हिन्दीसाहित्यकी समालोचनामें जो विभ्राट देखा जाता है वह कदापि नहीं होने पाता। समालोचना और समालोचकका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव यहांपर साहित्यकी उन्नति और लाभके विषयमें समालोचकके गुणका दिग्दर्शन करना कुछ अनुचित न होगा। समालोचक एक जौहरीके समान है। जैसे जौहरी सोनेको कसौटीपर चढ़ा खरे खोटे-को विलग कर, अच्छेका मूल्य बढ़ा देता है और खोटेको छाट बाहर करता है। वैसे ही समालोचक समालोचनारूप कसौटीपर चढ़ा भले और बुरे ग्रन्थोंको विलग विलग कर देता है। कौन ग्रन्थ उत्तम पढ़ने योग्य है और कौन नहीं, इसका ज्ञान सबको नहीं हो सकता। अतएव समालोचककी अत्यन्त आवश्यकता है। पर यदि जौहरी न्यायपरायण और सत्यनिष्ठ न हो, तो कसौटीसे भी कोई लाभ नहीं। वैसे ही यदि समालोचक यथार्थभाषी न हो, तो पुस्तकों-की समालोचना भी ठीक नहीं हो सकती। अतएव समालोचककी बहुदर्शी, सूक्ष्मदर्शी, प्राचीन और नवीन रीतिनीतिका ज्ञाता, धीरस्वभाव, सहनशील, क्रोधहीन, सदसद्विवेकी, न्यायपरायण पक्षपातरहित और यथार्थभाषी होना चाहिये। जो समालोचक इन गुणोंसे रहित हैं, उनकी समालोचनासे साहित्यके अङ्ग भङ्गकी ही अधिक सम्भावना है। समालोचकमें सत्यनिष्ठाका होना अत्यन्त आवश्यक है। सत्यनिष्ठासे जो समालोचना होगी, उसके द्वारा साहित्य-को सदा लाभ ही होगा। सत्यनिष्ठासे जो समालोचना होती है, उससे समाजमें सत्यका प्रसार होता है। सत्य ही समाज-का जीवन है। इस कारण समाजमें बराबर उत्साह दिखायी देता है और उत्साहके कारण नवीन नवीन ग्रन्थोंकी सृष्टि होती रहती है जिससे साहित्य हराभरा हो सदा उन्नति करता जाता है। समालोचना यदि योग्य और उचित रीतिसे की जाय, तो निःसन्देह साहित्यको लाभ होगा। मैथ्यू आरनल्डने अपने "समालोचना" शीर्षक प्रबन्ध (Essays on Criticism) में लिखा है। "Criticism is a disinterested endeavour to learn and propogate the best that is known and thought in the world" अर्थात् संसारमें जो कुछ जाना

जाता है या विचारा जाता है उसकी स्वार्थ रहित शिक्षा और प्रचारके लिये यत्न करनेका नाम समालोचना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि, यदि समालोचनासे साहित्यको लाभ पहुंचानेकी इच्छा हो, तो निरपेक्ष समालोचना होनी चाहिये। हमारे देशमें जो समालोचना होती है, उससे हिन्दी साहित्यका क्या लाभ होता है? हर एक विचारशील समझ सकता है। देशमें अनेक सम्प्रदाय, अनेक धर्म्म और अनेक जातिके लोग हैं। लेखक किसी न किसी धर्म्म सम्प्रदाय वा मतके अनुयायी हैं। समालोचक भी इसी प्रकार किसी न किसी दलमें अवश्य हैं। लेखक जो ग्रन्थ लिखते हैं उनमें बहुत सी बातें ऐसी हैं जो एक दलके विचारसे अच्छी जान पड़ती है, पर दूसरे दलके विचारसे वह अत्यन्त बुरी है। ऐसी अवस्थामें यदि समालोचक ईर्षा द्वेषसे प्रेरित हो समालोचना करने बैठे, तो उसकी समालोचना कदापि अच्छी नहीं होगी। देश और समाजकी भलाईके भिन्न भिन्न मार्ग हैं। और देशकी भलाई तथा साहित्यसे घना सम्बन्ध है। हर एक दलका मनुष्य अपने अपने विचारानुसार देशकी भलाईमें लगा हुआ है। वह अपने विचारसे देशकी भलाईके लिये जो ग्रन्थ लिखता है, उसीसे साहित्यकी पुष्टि होती है। अतएव समालोचकको उचित है कि, परिस्थिति (Circumstances) का विचार कर निष्पक्ष-भावसे समालोचना करे। यथा किसीने एक ग्रन्थ लिखा जिसमें मूर्त्तिपूजा छूआछूत आदि विषयोंका खंडन है और दूसरेने एक ग्रन्थ लिखा जिसमें इन विषयोंका मंडन है। अब ये दोनों ग्रन्थ समालोचककी पास समालोचनाके लिये आये। यदि समालोचक दोमेंसे किसी दलका पक्षपाती हुआ, तो अपने विचारके विरुद्ध होनेसे हो या तो मूर्त्तिपूजा खंडन वालेको भ्रष्ट बतावेगा या मूर्त्तिपूजा मंडन वालेको। पर यह कार्य्य समालोचकके लिये प्रशंसाई नहीं है। समालोचकको न्यायाधीशके समान निरपेक्ष बन पुस्तकोंमें लिखे युक्त-प्रमाणोंसे जांच करनी चाहिये कि, जो विषय लिखा है उसकी पुष्टि उसके लेखसे होती है या नहीं। दूधको अलग और पानीको अलग करना ही समालोचनाका काम है। जो सत्य और न्यायदृष्टिसे ठीक जंचे उसीके अनुसार अपनी निष्पक्ष सम्मति निडर होकर प्रकाशित करनी चाहिये। मतभेदके कारण कोई ग्रन्थ दूषित नहीं कहा जा सकता। ग्रन्थमें मुख्य करके भाव (Ideas) का विचार होना चाहिये। वैज्ञानिक दार्शनिक, ऐतिहासिक, धार्म्मिक वा सामाजिक लेख आदिको जैसे वे हैं वैसे ही ज्योंका त्यों देखना ही समालोचनाका यथार्थ रूप है। ऐसी समालोचनासे समालोचककी प्रतिष्ठा बढ़ती है, वह सबका प्रिय होता है और उसकी समालोचनाका प्रभाव सर्वसाधारणके ऊपर पड़ता है। ऐसी समालोचनासे साहित्यका बड़ा उपकार होता है। जब इस तरहके निष्पक्ष समालोचक समालोचनामें प्रवृत्त होंगे, तब बुरे ग्रन्थोंका प्रचार अनायास रुक जावेगा और भले ग्रन्थोंका प्रचार बढ़ जायगा।

आजकल सभी मासिक, साप्ताहिक, दैनिक आदि पत्रोंमें पुस्तकोंको समालोचनाएं निकला करती हैं। परन्तु उनमेंसे अधिकांशमें जो समालोचनाएं निकलती हैं वे वास्तवमें छापेखानेकी उत्तम छपाई, सफाई और कागजकी होती हैं। सर्व साधारण भी कागजोंकी सफाई और छपाई पर ही लट्टू बनते हैं। कुछ समालोचनाएं पुस्तकोंका केवल सूचीपत्र ही होती हैं। पुस्तकोंमें कौन सा विषय है, इस विषयको लेखकने किस योग्यता वा अयोग्यताके साथ सम्पादन किया है, इसका कुछ भी वर्णन नहीं होता। पढ़नेवाले पुस्तकके सम्बन्धमें अंधकारमें ही पड़े रहते हैं। इस तरहकी समालोचनाका होना और न होना दोनों बराबर हैं। इससे साहित्यका कोई लाभ नहीं। कितनी बार ऐसा भी होता है कि, चुटकिले नामोंको देख किसी साहित्यप्रेमीने किसी पुस्तकको मंगाया। आनेपर उसमें निरर्थक बातें पायी गयीं। साहित्यप्रेमीका उत्साह भंग हुआ। और भविष्यमें मंगानेकी इच्छा रखता हुआ भी उचित समालोचनाके अभावसे साहित्यप्रेमी शीघ्र मंगानेका उत्साह नहीं करता। उधर ग्रंथ उत्तम होनेपर भी ग्राहकोंके दुविधामें पड़कर न खरीदनेके कारण लेखकको टोटा पड़ा, जिससे वह फिर पुस्तक लिखने और प्रकाशित करनेका नाम भी नहीं लेता जिससे साहित्यकी वृद्धिमें भारी रुकावट पड़ती है। कितनी बार ऐसा भी होता है कि, पुस्तक युक्तिप्रमाणहीन, निस्सार तथा उत्तम भावोंसे बिल्कुल रहित है। पर समालोचकने अपने सम्प्रदाय वा मतविशेषकी होनेके कारण, उसकी जी भरकर प्रशंसा की। साहित्यप्रेमीने जो मतविशेषका न पक्षपाती है, न विरोधी, उक्त पुस्तकको मंगाया। पर पढ़कर हताश हुआ। समालोचककी सत्यनिष्ठा और न्यायनिष्ठामें भी उसे अरुचि होगयी। इस तरह साहित्यकी उन्नतिमें बाधा होगी, इसमें सन्देह ही क्या ?।

प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि, समालोचक लोग ईर्षा द्वेषसे प्रेरित होकर भी समालोचनामें प्रवृत्त होते हैं। मनुष्योंका यह स्वभाव है कि, दूसरोंके गुणोंपर तो उनका ध्यान ही नहीं जाता, पर दोषोंके देखनेमें वे सहस्राक्ष बनजाते हैं। तिसपर ईर्षा और द्वेषका चश्मा आंखपर चढ़जाता है। फिर तो ग्रंथों और उनके प्रणेताओंकी जो दुर्दशा होती है, उसका अनुभव ग्रन्थकार ही कर सकता है। ग्रन्थकारोंके ऊपर कुवाच्योंकी वर्षा होने लगती है। मानों ग्रन्थकारने पुस्तक लिखनेका साहस कर ऐसा घोर पाप किया, जिसके लिये सिवा कुवाच्यके और कोई प्रायश्चित्त उसके लिये हई नहीं है। समालोचकको, शायद यह भी स्मरण नहीं रहता कि, वह समालोचना ग्रन्थकी कर रहा है वा स्वयं ग्रन्थकारकी। ऐसे ऐसे समालोचकोंसे साहित्यका कोई लाभ नहीं हो सकता।

सहृदयता समालोचकके लिये सबसे उत्तम गुण है। जिस ग्रन्थकी समालोचना करनी है, उसके विषयसे पूर्ण परिचित होना आवश्यक है। जो मनुष्य भक्तिरसमें डूबा हुआ है, वह शृंगार रसके लेखोंको

पसन्द नहीं करेगा। सर्वसाधारण स्वभावतः शृंगाररसप्रधान ग्रन्थोंको रुचिके साथ पढ़ा करते हैं। ग्रन्थको रोचक बना सर्वसाधारणको विद्याकी ओर झुकानेके लिये शृंगाररस अद्भुत चमत्कारिक गुण रखता है। अब यदि भक्तिरसमें डूबा एक वैरागी समालोचक शृंगार रसकी पुस्तकोंकी समालोचना करने लगे, तो कदापि वह यथार्थ समालोचना कर साहित्यको लाभ नहीं पहुंचा सकता। यही बात और विषयोंमें भी समझनी चाहिये। बहुत से लोग काशीके उपन्यासोंकी निन्दा करते हैं और हम भी उनकी प्रशंसा नहीं करते। तथापि यह स्वीकार करना पड़ता है कि, उपन्यासोंने, निन्दित होनेपर भी, सर्वसाधारणमें पुस्तकावलोकनका चाव उत्पन्न करदिया है और कितने उर्दूके प्रेमियोंको हिन्दीकी ओर खींच लाये हैं, जिससे हिन्दी-साहित्यको लाभ पहुंचा है। समालोचनाका मुख्य कार्य्य ग्रन्थोंके गुणदोषोंका निरूपणमात्र है। जितने गुण हों उतने गुण और जितने दोष हों उतने दोषोंको दिखादेना ही समालोचकका कर्त्तव्य है। किसी ग्रन्थको हाथमें ले उसके दोषोंको विस्तारसहित दिखादेना और गुणोंका नाम भी न लेना महानीचता है। इस प्रकारकी कार्य्यवाहीसे ग्रन्थकारोंकी उत्तम पुस्तकोंका प्रचार भी सर्वसाधारणमें नहीं होने पाता। एक बार हतोत्साह होनेपर कोई ग्रन्थकार फिर ग्रन्थ लिखनेका साहस भी नहीं करता। इससे साहित्यकी भारी हानि होती है। समालोचकोंको स्मरण रहना चाहिये कि, कोई मनुष्य जनमते ही दौड़नेमें निपुण नहीं हो जाता। उसी प्रकार कोई लेखक हाथमें कलम लेते ही उत्तम लेखक नहीं होसकता। लेखकके गुण-दोषोंको भी इस रीतिसे दिखाना चाहिये, जिसमें लेखक अपनी त्रुटिको जानकर भविष्यमें वैसी त्रुटियां न करे और वह हतोत्साह भी न हो। नितान्त रद्दी और अनुपयोगी पुस्तकोंकी बात कुछ और ही है।

बहुत से लोगोंका यह विचार है कि, एक बार ही अच्छे अच्छे लेखकोंको चुन लेना चाहिये। फिर उन्हींके ग्रन्थोंको उत्तेजना देनी चाहिये। पर यह सिद्धान्त ठीक नहीं जान पड़ता। यह बात ठीक वैसी ही है जैसे कोई कहे कि, एक बार जो एम० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण होगये, उन्हींकी सहायता करनी चाहिये, औरोंको एम० ए० योग्य बनाना निरर्थक है। ऐसा होनेसे दो चार इनगिने लेखकोंके सिवा और कोई लिख ही नहीं सकेगा। और साहित्यक्षेत्रमें लिखनेका जो उत्साह सर्वसाधारणमें पाया जाता है, उसका स्रोत एक प्रकारसे बंद हो जायगा, जिससे कालान्तरमें साहित्यको भारी धक्का लगेगा।

सारांश यह कि, जो समालोचक समाजकी वास्तविक आवश्यकताको जानता है, वह न्यायपूर्व्वक काम करता है। किसीके पक्ष वा विरोधपर ध्यान न देकर सत्य और न्यायके ऊपर विशेष ध्यान दे यथार्थ भाषण ही करता है, जिससे समाज उसकी बातोंको आदरसे सुनता है। समालोचककी यथार्थ-भाषिताके कारण उत्तम उत्तम भावोंसे (Ideas) भरे ग्रन्थोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगती है। कैसी पुस्तकोंसे समाज

और देशकी भलाई होगी, इसको वह निष्पक्ष भावसे सर्वसाधारणमें प्रकट करता है जिससे जो लेखक दुराग्रही नहीं हैं, वे अपनी भूलोंको समझकर उनके सुधारमें लगते हैं और जो दुराग्रही हैं वे भी, चाहे अपनी भूलको स्वीकार करें या न करें, अपने दोषको अवश्य समझ जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि, सभी प्रकारके लेखक सावधानतासे काम करने लगते हैं और उससे साहित्यके कूड़ेकर्कटस्वरूप, निरर्थक, हानिकारक तथा नीच भावोंके प्रचारक ग्रन्थोंका लिखा जाना बंद होजाता है और अच्छे भावयुक्त उपयोगी ग्रन्थ ही समाजमें वृद्धि प्राप्त करते हैं। जनसमुदायको भी इससे विशेष लाभ होता है। अनुपयोगी, निरर्थक ग्रन्थोंको खरीदनेके व्यय तथा उनके पढ़नेमें व्यर्थ समयको नष्ट करनेसे लोग बचजाते हैं। जो लोग अनभिज्ञ हैं, वे भी अनुपयोगी पुस्तकोंके अभावसे उपयोगी पुस्तकों द्वारा सुमार्गमें चलने लगते हैं, जिससे समाजकी और देशकी दशा दिन दिन सुधरती और उन्नत होती जाती है। "समालोचनासे साहित्यका क्या लाभ है" यह दिखानेके लिये इतना ही पर्य्याप्त है।

—:०:—

(८)

समालोचना और उससे साहित्यको लाभ।

लेखक—
बाबू गोपालराम।

"शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि।

पहले आलोचना है, पीछे समालोचना। आलोचनाका अर्थ है, वारंवार विवेचना करना। उसका भाववाच्य आलोचन होता है। आलोचनका स्त्रीलिङ्ग आलोचना है। आलोचनाका अर्थ, है, आन्दोलन, अनुशीलन वा चर्चा करना। 'सम्'के साथ आलोचनाकी सन्धि होनेसे समालोचना होती है।

ईर्षाद्वेष, पक्षपात और कुतर्कादिसे दूर रहकर शुद्ध हृदयसे किसीके गुणदोष वर्णन करनेको समालोचना कहते हैं। समालोचना साहित्यजगतका* बड़ा नाजुक, बड़ा मधुर और परमावश्यक पदार्थ है। जैसे स्वच्छ साफ सुथरा वस्त्र तनक मैल लगनेसे दागदार कहलाता है, वैसे ही समालोचना भी तनक पक्षपात, बेतरह कड़ुवाहट और अनुचित स्वातन्त्र्यका धब्बा लगनेपर अपने ऊंचे और मान्य आसनसे गिर जाती है।

यदि साहित्य-वाटिकाको हराभरा रखनेके लिये समालोचनाको मालीके बायें हाथका इशारा कहें, तो उसको सुडौल

* यहां साहित्यसे भाषासाहित्य तात्पर्य्य है।

और सुहावना बनानेके लिये दहने हाथकी कैंची भी कहनी होगी। अर्थात् समालोचना साहित्यके सूखते हुए, किन्तु आवश्यक पौधोंको जैसे सींचती है, वैसे ही सड़े टूटे और अनावश्यक भागको काट छांटकर बाहर करती है। समालोचनासे साहित्योद्यानका कूड़ाकर्कट साफ होता है और एक तरहसे समालोचना साहित्यसेवियोंको सुमार्गपर चलनेके लिये पथप्रदर्शक होती है। जिस साहित्यमें समालोचना नहीं, वह साहित्य उन्नत नहीं हो सकता।

साहित्यमें कैसे ही ग्रन्थकार या लेखक हों, चाहे वे अपनी लेखनीसे देश, काल, पात्रका विचार करके उत्तम ग्रन्थ या प्रबन्ध रचें अथवा साहित्यवाटिकामें पुरीषवमन करें, समालोचना सबकी होती रहे, तो साहित्य अरुचिकर, अस्वास्थ्यकर और आवर्ज्जनापूर्ण नहीं होने पाता।

समालोचनाका साहित्यमें बड़ा ऊंचा दर्जा है। इसीसे पठित समाजमें इस बातका निर्णय होता है कि, कौन पुस्तक या प्रबन्ध सबके पढ़ने और मनन करने योग्य है। क्योंकि गुणदोष सबमें वर्त्तमान हैं, केवल दोष या केवल गुण सृष्टिमें नहीं मिल सकता। इस कारण जिसमें अधिक गुण है वही सर्वसाधारणके लिये उपयोगी और सबकी आदरकी वस्तु है। किन्तु इसका निर्णय पुस्तकका पूर्णरूपसे अनुशीलन किये बिना हो ही नहीं सकता। और सबको इतनी सामर्थ्य और समय नहीं है कि, सब खरीदकर उसकी साङ्गोपाङ्ग आलोचना करके निर्णय करें। इसके सिवा जब सबको सबके अनुशीलनकी आवश्यकता ही हुई, तब सर्वसाधारणका जो निकृष्ट, निन्दित अथवा घृणित पुस्तकादिसे अहित होता है उसकी भी रुकावट नहीं हो सकती। अतएव समालोचना द्वारा सबके समय और धनकी भी रक्षा होती है।

किन्तु एक बातमें पुस्तक या प्रबन्धको अच्छा या बुरा कह देना समालोचना नहीं है, न यह वैसी क्षमता वा पाण्डित्यका काम है। लगातार पानी बरसता देखकर आकाशको मेघाच्छन्न कहना अथवा उज्ज्वल सूर्य्यालोक देखकर सवेरा हुआ बतलाना, समालोचककी सूक्ष्म बुद्धि वा विचक्षणताका विशेष परिचायक नहीं है।

अथवा एक आदमीको पसन्दसे यह कहना कि, अमुक वस्तु मुझे कैसी जंची, समालोचना नहीं कही जा सकती, न उसका कुछ मूल्य होता है। क्योंकि यह बात किसी एककी पसन्द, नापसन्दपर होती है और इसमें एक देशदर्शिता और सङ्कीर्णता आजाती है। और ऐसे अवसरपर बहुधा समालोचक दिन दोपहरको अपने तर्कजाल और तामसी वाक्यछटासे अन्धकार प्रमाणित करनेकी चेष्टा करके उपहासप्राप्त होते हैं। और वही जब बढ़कर बातका बतङ्गड़ होजाता है, तब समालोच्य लेखक और समालोचक दोनों समालोचनाकी दीवार लांघकर गाली गलौज और कुवचनप्रहारके अखाड़ेमें जाते और वहीं दण्ड पेलने लगते हैं। यह मानना पड़ेगा कि, कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ये बातें पढ़ सुनकर आनन्द उठाते हैं और इस तरहके उदाहरण केवल हिन्दीमें ही नहीं,

अंगरेजी और बंगला आदि समुन्नत भाषाओंमें भी भरे पड़े हैं। अंगरेजोंके मिल्टन और सालमेसियसका वाक्ययुद्ध अथवा वङ्गभाषाके ईश्वरचन्द्र गुप्त और गौरीकान्त भट्टका संग्राम, भक्त रामप्रसाद और आगू गोसाईं का सवालजवाब और राजा राममोहन राय और उनके समयके पण्डितोंका वादविवाद छोड़कर हिन्दीसाहित्यमें भी देखिये तो हिन्दोस्थान, भारतमित्र, सरस्वती, श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार और हिन्दी वङ्गवासीकी नयी पुरानी फाइलोंमें ऐसे उदाहरण बहुत मिलेंगे। यहां किसी लेखक या प्रबन्धका नाम लेकर हमको अंखफोड़वा बनना नहीं है, इस कारण इस अवसरपर हम नाम लेनेके लिये भी इन समाचारपत्रोंसे क्षमा चाहते हैं।

इन दिनों हिन्दीकी दुनियामें समालोचनाके कितने ही रूप बनगये हैं। कुछ लोग संक्षिप्त समालोचना लिखते हैं, उसमें संक्षेपसे दो चार पंक्तियोंमें पुस्तक वा प्रबन्धपर मतामत प्रकाश होता है और छपाई, सफाई, कागज वगैरहका उल्लेख रहता है। कुछ लोग कई पृष्ठोंतक समालोचना लिखकर भी पुस्तकके गुणदोषसे अधिक लेखककी ही जांच पड़ताल करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो एक ही ओर देखकर समालोचनाकी चाबुक फटकारने लगते हैं, कुछ लोगोंको बाहरका ही रूप अच्छा लगता है। कुछ लोग भीतरका ही गुण चाहते हैं। कुछ लोग ललित पदावलीकी गुम्फनिकाको ही अति मधुर हृदयग्राहिणी कविता जानकर बाहरी चिकचिकाहट (?) और पालिसमें फंस जाते हैं और मोहान्ध नेत्रोंसे दोष नहीं देख पाते। और कितने ऐसे भी होते हैं, जो भीतर अजस्र भाव प्रवाह होते भी बाहरके ही दोषमें तन्मय हो रहते हैं। कुछ लोगोंको केवल दोष ही दोष दिखाई देता है और कुछ लोग केवल गुण ही गुण देखते हैं। किन्तु ये सब समालोचना नहीं करते, केवल रागद्वेष, पक्षपात और व्यक्तिगत स्वार्थकी पीठपर लोगोंरका काम देते हैं।

तात्पर्य्य यह कि, समालोचना बड़ा दायित्व और महत्वपूर्ण कार्य्य है। और उसी दायित्वपूर्ण कार्य्यका कर्त्ता समालोचक कहलाता है। जो अपने विरोधीकी बात सुनते ही अग्नि शर्मा हो जाता है, जो अपने मतसे विरुद्ध मतवालोंको तुच्छ और हेय समझता है, जो अपने ऊपर कुवचनप्रहार पाकर यक्ष्माके दुर्व्वल रोगीकी तरह आपेसे बाहर हो पड़ता है, वह समालोचक नहीं हो सकता।

बङ्गसाहित्यके एक प्रसिद्ध समालोचकने बहुत ठीक कहा है कि, समालोचकको निरपेक्ष चित्तसे जगतमें जो महत्, सत्य और सुन्दर है, उसीको यत्नसे पाठकोंके आगे रखना और हर एक विषय बड़ी सावधानीसे माप तौलकर देखना होता है। समालोचकका लक्ष्य और युक्ति ही उसका आश्रय और ज्ञान ही उसका सम्बल होता है। स्थैर्य्य और दृढ़ता ही उसका निर्भर है। सूक्ष्म सौन्दर्य्यानुभूतिसे उसका हृदय रमणीय होता है। विनय और सहृदयतासे ही उसकी कमनीय करना होता है। तभी समालोचनाकी सफलता होती है।

समालोचकको दिखाना होता है कि, पुस्तक या प्रबन्ध कैसे पढ़ा जाता है और कैसे पढ़ना उचित है। उसको साहित्यमें बिखरे हुए सौन्दर्य्यपरमाणु बटोरकर पूर्ण मूर्त्तिसे पाठकोंके सामने रखना होता है। ग्रन्थके अन्तरतम प्रदेशमें घुसकर ग्रन्थकार और पुस्तकका साफल्यविचार करना होता है। उसका अस्वास्थ्यकर और कुत्सित अंश तोड़फोड़कर साहित्यदेहसे निकालना और उसके सांक्रमिक प्रभावसे जातीय जीवन और साहित्यकी रक्षा करना समालोचकका कर्त्तव्य होता है। स्वयं क्षमताशाली होकर जनसमाजका जितना उपकार साधन किया जा सकता है, उससे वैसे ही क्षमतावानोंको साहित्यजगतमें परिचित और अग्रसर कर देनेसे अधिक उपकार साधित होता है। किन्तु प्रकृत समालोचनामें बाधाविघ्न भी कम नहीं हैं। व्यक्तिगत रुचि, शिक्षा और मनकी परिणतिका भेद समालोचकपर कम प्रभाव डालनेवाले नहीं होते। अतएव देखा जाता है कि, समालोचना सुगमसाध्य नहीं है और ऊपरसे विघ्न भी बहुत हैं। लेकिन साहित्यकी उन्नति और उत्कर्षताके लिये समालोचना बहुत ही आवश्यक है। इसके बिना हिन्दी-साहित्यका बड़ा अपकार हो रहा है। यदि नये पुराने ग्रन्थोंकी प्रकृत समालोचना हुआ करती, उत्तमका आदर, मध्यमका निरादर, निकृष्टको फटकार, आवश्यकीयको सत्कार मिला करता, तो हमको आज यह नहीं कहना पड़ता कि, हिन्दीके बाजारमें केशवदास, सूरदास, भूषण, मतिराम, चिन्तामणि और पद्माकरके उत्तम काव्योंकी चर्चा नहीं है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्रीनिवासदास, पं० अम्बिकादत्त व्यास, बाबू बालमुकुन्द गुप्तके उत्तम ग्रन्थरत्नोंका समुचित आदर नहीं देखते। पं० श्रीधरपाठक, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० नाथूराम शङ्कर, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० अयोध्यासिंहकी कविताका उतना सन्मान नहीं दिखायी देता। पं० वदरीनारायण चौधरी, पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० श्रीराधाचरण गोस्वामी, पण्डित अमृतलाल चक्रवर्त्ती, पं० सत्यानन्द जोशी आदि सुविज्ञ लेखक मानो हिन्दीकी दुनियासे दूर जा बैठे हैं।

भगवान वह दिन दिखाये जब हिन्दीमें समालोचनाका आदर और समालोचकोंकी वृद्धि होकर हिन्दी भाषा उन्नत हो। यही हमारी मङ्गलकामना है।

—०—

(१०)

हिन्दीमें विश्वकोषकी अपेक्षा!

—:०:—

लेखक—

पण्डित रामावतार शर्म्मा।

—:०:—

आज प्रायः सभी सभ्य जातियोंमें विश्वकोष वर्त्तमान है। अंगरेजीमें तो एक रुपयेसे लेकर पांच सौ रुपयेतकके मूल्यके विश्वकोष देखे जाते हैं। जर्मन, फ्रांसीसी आदि भाषाओंमें भी ऐसा ही है। पर भारतमें जहां कमसे कम दस करोड़ मनुष्य

हिन्दी बोलते और समझते हैं, हिन्दीमें अभी एक भी विश्वकोष नहीं है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (अंगरेजी विश्वकोष)-की उमर आज सौ वर्षसे अधिक हो चुकी है। इसका सबसे पहला जन्म तीन जिल्दोंमें हुआ था। विज्ञापित होते होते आज यह उन्तीस जिल्दकी मूर्ति धारण किये बैठा है।

'कालिदास कौन थे' या 'आरा नगरकी बसती कितनी है' यह देखना हो तो भारतीयोंको इसी कोषमें ढूंढ़ना पड़ता है या इसीके बच्चोंसे काम चलता है। हिन्दी-मात्र जाननेवाले इन कोषोंमें हाथ नहीं दे सकते। इसलिये उन्हें इन बातोंका पता लगाना कठिन होता है। भाषान्तर जाननेवाले हिन्दीभाषाभिज्ञोंका धर्म था कि, वे प्रत्येक विज्ञानकी कमसे कम एक एक पुस्तिका अपनी मातृभाषामें बनानेकी चेष्टा करते और साथ ही एक विश्वकोष भी तैयार करते, जो कि सब विज्ञान, दर्शन आदिका भाण्डागार होता। दो सौ रुपये महीनेके व्ययसे एक उत्तम मासिक पत्र निकल सकता है, जिसमें क्रमसे वैज्ञानिक, दार्शनिक ऐतिहासिक आदि प्रबन्ध और एक उत्तम विश्वकोषके खण्ड भी क्रमसे निकल सकते हैं। क्या दो रुपये महीना देनेवाले सौ आदमी या एक रुपया महीना देनेवाले दो सौ आदमी हिन्दीभाषियोंमेंसे नहीं मिलेंगे कि, जिससे यह कार्य चल निकले। यदि इतना भी नहीं हो सकता, तो हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाने किस भरोसे चले हैं। विश्वकोष जैसे कार्यमें कुछ सहायता बरोदा आदिकी देशभाषोन्नतिके लिये स्थापित पूंजियोंसे भी मिल सकती है। हिन्दीभाषियोंमें बी० ए०, एम्० ए० आदि उपाधिवाले भी बहुतेरे हैं। जरा सा ये लोग चित्त दें, तो विश्वकोषका कार्य शीघ्र चल निकले।

यदि कमी है, तो एक बातकी। बड़ी सभा, सम्मेलन आदिकोंने अभी इस ओर अपना ठीक चित्त नहीं दिया है और बड़े हिन्दीके नायकोंने भी इधर दृष्टिपात नहीं किया है। बहुत से कार्य भारतमें हो रहे हैं जिनमें कितने अपेक्षित हैं और कितने ही अनपेक्षित हैं। पर पुस्तकनिर्माणका कार्य बहुत ढीला सा चल रहा है। साधारण छोटी पुस्तकें भी देशी भाषाओंमें ठिकानेसे नहीं मिलतीं, तो विश्वकोषकी फिर क्या कथा। विश्वकोषकी ओर अभी-तक केवल बङ्गाली भाइयोंकी दृष्टि पड़ी है। एक वङ्गीय विद्वानने बड़ी कठिनाइयां झेलकर जैसे तैसे एक छोटामोटा विश्वकोष तैयार किया है। पूरी सहायता आदि न होनेसे बङ्गला विश्वकोष कुछ बहुत उत्तम नहीं बना है। पर नहींसे तो अच्छा है। जिस भाषामें उत्तमसे उत्तम साहित्य मिलता है, उसीको राष्ट्रभाषा पद-पर पहुंचनेकी आशा की जाती है। यदि हिन्दीवाले अपनी भाषाको कभी इस पद-पर पहुंचानेकी आशा रखते हैं, तो इन्हें अङ्गरेजी आदि अत्युन्नत भाषाओंके बराबर नहीं, तो बङ्गलाके बराबर तो, अपनी भाषाको बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये।

जिस भाषामें विज्ञान, दर्शन, इतिहास आदिके स्वतन्त्र उत्तम निबन्ध नहीं; प्राचीन

था वैदेशिक आकर-ग्रन्थोंके अनुवाद नहीं; हो एक उत्तम छोटे बड़े विश्वकोष नहीं; उस भाषाको अपनी मातृभाषा कहने-वालोंको तो लज्जाके मारे तबतक सभ्य जगत्‌में मुंह नहीं दिखाना चाहिये और अपनी भाषाके विषयमें कोई शेखी नहीं छांटनी चाहिये, जबतक वे अपने प्रयत्नोंसे अपनी मातृभाषाके इन कलङ्कोंको दूर न कर लें। आज यदि हिन्दी भाषावाले एक बहुत बड़ा विश्वकोष भी तैयार कर लें, तो उन्हें उस यशका लाभ नहीं हो सकता है जो कि, इस कार्य्यके अग्रणी पाश्चात्य भाइयोंको मिला है। क्योंकि एक नया काम करनेमें पाश्चात्योंको बड़ा परिश्रम और व्यय हुआ है। हालमें अङ्गरेजी विश्वकोषके अन्तिम संस्करणमें भी करोड़ों रुपये व्यय हुए हैं और पन्द्रह सौ वैज्ञानिक तत्त्वदर्शी ऋषियोंका परिश्रम लगा है। इस महासंहिताके भारतमें आजानेसे और सैकड़ों वर्षसे आङ्गलशिक्षाके प्रचार होते आनेसे भारतीय विद्यार्थियोंको एक छोटी-मोटी विश्वसंहिता बनानेमें अब बहुत प्रयत्न और बहुत व्ययकी अपेक्षा नहीं है। हमें तो जहाँतहांसे अनुवाद करके एक संहिता बना लेनी है। पर भारतीय देवताओंकी आलस्य-निद्रा ऐसी गहरी है कि, इनसे पाश्चात्य ऋषियोंके देखे हुए तत्वोंका अनुवादमात्र हो जाय और एक विश्वकोषके आकारका संग्रह भी बन जाय, तो इस भाग्यहीन भूमिका फिर भाग्य पलटता हुआ समझा जाय। हे साहित्यसम्मेलनके सभ्य और तमाशबीन महाशयगण! उदार-भावसे शीघ्र एक उत्तम हिन्दी मासिक पत्र निकालिये, जिसमें प्रतिमास खण्डश: एक बड़ा विश्वकोष, एक संक्षिप्त विश्वकोष और वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थोंके अंश निकलते जायं। आप लोग आज उसी देशमें सांस ले रहे हैं, जहां हमारे ऋषियोंके बनाये हुए मन्त्रोंका संग्रह वैदिक संहिताओंमें हुआ था। जहां शतपथ ब्राह्मण आदिका आविर्भाव हुआ था, जहां भारतके युद्ध हो जानेके बाद कलिमें भी महाभारतके सदृश पञ्चम वेद या अति प्राचीन विश्वकोषका निर्माण हुआ था। इसी भारतभूमिमें हजारों हजार मुनिलोग पौराणिक संहिताओंको सुनते थे और उसके प्रचारमें लगे रहते थे। आज भी इन्हीं लोगोंके प्रतापसे विचारे कथकोंको कथाओंसे राम, युधिष्ठिर आदि ऐतिहासिक नाम या मङ्गल, बृहस्पति आदि ज्योतिषके नाम घरघर विदित हैं। धिक्कार है हम नवसिखुओंको कि, सैकड़ों वर्षसे हम अलिफलैला, कैसरी, नयपाल्य आदिकी कथाओंको रटते रटते रह गये, पर आजतक वैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक आदि नाम भी हमारे द्वारा, हमारी हमारी कथनियोंसे, हमारे लेखोंसे, हमारे लेक्चरोंसे और हमारे गप्पोंसे हमारे भाइयोंमें गलीगली विदित नहीं हुए। अशिक्षितोंको कौन बतावे, बड़े बड़े पण्डित और ग्रैजुएटोंकी भी प्रायः ऐसी दशा रह गई है कि, उनमें रामायण, महाभारत, पुराण, तन्त्र, यन्त्र, सामुद्रिक, वैद्यक, ज्योतिष आदिकी बातें जैसी साधारणतः भार-

तमें विदित हैं, उसी प्रकार साम्प्रतिक इतिहास, विज्ञान, दर्शन आदिके तत्त्व अभीतक विदित नहीं हुए। यह अपराध किसका, जिससे यह अज्ञान आजतक चला जा रहा है और वह गुण किसका जिससे प्राचीन तत्त्वोंका आज भी अप्रतिहत प्रचार चला जा रहा है? यह अपराध उन स्वार्थियोंका जो विद्या केवल नौकरीके लिये पढ़ते हैं और टकेकी नौकरी पाकर मुंह फुलाये या नौकरी भी न पाकर मुंह बनाये बैठे रहते हैं। वह गुण उन महात्माओंका जो पहले भी विद्याके लिये विद्या पढ़ते थे और आज भी उसी प्रथाको जैसे तैसे चला रहे हैं। दूर पश्चिम विलायतमें अथवा दूर पूरब जापान आदिमें महापण्डितोंकी व्यवस्थाके डरसे आप नहीं जाते हैं। पर वङ्गदेशमें तो—

"अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्।"

इत्यादि पवित्र वाक्योंके रहनेपर भी कुलीसे लेकर वकीलके कामतक करनेको पहुंचते हैं। क्या वङ्गीय विद्वानोंको देखकर भी कुछ उत्साह नहीं होता? कुछ लज्जा नहीं आती? हिन्दी बोलनेवाले अगर डिपटी कलक्टर, डिपटी सुपरडण्ड या कलक्टर हो गये या कमसे कम वकालतखानेमें मक्खी भी मारने लगे तब तो इन्हें पढ़ी लिखी हुई बातोंके भूल जानेके अतिरिक्त और किसी कामके लिये समय ही नहीं मिलता और जिन बिचारोंको नौकरी चाकरी धन दौलत नहीं है उन्हें पेटका ही बहाना है। अब रह गये बीच बीचवाले एडिटर आदि जो थोड़ी बहुत हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। पर वङ्गीयोंमें देखो तो बङ्किम बाबू, आर० सि० दत्त आदि डिपटी कलक्टरीसे लेकर कमिश्नरीतक करते थे। वे तो हिन्दीवाले मिस्टरोंके सदृश केवल अधिकारकीट नहीं थे। उन्होंने बहुत कुछ देशको सेवा की। साथसाथ आफिस-रोटीन भी उनका ठिकानेसे ही चलता था और नौकरीमें भी हिन्दीवालोंसे कुछ कम तरक्की उनकी नहीं हुई। आजकलके विचारे विश्वकोष आदि लिखनेवाले या कितने और साहित्यसेवी वङ्गीयोंकी दशा देखिये। उन्हें न तो नौकरीका ही बल है और न घरका ही कुछ धन है, तथापि वे कितना काम कर रहे हैं। न अधिकारके बहाने फूले हैं और न पेटके बहाने मुंह बनाये बैठे हैं। रात्रिन्दिव देशकी सेवा करते करते अधिकारमें, विज्ञानमें, धनमें, उत्साहमें, शिल्पमें, वाणिज्यमें यदि आज वे कम हैं तो बाहरी लोगोंसे कम हैं। भारतके किसी प्रान्तवासीसे कम नहीं हैं। इन लोगोंसे भी तो विद्यामें प्रेम सीखो। कुछ काम आरम्भ करो। सभा, समाज, लेकचर, बकबक आदि तभी अच्छा लगता है, जब कुछ काम आरम्भ हो।

जब कहीं सम्मिलित होते हो, तो दस-बीस आदमी मिलकर आपसमें काम बांटो। तमाशबीनोंमें बहुतसे ईमान्दार आदमी भी आते हैं। उनसे द्रव्य संग्रह करो। बाहरी राजे महराजे वकील मुख्तार मुख्तार आदिसे भी उनके सेंतके पैसेमेंसे कुछ लो। सालके अन्तमें फिर मिलो, तो आप-

समें यह पूछताछ करो कि, किसने कितना काम किया। खाली वोटमें हाथ उठानेसे क्या होगा। हाथउठाईको सभा तो देशमें बहुत सी मौजूद ही हैं। बड़े संरम्भसे असली कार्य्य आरम्भ होना चाहिये। दसबीस मनुष्य भी हाथउठाई आदिमें विशेष श्रद्धा न रखकर असली कार्य्यों का आरम्भ कर दें, तो दसबीस वर्षमें एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिकासे तिगुने आकारको एक महासंहिता देशमें महिषमर्दिनी भगवतीके सदृश उठ खड़ी हो और अज्ञानरूपी महिषका कहीं पता न रहे और विलायती या जापानी साहित्यसे बढ़कर नहीं, तो बराबर गौरवका साहित्य-पूर्णचन्द्र देशमें उदित हो जाय जिससे मोहदम्भकी तामसी सन्ध्या देशको छोड़ कहीं दूर पलायित हो पड़े।

—०—

(११)

हिन्दू साहित्य प्रचारक।

लेखक—

बाबू विनयकुमार सरकार।

—:*:—

प्राय: अस्सी वर्ष हुए कि, 'गीजो' नामक एक फरासीसी पण्डितने अपने शिष्योंसे कहा था कि, हमारी जन्मभूमि ही योरोपीय सभ्यताका केन्द्र है और फरासीसी जाति ही समस्त सभ्यजगत्की शिरोमणि है। उसके कुछ कालके अनन्तर वाक्‌ल् नामक एक वैज्ञानिक अंगरेज युवकने दर्शाया कि, फ्रान्स, जर्म्मनी और अमेरिका प्रभृति पाश्चात्य देशमें इङ्गलैण्ड ही सब विषयोंमें उन्नत है। इङ्गलण्डका साहित्य और समाज एवं अंग्रेजोंका आविष्कार और शासनप्रणाली सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ है। लन्दनमें विश्वमानवपरिषद्की सभामें एक रूसी विद्वानने सिद्ध किया कि, विधाताने पूर्वी और पश्चिमी भूखण्डको समान शक्तिशाली करनेका भार हमारी ही जातिको दिया है। रूस जाति ही योरोपीय मानव-जीवनकी त्रुटियां दूर करेगी और रूसी सभ्यता ही एशिया खण्डमें, विशेषत: चीनराज्यमें देवराज स्थापित करेगी। आजकल नवीन जापानी कहते हैं कि, समस्त पाश्चात्य सभ्यताका केन्द्र चीन नहीं है, हिन्दुस्थान भी नहीं, वरन् जापान ही है। एशियाकी विशेषता (विशेष गुण) और पूर्वी देशके जीवनके मूलमन्त्रका प्रचार करनेके लिये ही जापानका अभ्युदय हुआ है। मनुष्यको सर्वांगसुन्दर और सम्पूर्ण करनेका विचार अङ्गरेजोंमें स्वप्नवत् ही था, जापानी उसको पूरा करेंगे। एक दिन एथेन्स राज्यके कर्णधार पेरिक्लीसने भी गर्वके साथ कहा था कि, हमारी नगरी ही जगतका विश्व-विद्यालय और सभ्यताका तीर्थ है।

इन लोगोंने युक्ति द्वारा अपना अपना मत प्रकट किया है। किसीने शारीरिक बलसे एवं जातीय गौरवकी घोषणा देकर अथवा स्वदेशहितैषिता प्रभृतिके प्रभावसे कोई बात नहीं कही। वास्तवमें स्वदेशकी बड़ाई, स्वजातिकी कीर्त्तिका प्रचार और जातीय सभ्यताका गुण वर्णन करनेमें उदारताको कोई बाधा नहीं पहुंच सकती

है और न इससे संकीर्णता, लघुता और अहङ्कार प्रकट हो सकता है। जैसे बंगालियोंके लिये भारतवर्ष एक महादेश है और हिन्दूसमाज एक विस्तृत जनसमूह है। परन्तु बंगदेश उनकी जन्मभूमि है। उनके जीवनके नित्य कर्म्मसे बंगदेशका ही घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिये बंगदेशका जितना अनुभव उनको हो सकता है, भारतवर्ष, हिन्दूसमाज और मानवजातिका उतना अनुभव नहीं हो सकता है। अपने प्रदेशका पूर्ण अनुभव प्राप्त होनेके बाद दूसरे देशका अनुमान मात्र हो सकता है। जो अपनेको नहीं पहचानता है, वह दूसरेको कैसे पहचानेगा? मनुष्य अपने सुख, दुःख अपनी आवश्यकता, अभियोग, अपनी धन-सम्पत्ति, अपनी चिन्ता और कार्य्यप्रणालीकी सहायतासे ही दूसरेका भला बुरा जीवन समझ पाता है। अपने लघुत्व, महत्त्व एवं अपने लक्ष्य और विशेषत्वका जिसको ज्ञान नहीं है, वह दूसरोंको कर्त्तव्य अकर्त्तव्यकी शिक्षा कैसे प्रदान कर सकता है? बिना गृहस्थ अतिथि सत्कार कैसे हो सकता है?

और इसलिये शिक्षाकी व्यवस्थामें छात्रको समस्त विषयोंमें गृहस्थ बनाना ही सब देशोंका प्रधान लक्ष्य है। अमेरिका, जापान, जर्म्मनी और इङ्गलैण्डमें हजार लाख देनेसे भी कोई अपनी सन्तानको एक बार ही विश्वबालक बनाना स्वीकार नहीं करता। क्योंकि विश्वविद्यालयोंमें आत्मोपलब्धिकी प्रणाली ही बताई जाती है और उससे केवल आत्मबोधका ही विकाश होता है। इसलिये चारों ओरसे जातीयता, स्वदेशिकता और सङ्कीर्णताकी ओर ही चितकी गति आकर्षित होती है।

विद्याके साथ जीवनका कोई सम्बन्ध नहीं रहनेसे वह विद्या मनुष्यके लिये एक बोझ हो जाती है। उस शिक्षासे मनुष्यकी त्रुटियां दूर नहीं हो सकतीं और न संसारका कोई कार्य्य ही हो सकता है। जिस विद्यासे आनन्द प्राप्त न हो, चित्तका विकाश न होवे, उस विद्याके पढ़नेसे कोई लाभ नहीं है।

भिन्नभिन्न जातियोंकी उन्नति और अवनति भिन्न भिन्न नियमोंसे होती है। प्रत्येक समाजका चरित्र भिन्न प्रकारका होता है। संसारका साहित्य, धर्म्म और राजशासनप्रणाली विचित्र है। इसके सिवा प्रत्येक जातिकी विचारप्रणाली भी निराली, अपने ही ढंगकी होती है। इसी कारण विज्ञान और दर्शन प्रभृति भी स्वतंत्र पथ और भिन्नभिन्न प्रणालीमें प्रकाशित हुए हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि, भारतवर्षका हिन्दूसमाज अन्यान्य समाजोंकी अपेक्षा अनेक विषयोंमें विभिन्न है। हिन्दुओंको जातीय प्रकृतिने विशेष विशेष घटनाचक्रोंमें विकाश लाभ किया है। हिन्दुओंका दर्शन, साहित्य और धर्म्म अन्यान्य सभ्यजातियोंके दर्शन, साहित्य और धर्म्मसे बिलकुल अलग हैं। इसलिये हिन्दूबालकको आरम्भकालसे ही विश्वबालक बनानेकी चेष्टा अस्वाभाविक है, एवं हिन्दू मुसलमान और क्रस्तानको एक नियम और एक ही भावमें परिचालित करना हानिकारक है।

हिन्दू शिक्षाको यदि वर्त्तमान समयके अनुकूल करनेकी इच्छा हो, तो उसमें स्वजाति और स्वदेशप्रेम उत्पन्न करनेकी व्यवस्था करनी होगी। हिन्दू शिक्षाको सबल करनेके लिये यह उद्देश्य उच्च शिक्षा विभागके हिन्दू साहित्यछात्रोंको अवश्य ग्रहण करना होगा और जिससे संस्कृत भाषा और प्राकृत, पाली तथा प्राचीन हिन्दी साहित्य प्रभृतिकी ओर उन्नत श्रेणीके विद्यार्थियोंकी पूर्ण दृष्टि रहे उसकी चेष्टा करना बहुत आवश्यक है।

दर्शनशास्त्रके शिक्षार्थी केवल प्लेटो, बेकन और डेकार्टे कण्ठ करके ही दर्शनशास्त्रमें पूर्ण ज्ञान लाभ नहीं कर सकते हैं। इतिहासके छात्र केवल विश्वसंवाद ग्रहण करके ही पूर्ण ऐतिहासिक और तत्त्ववित् नहीं हो सकते हैं। दर्शनकी यथार्थ शिक्षा प्राप्त करनेके लिये छात्रोंको पूज्यपाद महर्षियोंके बनाये हुए दर्शनशास्त्रोंको भली भांति पढ़ना होगा। उसके अनन्तर अन्यान्य दार्शनिकोंके मतामतसे तुलना करके पृथक्‌ता अथवा एकता स्थापित करनेकी चेष्टा करनी होगी। इतिहासकी आलोचनामें संस्कृत और प्राकृत भाषासे सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय जीवनकी सत्कोर्त्तिका उद्धार करनेके लिये उच्च विद्यालयोंमें व्यवस्था करना आवश्यक है। प्राचीन हिन्दू साहित्यमें ज्ञान लाभ करके छात्रोंको विद्यार्थी अवस्थामें ही प्राचीन ग्रन्थ और प्राचीन शिल्प प्रभृतिके अनुसन्धानमें प्रवृत्त होना होगा। दर्शन और इतिहासके शिक्षार्थियोंको प्रतिदिन हिन्दू साहित्य पढ़ना होगा, क्योंकि ऐसा नहीं करनेसे उनकी शिक्षा पूर्ण नहीं हो सकेगी। इसलिये सबसे पहले हिन्दू साहित्यकी मर्य्यादाका प्रसार करना परम आवश्यक है।

अब रही निम्नशिक्षाकी बात। इस ओर भी हम लोगोंका काम अधूरा ही है। पाश्चात्यबालक उच्च शिक्षाकी प्रथम सोपानपर पदार्पण करनेके पहले ही अपनी प्रचलित मातृभाषाकी सहायतासे जातीय साहित्यके मुख्य मुख्य भावोंको समझ जाते हैं। वे शेक्सपीयर, होमर, वर्जिल और दान्ते प्रभृति साहित्याचार्य्योंकी मूल रचनाओंको अपनी भाषामें समझनेके पहले ही उनका भाव और कल्पित दृश्य हृदयङ्गम कर लेते हैं। परन्तु भारतीय साहित्यमें हम लोगोंमेंसे कितने विचारशील पुरुषोंकी रचना समझ सकते हैं? कम पढ़े-लिखे लोगोंकी तो बात ही अलग है। किन्तु उच्च शिक्षाधारी हिन्दुओंमेंसे कितने संस्कृतके किरातार्जुनीय प्रभृति आलोच्य विषयोंको समझ सकते हैं। रामायण और महाभारतके अतिरिक्त आधुनिक भारतीय साहित्यसे प्राचीन हिन्दूसाहित्यका कुछ भी परिचय नहीं मिलता है।

बहुतसे लोग ऐसे हैं। जो उच्च शिक्षा प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं। उनको पुराण, नीति शास्त्र, काव्य और साहित्यका सारांश मातृभाषामें प्रदान करना होगा। जिन छात्रोंको वाह्यिक संस्कृत और प्राकृत साहित्यकी आलोचनाका सुयोग नहीं प्राप्त होता, उनके लिये हिन्दुओंके प्राचीन उत्कर्षविज्ञा-

पक प्रबन्ध निर्दिष्ट करने होंगे। और जो लोग उच्च शिक्षा लाभ करनेमें समर्थ हैं, उनको पढ़नेकी प्रथम अवस्थामें मातृभाषाकी सहायतासे प्राचीन हिन्दूसाहित्यका दिग्दर्शन कराना होगा।

इस प्रारम्भिक शिक्षाकी ओर हम लोगोंको यथेष्ट ध्यान देना होगा। इसलिये मातृभाषामें हिन्दूसाहित्यका प्रचार आरम्भ करना परम कर्त्तव्य है। कितने संस्कृत ग्रन्थ लोप हो गये हैं, उनका कुछ ठिकाना नहीं है और कितने ग्रन्थ जो कि भारतवर्षसे विदेशको चले जारहे हैं, उनको रोकनेकी क्षमता भी हमलोगोंमें नहीं है। इसके अतिरिक्त चीन, तिब्बत तातार और नैपालमें बहुतसे साहित्यके निदर्शन पड़े हुए हैं। उनकी खबर लेनेवाला कौन है? इन सब कार्य्योंके लिये साहस, समय और धनकी आवश्यकता है। पूर्वोक्त कार्य्य कठिन प्रतीत होता है, परन्तु अंग्रेजी, जर्मन और फरांसीसी भाषामें जो हिन्दूसाहित्यके जो विवरण प्रकाशित हुए हैं, हिन्दूसमाजमें उनका ही प्रचार करनेके लिये कितने भारतवासी परिश्रम कर रहे हैं? संस्कृतके कितने पण्डित संस्कृत भाषा और साहित्यके उद्धारकी चेष्टा कर रहे हैं?

परन्तु अब अपेक्षा करनेका समय नहीं है। मातृभाषामें हिन्दूसाहित्यका इतिहास प्रणयन करनेकी बहुत ही आवश्यकता है। हमारे आधुनिक साहित्यमें हिन्दूसाहित्याचार्य्योंकी जीवनी भी देनी होगी। और साहित्य समालोचनाका आदर बढ़ानेकी चेष्टा करना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भिन्नभिन्न संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थोंका सारांश एक करनेकी बड़ी ही आवश्यकता है। हिन्दीभाषामें इनका अनुवाद प्रकाशित करनेसे शिक्षाप्रणालीको बहुत सहायता मिलेगी, विचारशक्ति बढ़ेगी और मातृभाषा भी पुष्ट होगी। हिन्दीसाहित्यसेवकोंका इस ओर ध्यान पड़नेसे समाजकी उन्नति अति शीघ्र हो सकती है। संस्कृतज्ञ पण्डित यदि इस कार्य्यमें अपना समय थोड़ा भी लगा सकें, तो बहुत शीघ्र समाजमें नवजीवन आजायेगा और पण्डितोंकी सुकीर्त्ति होगी।

केवल शिक्षाक्षेत्रका प्रयोजन साधन करनेके लिये ही हिन्दूसाहित्य प्रचार करनेका उद्देश्य नहीं है। आधुनिक हिन्दी साहित्यको पुष्ट करनेके लिये भी प्राचीन साहित्यके प्रकाशका लक्ष्य नहीं है। इससे हमारा एक और बड़ा भारी मतलब निकल सकता है। अर्थात् प्राचीन साहित्योंमें ही हमारे आध्यात्मिक जीवनकी आलोचना है और उसीमें हमारी धर्मप्रणाली, आध्यात्मिक शिक्षाके उपाय और संयमपालनके नियमोंका वर्णन है। हिन्दू जिसे लेकर गौरव करते हैं, हिन्दू जिसको भारतवर्षका सर्वस्व कहते हैं और पाश्चात्यजगत् जिसको प्राच्य जगत्का विशेषत्व कहता है, वह इसी साहित्यमें निबद्ध है। आधुनिक हिन्दूजीवन, हिन्दुओंकी विचित्र रीतिनीति, हिन्दुओंका विविध अनुष्ठान और प्रतिष्ठानकी व्याख्या इसी साहित्यके भीतर गुप्त है। उसको छोड़ देनेसे हमारा सामाजिक जीवन अर्थशून्य

हो जायगा और हमारी जाति अपनी अतीत अवस्थाको भूल जायगी।

बाइबिलका प्रचार करनेके लिये क्रस्तानोंने क्या नहीं किया है? केवल हिन्दू ही अपने धर्मसाहित्यको तिलांजली देकर धार्मिक जीवनकी उन्नतिका उपाय न करके व्यर्थ समय काट रहे हैं। घरघर पुराण और शास्त्र नहीं रहनेसे आधुनिक समाजका विचित्र विधिनिषेध किस प्रकारसे समझा जायगा? घरघर गीता, वेदान्त और उपनिषद् न विराजनेसे धर्मउपदेश कैसे होगा?

संस्कृतसाहित्यके प्रचारसे मनुष्यका धर्मभाव किस प्रकारसे बढ़ सकता है। इसके विषयमें जर्मनीके पण्डित सोपनहैयरका कथन है कि—"उपनिषदने हमारे जीवनको शान्ति दी है और उपनिषद् ही हमको चरम शान्ति देगा।" एक और जर्मनने हिन्दुओंका गौरव प्रचार किया था। उनका नाम मेक्समूलर है। वे कहते थे,—"यदि कोई यह जानना चाहे कि, पृथ्वीमें किस जातिने विश्वके निगूढ़ तत्वोंकी आलोचना उचित रीतिसे की और यदि जानना चाहो कि, पृथिवीपर मानव जातिके चित्तका विकाश पूर्ण रूपसे कहां हुआ और यदि प्लेटो तथा कान्ट इत्यादि पाश्चात्य दार्शनिकोंके दर्शनसे बढ़कर और कुछ देखना हो और जिन बातोंका समाधान वे न कर सके हों वह सुनना चाहो तो भारतवर्षकी शरण लेनी होगी। यदि कोई जानना चाहे कि, ग्रीक, रोमन और यहूदी सभ्यता प्राप्त करनेके बाद और किस विषयमें ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करना कर्तव्य है। यूरुपियन अपने जीवनको मानुषोचित करनेके लिये किससे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं? किस साहित्यकी आलोचनासे योरोपनिवासी अपने कार्य्य और चिन्ताप्रणालीको अतीन्द्रिय, असीम और आध्यात्मिक जीवनके प्रभावसे उन्नत, उदार, महान् और पूर्ण कर सकते हैं, और कहांसे सारसंग्रह करनेसे उनकी त्रुटियां दूर हो सकती हैं? तो उसको भारतवर्षका ही आश्रय लेना होगा।"

धर्मग्रन्थ समझ हिन्दूसाहित्यका प्रचार केवल हमारी भाषामें होनेसे ही कार्य्य सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि मनुष्यजाति मात्रके लिये इस धर्मभावकी आवश्यकता है। समाज संसारमें मुक्तिके उपाय, अध्यात्मिक जीवनकी वाणी और अतीन्द्रिय जगत्की कथाके प्रचारका बहुत ही प्रयोजन है। पाश्चात्य शिल्प और कलाविद्यामें इस प्राकृत और मानवीय भावका प्रकाश नहीं होनेसे मानव जगत्में शान्ति स्थापित नहीं होगी। इसलिये जितनी ही अधिक भाषाओंमें हिंदू साहित्यका प्रचार हो सकेगा, उतना ही संसारका कल्याण है।

भारतवर्ष मनुष्यजातिका गुरु है। एवं हिंदू जाति शिक्षा और उपदेश प्रदान करेगी। प्रत्येक जाति अपनेको बड़ा समझती है। इसलिये जातीय अभिमान प्रकाश करनेसे कोई फल नहीं हैं। जर्मनीके कई एक पण्डित हिन्दुओंका अध्यात्मिक भाव देखकर चकित हुए थे। परन्तु कुछ लोग उनके कथनको बातुलता समझेंगे और

उनकी वाणीको पागलोंका प्रलाप कहेंगे एवं कोई समझेंगे कि, पाश्चात्य समाज अठा-रहवीं शताब्दीके अन्तमें नवीन चिन्तापद्धति अविष्कार करके नवीन भावसे मनुष्य जीवन सार्थक करनेकी व्यवस्था करतो थी। उस नये युगके आरम्भकालमें भारतवर्षके कर्म्म और उसकी चिन्ताप्रणालीका परिचय पाकर विद्वान् पुरुष निस्सन्देह उसकी प्रशंसा करेगा।

विद्या और विज्ञानके राज्यमें हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, क्रस्तान, प्राच्य और पाश्चात्य सभी लोग हिन्दूसाहित्यकी आलोचनामें अनायास ही प्रवृत्त हो सकते हैं। क्योंकि उस राज्यमें स्वादेशिकता और जातीय अभिमान नहीं है और न उस क्षेत्रमें छोटे बड़े और ऊंचनीचका भेद है। समस्त समाजका सार, समस्त जातियोंका संवाद और समस्त घटनाओंके तत्वकी आलोचना करना प्रकृत विज्ञानका कर्त्तव्य है। आज-कल पृथ्वीके ज्ञानभाण्डारसे नवीन तथ्य, नवीन घटना और नवीन संवादोंके एक करनेका बड़ा ही प्रयोजन है। तथ्या-भावसे समाजविज्ञानकी आलोचना अनेक विषयोंमें असम्पूर्ण रह जाती है। साहित्य और कलाविज्ञानका प्रतिष्ठाके लिये विभिन्न समाजोंसे नयी नयी बातें ढूंढ़नी होंगी। आजकल मनुष्यका धनसम्पत्ति एवं राष्ट्रीय जीवनके सम्बन्धमें यथार्थ सत्य निर्धारण करना भी एक प्रकारसे असम्भव है। इन सब विष-योंको योरोपनिवासी विज्ञान कहते हैं। परन्तु वास्तविकमें इन्हें विज्ञान नहीं कह सकते।

इन सब विज्ञानोंकी असम्पूर्णताका कारण यह है कि, पाश्चात्य पण्डित ही इन सब विद्याओंके प्रतिष्ठाता हैं। उन लोगोंने अपने कर्म्म और अपने चिन्ताक्षेत्रसे ही तथ्य संग्रह किया है। योरोप जैसे छोटे देशके बाहर एक विशाल और विचित्र जगत् पड़ा हुआ है, उसका समाचार उनको पूर्णतया ज्ञात नहीं है। वे अपने देशमें ही जो कुछ पाते हैं उसीसे समस्त संसारका अनुमा-किया करते हैं, पर यह एक बड़ी भारी भूल है। वे यहांतक अंधे हो रहे हैं कि, ग्रीस जातिको सभ्यताका प्रथम स्तर मान बैठे हैं एवं अन्यान्य प्राचीन देशोंके लिये अवैषयिक एवं अराष्ट्रीय शब्दका प्रयोग करते हैं। अर्थात् यूरोपियोंके साथ जिस जातिके जीवनप्रवा-हका मेल नहीं मिलता है उस जातिको वे असभ्य कहते हैं। इसी कारण उनके समाज, साहित्य, धर्म्म, अर्थ और राष्ट्र प्रभृति विष-यक विद्याओंकी विशेष उन्नति नहीं हो सकी है। संकीर्णता और जातीयताके दोषसे उनका प्रसार होता है।

जड़विज्ञान, उद्भिद्‌विज्ञान, जीवविद्या, प्राणविज्ञानके विषयमें सार्वदेशिक एवं सार्व-कालिक सत्यका आविष्कार होना आरम्भ हो गया है। इन सब विषयोंमें प्राकृत विज्ञानकी प्रतिष्ठाका समय अति सन्निकट है। इसका कारण यह है कि, इस विष-यमें रागद्वेषको रोकना कठिन नहीं है। विचित्र देशोंसे विचित्र वस्तुएं संग्रह करके यथासम्भव निरपेक्ष भावसे उसकी आलो-चना करनेमें रागद्वेष क्यों उत्पन्न होगा?

परन्तु मनुष्य विषयक तथ्य संग्रह करनेका क्षेत्र अबतक भी बहुत संकीर्ण है। विभिन्न देशोंका आचार व्यवहार, विभिन्न समाजोंकी रीतिनीति, विचित्र जातियोंका धर्म्मकर्म्म; सौजन्यता और शिष्टाचारकी आलोचना करनेका पूरा सुयोग अबतक भी नहीं प्राप्त हो सका है। उसको नहीं पानेसे पदार्थविज्ञानकी भांति धर्म्मविज्ञान, राष्ट्रविज्ञान और धनविज्ञानकी उन्नति किस उपायसे होगी? पृथ्वीके केवल दो तीन उद्भिदोंकी आलोचना करके समस्त उद्भिद् जगत्के सम्बन्धमें मत प्रचार करनेसे असम्पूर्णता रह जाती है। इसी प्रकारसे संसारकी दो एक जातियोंकी आलोचना करके इस समय मानवजातिको उपदेश देनेकी चेष्टा व्यर्थ है।

हिन्दू जातिने एक विचित्र दृष्टिसे संसारका निरीक्षण किया है, एक स्वतन्त्र उपायसे समाज गठन किया है, गृहस्थ जीवनकी व्यवस्था की है और सुन्दर प्रणालीसे अन्न उपार्जनके उपायका प्रचार किया है। इसलिये पाश्चात्यदेशके समाजविज्ञानको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डव्यापी करनेके लिये हिन्दूधर्म्म और सामाजिक जीवनकी आलोचना निस्सन्देह यथेष्ट सहायता करेगी। राष्ट्रविविज्ञान और अन्यान्य मानव विषयक विज्ञानको सार्वकालिक और सार्वदेशिक भावमें गठन करनेकी अपेक्षा हिन्दूसाहित्यके प्रचारसे बहुत सी विचारयोग्य बातें मालूम हो सकती हैं। इससे चिन्ताराज्यमें नये नये पथ खुल जायंगे और साहित्यसंसारमें एक विचित्र जगत्की सृष्टि होजायगी। इसके फलसे तुलनामूलक आलोचनाप्रणालीका काम तीव्र गतिसे होगा और पाश्चात्य जगत्का उपदेश भारतीय चिन्तापद्धतिके द्वारा अनेक विषयोंमें संशोधित, परिवर्त्तित और परिवर्द्धित हो सकेगा।

मेइन नामक एक अंग्रेज पण्डितने संस्कृतसाहित्यके आविष्कारके फलसे तुलनासिद्ध अनुशासन विज्ञानके स्थापित करनेकी आशा की थी। जर्मनीके श्लेगल नामक पण्डितने तुलनासिद्ध धर्म्म और भाषा विज्ञानका पूर्वाभाव देख पाया था। इन सब विषयोंमें कुछ कुछ कार्य्य हुआ है, परन्तु इस कार्य्यको पूरा करनेके लिये भिन्न भिन्न देशोंकी समाजमें हिन्दूसाहित्यकी विस्तृत आलोचना होना आवश्यक है एवं विद्यालय, सभासमिति, संवादपत्र और सामयिक साहित्यमें हिन्दूसभ्यता और हिन्दूदर्शनके महत्व प्रचार करनेका नितान्त प्रयोजन है। और पृथ्वीके विश्वविद्यालयोंकी उच्च श्रेणियोंमें दर्शन और इतिहासके छात्रोंको संस्कृत और प्राकृत साहित्य एवं हिन्दूदर्शन पढ़ानेकी व्यवस्था करना आवश्यक है। पाश्चात्य जगत्में प्रतिवर्ष बहुतसे छात्र दर्शनशास्त्रमें सर्वोच्च उपाधि प्राप्त कर रहे हैं। परन्तु वे संस्कृत भाषा एवं भारतवर्षके विस्तृत और विचित्र दर्शनोंका मतवाद नहीं जानते हैं। यह अभाव दूर न होनेसे पाश्चात्य विश्वविद्यालयोंकी व्यवस्था उत्तम नहीं कही जा सकती है। इसलिये हिन्दूसाहित्यका पठन विश्वविद्यालयोंकी उच्च श्रेणियोंके छात्रोंका प्रधान कर्त्तव्य है।

सबसे पहले इस विषयकी ओर भारत-वासियोंको ही ध्यान देना चाहिये। योरोपीय पण्डितोंने संस्कृत साहित्य आविष्कार करके विश्वसाहित्यके साथ इसका सम्बन्ध स्थापित किया है। अब हिन्दुओंकी पारी है। उनके बतलाये हुए मार्गसे कार्य्य करनेके लिये हिन्दुओंको प्रस्तुत होना पड़ेगा। जिससे जर्म्मनी, जापान, अमेरिका और इङ्गलैण्डके विश्वविद्यालयोंमें एवं चीन, रूस और फ्रांसकी शिक्षापद्धतिमें हमारा साहित्य उन्नत मर्य्यादा लाभ कर सके, उसके लिये भारतीय कर्म्मवीरोंको परिश्रम और समय व्यय करना होगा।

सोलहवीं शताब्दीमें प्राचीन ग्रीक साहित्यके विस्तारसे योरोपमें एक नया युग उपस्थित हुआ था। बीसवीं शताब्दीसे हिन्दू-साहित्यके प्रचारक द्वारा मनुष्य जातिका नव अभ्युदय होगा। भारतके शिक्षाप्रचारक, विद्याप्रचारक एवं साहित्यप्रचारक विश्वका विज्ञानभाण्डार और मानवजातिका सारस्वत क्षेत्र आप लोगोंके अपूर्व साहस, परिश्रम और आपकी जगतव्यापिनी शक्तिकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

—:३::६:—

(१२)

सम्मेलन द्वारा हिन्दीके विशेष उपकार होनेके उपाय।

लेखक—

बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा।

—:○❀○:—

यद्यपि हिन्दीभाषाके बोलनेवालोंकी संख्या वर्त्तमान भारतमें और दूसरी भाषाओंके बोलनेवालोंसे पृथक्तः कहीं अधिक है और यद्यपि इसको टूटेफूटे, भ्रष्ट और विकृत रूपसे व्यवहार कर भारतवर्षके अन्य भाषा-भाषी लोग भी अपना काम चला लेते हैं। क्योंकि यही एक भाषा है, जो प्रत्यक्षतः भारतव्यापी कही जा सकती है। तथापि इस कथनको सिद्ध करनेके लिये कि, इस समय हिन्दीसाहित्यकी दशा बहुत अवनत है, कुछ प्रमाण उपस्थित करनेकी आवश्यकता नहीं होगी। कामको चला लेना एक बात है—किसीकी भाषा बुरी तरहसे बोल कर उस भाषाकी मानो नकल बनाना एक बात है—और उस भाषाकी साहित्यवाटिकामें भ्रमणकर उसका आनन्द अनुभव करना और स्वर्गसदृश पवित्र सुख भोग करना दूसरी बात है। हिन्दीसाहित्यकी उन्नति जैसे हमारे सुलेखकोंपर निर्भर है, वैसे ही उन सुलेखकोंके ग्रन्थरत्नके पढ़नेवालोंकी वृद्धिपर भी निर्भर है। दोनों वर्गोंका सम्बन्ध परस्पर है। अच्छे पाठक ही अच्छे ग्रन्थ कारोंको कार्य्योन्मुख करते हैं और उसी तरह अच्छे ग्रंथकार अच्छे

अच्छे पाठकोंको आकर्षित करते हैं। हिन्दी-साहित्यकी उन्नतिके निमित्त दोनों वर्गोंकी उन्नतिकी आवश्यकता है। ग्रन्थोंके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि, हम लोगोंके साहित्यभाण्डारमें अच्छे अच्छे ग्रंथ बहुत से हैं। पर पढ़नेवाले ही नहीं मिलते हैं। यह कहना कुछ ठीक अवश्य है, पर बिलकुल ठीक नहीं है। यह एक साधारण बात है कि, पुराने ग्रंथोंके, उनके अच्छे होनेपर भी, बहुत कम पढ़नेवाले निकलते हैं। उन ग्रंथोंको हमलोग अपने पास रखते जरूर हैं। और कभी कभी उनको उलटपलट कर देखते भी हैं, पर पढ़ते उनको बहुत कम हैं। उनको आदरकी दृष्टिसे देखते है। उनका प्रमाण मानते है। पर उनमेंसे थोड़ेको ही उस श्रद्धा और तृष्णाके साथ पढ़ते हैं। यह बात मैंने हिन्दी-भाषाके सम्बन्धमें कही है। संस्कृतके, जो इस समय मृत अर्थात् अप्रचलित भाषा है, ग्रंथोंके बारेमें यह कहना सब अङ्गोंमें उपयुक्त कदाचित् नहीं है। पर हिन्दीके पुराने ग्रंथोंके पढ़नेवालोंकी न्यून संख्या कुछ विलक्षण और अतएव विशेष निन्दाकी बात नहीं है। ऐसा होना मनुष्यस्वभावके अनुकूल है। अंग्रेजी-साहित्यकी भी यही दशा है। हमलोग स्वभावतः नई वस्तुओं, नये प्रबन्धों और नई रचनाओंकी ओर दौड़ते हैं। नयापनमें एक विलक्षण आकर्षण-शक्ति है। पुरानी चीजें हमलोगोंकी सम्मानदृष्टिको अपनी तरफ खींचती है। लेकिन नई चीजोंकी तरफ हमलोगोंका हृदय स्वयं आकर्षित हो जाता है। कोई कोई कहते हैं कि, सब अच्छी बातें, सब लिखने योग्य बातें, हमारे पुराने सुलेखक लोग लिख गये हैं। अब लिखनेके योग्य कुछ बाकी नहीं है। इस सिद्धान्तका नम्रतापूर्व्वक मैं विरोध करता हूं। अवश्य, अभी क्या सदैव, लिखनेके लिये विषय मौजूद रहते हैं। सोचनेवालों और लिखनेवालोंका उस ओर ध्यान देना प्रतीचित है। जब गंदी चीजोंके लिखनेके लिये सामग्री मिलती है, तब अच्छी बातोंके विषय क्यों न मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे—मिलेंगे क्यों—वे तो मौजूद ही हैं। उपन्यास, नाटक, काव्य और गद्य ग्रंथोंके लिखनेके लिये विस्तृत मैदान सामने पड़ा हुआ है। हमलोग चलते चलें, उसमें अपनी अपनी वाटिका लगावें। हमलोग उद्यत हों और साहित्यरूपी वृक्षोंका रोपन प्रारम्भ करें। सुन्दर साहित्य कोई ऐसी चीज नहीं है, जो दूर स्थानसे लानी पड़े। सुन्दर साहित्य हमारे हृदयमें भरा है। उसका हृदयसे सम्बन्ध है। चाहे गद्य हो, चाहे पद्य, चाहे नाटक हो, चाहे उपन्यास, उसका इस ढंगसे लिखना कि, वे लेखकके हृदयसे निसृत होकर पाठकके हृदयमें प्रवेश कर जायं। यही सुन्दर साहित्य है—यही उत्तमोत्तम काव्य है। इस सम्बन्धमें एक बात और कह देना आवश्यक समझते हैं। साहित्यकी सीमा संकीर्ण नहीं है। इसकी सीमा उदार और विस्तृत है। शास्त्र, विज्ञान, धर्म्मनीति, समाजनीति, अर्थनीति और राजनीतिके वर्त्तमान विचार-विषयक ग्रन्थ, भूगोल, इतिहास और जीवनचरित्रके ग्रंथ लिखे जानेके लिये अभी

लेखनी उठाईतक नहीं गई है। साहित्यका एक नया अंग, जो एक बारगी अर्व्वाचीन है, तिसपर भी अभी उपयुक्त रूपसे ध्यान नहीं दिया गया है। वह क्या है? पत्रसम्पादनकार्य्य है। इस कार्य्यके भी कई विभाग हैं। जैसे दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रोंका सम्पादन, फिर समालोचनाके और समालोचनायुक्त ग्रंथोंका निर्म्माण करना और अन्तत: पुस्तकोंका संशोधन और सम्पादन और उनकी भूमिका लिखनी. ये सब कार्य्य भी कुशलहस्त लेखकोंकी खोज करते हैं। इस मार्गमें भी साहित्यकी उन्नति करनेकी आवश्यकता है।

अब दूसरे विषयपर विचार उपस्थित होता है। आप कहेंगे कि, हिन्दीभाषाके ग्रंथकर्त्ता अपने कार्य्यमें दत्तचित्त होते नहीं देखे जाते हैं, क्योंकि हिन्दी भाषाके ग्रंथोंके पाठकोंकी संख्या बहुत कम है। पढ़नेवालोंसे सहायता मिलती नहीं, उत्साह लिखनेवालोंका कैसे बढ़े? आप कहेंगे कि, सहायता मिलनेसे ही अच्छे अच्छे ग्रन्थकार उत्तमोत्तम विषयोंपर लेख लिखनेको प्रस्तुत होंगे।

यह कहना बहुत ठीक है। यह वास्तविक अभाव है। इसको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। हिन्दीसाहित्यसम्मेलनका यह एक प्रधान कर्त्तव्य होगा कि, ऐसे उपायोंको काममें लावे, जिनसे हिन्दीभाषियोंकी रुचि ग्रंथावलोकनकी ओर बढ़े। पुस्तकावलोकनके सुखका यथार्थ ज्ञान भारतवासियोंको साधारणत: और हिन्दीभाषियोंको विशेषत: बहुत कम है। इस अवस्थामें इसका यह प्रधान धर्म्म है कि, वह ऐसी युक्तियां सोचे और उनको इस तरहसे काममें लावे कि, जिससे हिन्दीसाहित्यकी ओर हिन्दीभाषियोंकी रुचि खिंचे, हिन्दीसाहित्यसे वे प्रेम करनेको उत्सुक और उत्साहित हों, हिन्दीसाहित्य उनके सुखके बढ़ानेका कारण बने और सुखके साथ वे लाभ भी उठावें, उनका चरित्र श्रेष्ठ हो, स्वभाव सम्मार्ज्जित हो, न्याय और धर्म्मके वे पक्षपाती हों और परस्पर प्रेमकी वृद्धि उनमें हो अर्थात् वे सभ्य और श्रेष्ठ समझे जावें।

उन्हीं उपायोंको अंकित और उन्हींपर विचार करना इस लेखका उद्देश्य है।

जिस तरह मनुष्यजीवनकी एक अवस्था वह है जब कि, बालक निरा अबोध रहता और उसके माबाप वा संरक्षक उसको खड़ा होना, चलना और दौड़ना सिखाते हैं। तत्पश्चात् उसकी रुचि पढ़नेकी ओर फेरते हैं और अनेक उपायोंसे—कभी गेंदोंके ज़रिये, कभी ताशके सहारे—उसको वर्णमाला सिखाते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि, कुछ वर्षोंके बाद वह बालक एक विद्वान हो जाता है और शरीरसे भी पुष्ट बना रहता है, मूर्ख और पंगु नहीं होने पाता। उसी प्रकार संसारके जातीय जीवनमें भी किसी समय बाल्यावस्था और उसके साथ मूर्खावस्थाका आवेश हो जाता है। उस समय उस जातिको सुशिक्षित करना अत्यन्त परिश्रम, सहिष्णुता और सतर्कताका काम है। हिन्दीभाषी जाति आज उसी अवस्थाको प्राप्त है। इस जातिमें पठनशीलता वर्त्तमान नहीं है।

यह स्वभाव अभी इसमें उत्पन्न हो नहीं हुआ है। तब पुस्तकप्रेम कहांसे हो। हम जानिमें इसी कारण श्रेष्ठ और निकृष्ट साहित्यके परतालनेकी बुद्धि, जिसको समालोचकबुद्धि कहते हैं, अभी व्यवहृत होते नहीं देखनेमें आती है। तब अपने लाभ और हानिपर विचार करनेका ज्ञान उत्पन्न होना तो दूरकी बात है। ऐसे समयमें, जो हमलोगोंमें विचारवान हैं, उनका यह कर्त्तव्य होगा कि, वे हिन्दीभाषाभाषी जातिको समुन्नत करनेकी चेष्टा करें।

अभीतक हमारे हिन्दीभाषाभाषी भाई लोगोंने उचित रूपसे साहित्यसुधारसका पान किया ही नहीं है, इसीलिये हमलोग इतने चिन्तित हैं। जब एक बार यह विशाल हिन्दीभाषाभाषी जाति साहित्यसुधारससे अभिज्ञ हो जायगी, तब फिर हमलोग केवल चिन्तामुक्त हो नहीं हो जावेंगे, वरन् इसके साथ निश्चिन्त होकर बैठनेका अवसर भी न पावेंगे। अच्छे साहित्यकी मांग आने लगेगी और आज जो कवि वा ग्रंथकार एक अच्छी पुस्तक लिखकर और उसके प्रकाश होनेकी आशा न देखकर अपने बुरे भाग वा देशवासियोंकी अश्रद्धाकी निन्दा करता है, उनको तब दम मारनेकी फुरसत नहीं मिलेगी और वह समझने लगेगा कि, लक्ष्मी सरस्वतीकी अनुगामिनी हैं, और मालूम कर लेगा कि, जो सरस्वतीकी सेवा करता है, उसपर लक्ष्मी भी प्रसन्न रहती हैं। इसलिये इस समय हमलोगोंको विचार करना चाहिये कि, हिन्दीसाहित्यकी ओर प्रेम उत्पन्न करनेके लिये हमलोगोंको कौनकौन काम करने चाहियें।

(१) प्रथम कार्य्य तो, हिन्दीभाषा और साहित्यकी ओर लोगोंके ध्यान खींचनेके लिये नगर नगर और गांवगांवमें उपदेशकोंके भेजनेका है जो कार्य्य बाहरसे अत्यन्त सरल मालूम होनेपर भी अत्यन्त कठिन है। क्योंकि इन उपदेशकोंको, धर्म्मोपदेशकों की तरह धर्म्मशास्त्रोंके प्रमाण धर्म्मांधश्रोताओंके सन्मुख नहीं रखना होगा, पर अपने बुद्धि-कौशलको इस तरह काममें लाना होगा कि, जिससे श्रोताओंकी श्रद्धा हिन्दीसाहित्यकी ओर झुके और वे हिन्दीभाषासे प्रेम करने लगें।

(२) किन्तु उपदेशकोंके भेजनेकी व्यवस्था यद्यपि इस समय बहुत आवश्यकीय है, पर अधूरी है और इसकी पूर्त्ति होनी चाहिये। नगर नगर और गांव गांवमें हिन्दीसाहित्यके रसिक और इस सम्मेलनके स्वेच्छासेवक साहित्यसम्मेलनकेन्द्र स्थापित करें, जिनमें साहित्यप्रचारकी आवश्यकतापर सूक्ष्म व्याख्यान देनेका कार्य्य साहित्योपदेशकोंके लिये छोड़कर केवल लाभदायक स्वास्थोपयोगी विषयोंपर बातचीत करें, जनसाधारणके विनोदार्थ कविता पाठ करें और यदि हो सके, तो कविसमाज और नाटकमण्डली स्थापित कर कवितानिर्म्माणाभ्यास और नाटकाभिनय किया करें। सांसारिक कार्य्योंसे परिश्रान्त लोगोंके विनोदार्थ इसी प्रकारके कुछ उपाय सोचें। क्योंकि, साहित्यसेवनका प्रत्यक्ष फल सुखप्राप्ति है, जो तात्कालिक और अनुभवगम्य हो।

(३) फिर, प्रधान नगरों और गांवोंमें पुस्तकालय स्थापित किये जायं, जहां उन

स्थानोंके जनसाधारण इकट्ठे हों और पुस्तकावलोकन और वार्त्तालाप करें। इन पुस्तकालयोंके साथ व्याख्यानकी व्यवस्था भी कर दी जा सकती है, जो किसी विषयपर लगातार दो चार महीनोंतक हुआ करेगा। शिक्षाप्रसारका यह एक अत्यन्त सुगम्य उपाय है।

(४) सम्मेलनको चाहिये कि, साहित्यविषयक एक साप्ताहिक वा मासिक पत्रिका स्वयं प्रकाश करे वा किसी यंत्राध्यक्ष वा ग्रन्थप्रकाशकके द्वारा प्रकाश करावे, जिसमें केवल साहित्यविषयक लेख ही नहीं रहें, वरन् मुख्यत: सप्ताह व महीनेभरकी छपी समस्त हिन्दीपुस्तकोंका एक बृहत् सूचीपत्र भी रहा करे, जिसमें पुस्तकोंके नाम, आकार, पृष्ट-संख्या, ग्रन्थकर्त्ताके नाम, मूल्य, प्रकाशस्थान आदि बातें दी जाया करें।

(५)सम्मेलनको एक वार्षिक साहित्यडायरेक्टरी वा इयर बुक (वार्षिक पुस्तक) छपवानी चाहिये, जिसमें साहित्यसेवकों, ग्रन्थकर्त्ताओं, प्रकाशकों और सभाओं और प्रकाशित पुस्तकोंकी सूचियां हों और तत्सम्बन्धी यथोचित समालोचना भी हो।

(६)सम्मेलनद्वारा ग्रन्थप्रकाशकोंसे प्रार्थना की जाय कि, वे लोग उत्तम पुस्तकोंके सुलभ संस्करण प्रकाश करें। क्या ही खेदकी बात है कि, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा अन्य ग्रन्थकारोंकी पुस्तकें सुलभ मूल्यमें नहीं मिलती हैं और कितनी तो अब मिलती ही नहीं हैं।

(७) सम्मेलनको चाहिये कि, एक साहित्यसहायक कोष संस्थापित करे और हिन्दीके सुलेखकोंसे अच्छे और उपयोगी ग्रन्थ लिखनेकी प्रार्थना करे और ग्रन्थोंके लिखेजानेपर उनके लेखकोंको पुरस्कार वा पारिश्रमिक देकर उन ग्रन्थोंके छापनेका भार उठावे वा किसी ग्रन्थप्रकाशक द्वारा छपावे।

(८) सम्मेलनका यह भी एक कर्त्तव्य होना चाहिये कि, वह हिन्दीग्रन्थप्रकाशकों, हिन्दीभाषाप्रचारिणी सभाओं और हिन्दीहितैषी संस्कृत और अंग्रेजीके विद्वानोंसे प्रार्थना करे कि, वे हिन्दीभाषामें विज्ञान, नीति, शिक्षा, इतिहास, आदि विषयोंपर छोटी छोटी पुस्तकें बनावें, बनवावें और छपावें और ऐसे कार्य्योंकी प्रशंसा सहायता द्वारा किया करें। इस विषयपर गत वर्षके सम्मेलनके समय पण्डित रामावतार शर्म्माने एक प्रबन्ध पढ़ा था, जो द्वितीय साहित्य सम्मेलनकी रिपोर्टमें छपा है और जो मनन करने योग्य है।

बहुत से उपायोंमें ऊपर कुछ थोड़े से उपायोंका कथन किया गया है। विचारवान लोग इनपर विचार करें और अन्यान्य उपायोंको भी सोचें और विचारें। वस्तुत: हिन्दीभाषाभाषियोंमें पढ़नेकी रुचि नहीं है। प्रथमत: इनमें पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करनी चाहिये और उसको बढ़ानी चाहिये। साहित्यसम्मेलनको इसी विषयपर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसीके साधनसे सब अन्यान्य उद्देश्योंका साधन स्वत: हो जायगा। युरोप और अमेरिकाके लोगोंमें विद्याप्रेम अधिक है। हमलोगोंमें उदासीनता अधिक है। इस शिथिलतायुक्त उदासीनताको दूर करना हिन्दीसाहित्यसम्मेलनका कार्य्य होना

चाहिये, और हिन्दीसाहित्यसम्मेलनका कार्य्य इसके सहायकोंपर निर्भर है। अतएव हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके सहायक समस्त हिन्दीभाषाभाषियोंका यह परम कर्त्तव्य है कि, वे इस ओर अपने ध्यानको खेंचें और जिन उपायोंसे देशमें विद्यारुचि बढ़े, उनको काममें लावें और आलसको स्थान न देकर देशकी भाषाको उचित स्थान प्रदान और देशवासियोंका कल्याण करें।

सम्मेलन और सम्मेलनके अनुयायी और सहायकोंको पूरे हृदयसे कार्य्य करना चाहिये, हताश कदापि न होना चाहिये। जब हमलोग दत्तचित्त होंगे, तब भगवान अवश्य ही हमलोगोंकी सहायता करेंगे।

ये सब कार्य्य तो सम्मेलनके करने योग्य कहे गये हैं, पर कुछ और ऐसे कार्य्य हैं जिनका सम्मेलनके साथ सम्बंध न रहनेपर भी यदि हिन्दीहितैषी उनका सम्पादन भार अपने ऊपर उठालेवें, तो हिन्दीसाहित्यकी उन्नति और प्रचार बहुत शीघ्र हो।

प्रथम, सम्पादकसमितिको सुदृढ़ करना। यह बड़ी हीन अवस्थामें वर्त्तमान है।

द्वितीय, हिन्दी ग्रन्थकारों और लेखकोंकी एक सभा वा समिति स्थापित करनी। इसकी आवश्यकता सम्पादकसमितिसे भी अधिक है।

तृतीय, हिन्दीभाषाके सब प्रकाशित ग्रन्थोंकी एक वार्षिक सूची छपनी चाहिये। अंग्रेजी भाषामें The Annual Catalogue of English Books नामक पुस्तक जो छपती है, बड़े कामकी होती है।

चतुर्थ, Hindi who is who अर्थात् हिन्दीभाषामें कौन क्या है प्रत्येक साल छपना चाहिये जिसमें भारतवर्षके प्रसिद्ध लोगोंको संक्षिप्त जीवनी रहे।

पञ्चम, एक ऐसी वार्षिक पुस्तक छपनी चाहिये जिसमें राजनीतिक व्यवस्था और अन्यान्य उपयोगी विषय, जो India List, Stateseman's Year Book आदिमें छपते हैं, चुन कर वा उन्हींके ढंगपर तैयार कर छापे जायं।

षष्ठ, हिन्दीसमाचारके सम्पादकोंको चाहिये कि, वे अपने पत्रोंमें साहित्यको अधिक स्थान प्रदान करें और ग्रंथोंकी समालोचना इस प्रकार लिखें कि, हिन्दीपाठकोंको रुचि उस ओर अधिक आकर्षित हो।

सप्तम, समाचारपत्रके प्रबन्धकर्त्ताओंको चाहिये कि, पुस्तकोंके—विशेषत: नवप्रकाशित पुस्तकोंके—विज्ञापनकी दर किफायत कर दें कि, जिससे हिन्दीग्रन्थोंके अधिक विज्ञापन समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हों।

अष्टम, बम्बईप्रान्तमें कुछ देशहितैषी लोगोंने संकल्प किया है कि, वे लोग एक बक्स उपयोगी पुस्तकोंको कुछ समयके लिये एक गांवमें गांववालोंके पढ़नेके लिये भेज देंगे और जब वहांवाले उन ग्रन्थोंको पढ़ लेंगे, तब वे उन पुस्तकोंको दूसरे गांवमें भेज देंगे। इसी तरह कुछ सज्जनोंको हिन्दी-पुस्तकोंके प्रचारके लिये भी प्रबन्धभार उठा लेना चाहिये।

इसी प्रकार और भी उपाय मालूम होंगे।

११

देवनागरी लिपिको शीघ्रतासे लिखनेयोग्य बनानेके उपाय

—:○::○:—

लेखक—
पण्डित गौरीशंकर भट्ट

—:३::६:—

अत्यन्त हर्षकी बात है कि, आजकल देशमें एक भाषाकी चर्चाके साथ ही एक लिपिके विस्तारकी भी चर्चा हो रही है। जब आर्यभाषा (हिन्दी)का नाम देशभाषा हो सकनेवाली भाषाओंकी सूचीमें सबसे प्रथम है, तो जिस लिपिमें यह भाषा लिखी जाती हो वही क्यों न उतनी ही आदरणीय हो। निस्सन्देह देवनागरी लिपिका नाम, देशमें प्रचलित सब लिपियोंमें अग्रगण्य है। क्यों न हो, "गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते", गुणोंकी ही सर्वत्र पूजा होती है। देवनागरी अक्षरोंकी समानरूपता, उनका सुडौलपन और सौन्दर्य, पर्याप्त-उपयोगिता भी साथ लिये हुए हैं। कहते हैं कि, मनुष्यके स्वभाव और चरित्रका अनुमान उसके लेखसे किया जाता है। अतः मैं यह भी कहूंगा कि, जातिके स्वभाव और चरित्रका अनुमान उसकी लिपिसे हो सकता है। जैसे मनुष्यका मन उसके लेखमें प्रतिविम्बित होता है, वैसे ही जातिका मन उसकी लिपिमें प्रतिविम्बित होता है। देवनागरीलिपिको हमारे पूर्वजोंने इतना सौन्दर्यसम्पन्न और उपयोगी बना दिया है कि, संसारकी सम्पूर्ण लिपियोंमेंसे इसकी समता करनेवाली कोई भी लिपि नहीं है। विविधि प्रकारके घुमाव और गोलाइयां सौन्दर्यके मूल हैं। वे देवनागरी अक्षरोंमें सरल रेखाओंके साथ ऐसी विधियुक्त मिलाई गई हैं कि, उनके देखनेसे मन प्रसन्न हो जाता है। संस्कृतभाषा देवभाषा और देववाणीके नामसे प्रसिद्ध है और वह देवनागरी अक्षरोंमें ही लिखी जाती है। बङ्गाल, गुजरात, काश्मीर, बम्बई, मदरास, पञ्जाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश और मध्यभारत आदि प्रदेशोंमें संस्कृत भाषाके ग्रन्थ देवनागरी अक्षरोंके सिवाय अन्य किसी प्रादेशिक लिपिमें बहुधा लिखे और छापे नहीं जाते। अतएव देवनागरीलिपि भारतवर्षकी सर्वप्रधान और देशव्यापिनी लिपि समझी जाती है। देवनागरी वर्णमालाकी सरलता और उपयोगितामें किसीको सन्देह नहीं है, देवनागरी अक्षर व्यवहार करनेमें किसीको कठिनाई नहीं पड़ती। अतएव बम्बई, पञ्जाब और मदरासके विश्वविद्यालयोंमें भी संस्कृतके प्रश्नोंका उत्तर देवनागरी अक्षरोंमें ही लिखा जाता है। इतना ही नहीं, बह्मदेश और सीलोनमें पाली भाषाके ग्रन्थ देवनागरी अक्षरोंमें ही छापे जाते हैं और सात समुद्रपार इङ्गलैण्डतकमें संस्कृत भाषाके ग्रन्थ देवनागरी अक्षरोंमें ही छपते हैं। मराठी, गुजराती और गोर्खी आदि कई भाषाओंके अनेक समाचारपत्र देवनागरी अक्षरोंमें छपते हैं। कलकत्तेसे प्रकाशित होनेवाले 'देवनागर' पत्रमें संस्कृत, बंगला, गुजराती और मराठी आदि कई भाषाओंके लेख

देवनागरी अक्षरोंमें प्रकाशित करके उसके माननीय सञ्चालकोंने सिद्ध किया है कि, देवनागरी अक्षरोंमें भारतवर्षकी सम्पूर्ण भाषाएं उत्तमतापूर्वक लिखी और छापी जा सकती हैं। भारतवर्षमें छापेका कल जारी होते ही बम्बई, कलकत्ता और काशी आदि महानगरोंमें संस्कृतके अच्छे अच्छे ग्रन्थ देवनागरी अक्षरोंमें ही छपे। इससे स्पष्ट है कि, सम्पूर्ण भारतवर्षमें यही अक्षर सबसे अच्छे समझे गये हैं। सर्कारी रिपोर्टोंसे विदित है कि, देवनागरी लिखनेपढ़नेवालोंकी संख्या सब प्राकृत लिपियोंके लिखनेपढ़नेवालोंसे बहुत बढ़ी हुई है। इस समय बङ्गाक्षर भी उन्नतावस्थामें है, परन्तु स्वर्गीय श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महोदयने अपनी 'व्याकरणकौमुदी'के चतुर्थ भागके सूत्र देवनागरी अक्षरोंमें छपवाये थे। राजा सर राधाकान्त देवका सुप्रसिद्ध कोष शब्द-कल्पद्रुम' देवनागरी अक्षरोंमें ही छपा है। पण्डित जीवानन्द विद्यासागरने कलकत्तेमें बहुत से ग्रन्थ देवनागरीमें छापे हैं। इससे स्पष्ट है कि, वङ्गदेशमें भी देवनागरी अक्षरोंकी आवश्यकता है। स्वनामधन्य श्रीयुत माननीय जस्टिस सारदाचरण मित्र महोदय भी कहते हैं कि, सम्पूर्ण भारतवर्षमें देवनागरी लिपि होनी चाहिये और आपने इसके लिये बहुत कुछ यत्न भी किया है। यह इस बातका और भी स्पष्ट प्रमाण है कि, न्यायशील बङ्गाली सज्जन भी देवनागरी अक्षरोंको सब अक्षरोंसे अधिक उपयोगी और आवश्यक समझते हैं। बङ्गाली विद्वानोंकी देवनागरीसे केवल सहानुभूति ही नहीं है, वरञ्च वे ही देवनागरी अक्षरोंके प्रचारके अगुआ कहे जा सकते हैं। क्योंकि सबसे पहिले उन्होंने इस बातका प्रस्ताव किया था कि, देवनागरी लिपि सम्पूर्ण भारतवर्षकी लिपि बने।

बड़े ही आनन्दकी बात है कि, आज बङ्गालके ही महानगर कलकत्तेमें देवनागरी लिपिको शीघ्रतासे लिखने योग्य बनानेका उपाय भी सोचा जारहा है। शीघ्र लिपिका प्रयोजन समय बचानेके लिये साधारण व्यवहारमें भी होता है और अधिकतर उस अवस्थामें होता है, जब किसी वक्ताका भाषण उसी वेगसे लिखना आवश्यक हो जैसा कि, वह वक्ता अपने भाषणको तरङ्गमें बोल रहा हो। परीक्षणोंसे विदित हुआ है कि, साधारण बोलचालमें मनुष्य प्रत्येक मिनटमें १२० शब्द बोला करता है। १५० शब्द बोलना भी अधिक नहीं है। १८० और २०० शब्द भी प्रत्येक मिनटमें बोले जाते हैं। अत: लिखनेका वेग भी न्यूनसे न्यून इतना तो होना ही चाहिये कि प्रत्येक मिनटमें २०० शब्द सुगमतासे लिखे जा सकें। जिन देशोंमें विद्योन्नति हुई है और जहां सभ्यताने पदार्पण किया है, वहांके मनुष्योंको इसकी आवश्यकता पड़ी है। यूरोपमें १०वीं ईसवी शताब्दीसे इस चिप्रलिपिकलाकी ओर वहांके लोगोंका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित हुआ था और सैकड़ों मनुष्योंने एक दूसरेकी लिपि और संकेतोंमें हेरफेर करके इसे उन्नत किया था। इङ्गलैण्ड इस प्रयत्नमें बहुत आगे रहा और वहां इसका प्रचार भी अच्छा हुआ। १८वीं

और १८वीं ईसवी शताब्दीमें इसकी विशेष उन्नति हुई और इसमें सर आइजक पिटमैनके आविष्कारका अधिक प्रचार हुआ। इस समय उसीका अधिक बर्ताव होता है।

भारतवर्षमें शीघ्र लेखकी उन्नति कबसे हुई, इसका पता लगाना कोई सहज बात नहीं है। परन्तु पुराण और इतिहाससे यह पता लगता है कि, पूर्व-पुरुषोंको भी अबकी भांति शीघ्र लिखनेकी आवश्यकता थी। जिस समय भगवान वेदव्यासजी पुराण रचना करने बैठे, उस समय ऐसे लेखककी आवश्यकता हुई कि, जो अत्यन्त शीघ्रतासे जैसे वह बोलें लिखता जाय और इस कार्यको श्रीगणेशजीने पूरा किया। उस समयकी लिपि कैसी थी, यह नहीं बतलाया जा सकता। परन्तु निस्सन्देह वह लिपि इस अवस्थामें न थी जैसी कि, आजकल पुस्तकोंमें पाई जाती है। पुराने शिला-लेख और ताम्रपत्र इस बातके साक्षी हैं। पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाजीकी बनाई हुई "प्राचीन लिपिमाला" नामक पुस्तकमें विक्रमीय संवत्से २०० वर्ष पहले मौर्यवंशी राजा अशोकके समयसे लेकर विक्रमीय संवत् १३१८तकके अनेक शिला-लेख और दानपत्रोंके चित्र संग्रह किये गये हैं। उनसे स्पष्ट है कि, क्रमशः लिपिमें रूपान्तर होता चला आया है और शनैः शनैः उनमें सौन्दर्यकी वृद्धिकी गई है। वर्तमान समयकी कैथी, मुड़िया और महाजनी आदि लिपियां भी इस बातको प्रगट कर रही हैं कि, शीघ्र लेख वा क्षिप्रलिपिकी आवश्यकता बहुत दिनोंसे लोग अनुभव करते आये हैं और उनका कार्य्य किसी न किसी अच्छे अथवा भद्दे स्वरूपमें प्रचलित भी है।

अब देखना यह है कि, शीघ्र लिपिके लिये कैसे अक्षर होने चाहियें और देवनागरी वर्णमालामें उनका किस प्रकार भावाभाव है। शीघ्रतासे लिखनेके लिये निम्नलिखित तीन बातोंका होना आवश्यक प्रतीत होता है;—

१—अक्षरोंकी बनावट ऐसी हो कि, बिना लेखनी उठाये अक्षर तथा शब्द लिखे जायं, प्रत्युत वाक्यके वाक्य भी बिना लेखनी उठाये ही लिखे जासकें।

२—अक्षरोंकी रचना सरल हो, उनमें अधिकांश सरल रेखाएं और सरल चापें हों।

३—अक्षर वा सङ्केत शब्दपर हों। अर्थात् अक्षरोंका नाम और प्रयोग एक ही हो।

देवनागरी अक्षरोंमें पहला और दूसरा गुण नहीं है। उसका प्रत्येक अक्षर पृथक पृथक लिखा जाता है और एक एक अक्षरके लिये कई कई बार लेखनी उठानी पड़ती है। यदि 'मोहनलाल' लिखना हो, तो 'मो' पृथक् बनेगा, उसका 'म' अक्षर बनाकर लेखनी उठानी पड़ेगी, तब 'ो'की मात्रा लगानेमें दो बार लेखनी उठाई जायगी। इसी प्रकार प्रत्येक अक्षर लिखनेमें दो दो तीन तीन चार चार बारतक लेखनी उठानी पड़ेगी और पूरा नाम लिखनेमें १० से लेकर १६ बारतक लेखनी उठाई जायगी; इससे एक नाम लिखनेमें अवश्य अधिक देरी लगेगी। इसके अतिरिक्त

देवनागरीकी अत्युन्नत रचनामें सीधी सादी रेखाएं कम ही हैं, प्रत्येक अक्षरमें कई प्रकारकी मोड़ें और घुमाव हैं। जो अक्षर अत्यन्त सरल और सादे हैं, जैसे 'ग', इसमें भी सरल और गोल आकार सम्मिलित हैं। सारांश यह कि, देवनागरी अक्षरोंकी रचना साधारण नहीं है। अवश्य ही इनमें तीसरा गुण है। अर्थात् इनके लिये जो शब्द मुखसे बोले जाते हैं उन्हीं नामोंसे अक्षर हैं। जैसे अंगरेजीका 'यू' (u) बोलनेसे जान पड़ता है कि, उसमें तीन अक्षर 'वाई' (y) 'ओ' (o) और 'यू' (u) मिले हुए हैं; ऐसा देवनागरीमें नहीं है, इसमें एक ही अक्षर उच्चरित होता है और वही लिखा जाता है।

इस समय देश-व्यापिनी प्रधान लिपियां तीन हैं। पहली राष्ट्रलिपि होनेवाली देवनागरी, दूसरी राज-सम्मानित उर्दू और तीसरी राजलिपि अंगरेजी। अंगरेजी अक्षरोंमें शीघ्र लिखे जानेके पहले दो गुण न्यूनाधिक विद्यमान हैं, अतः अंगरेजी शब्द बिना लेखनी उठाए लिखे जा सकते हैं, उनमें लेखनी उठानेकी आवश्यकता नहीं। उनकी रचना देवनागरी अक्षरोंकी अपेक्षा बहुत सादी और सरल है, परन्तु उनमें तीसरे गुणका पता ही नहीं है। अंगरेजी वर्णमालामें अक्षर भी बहुत ही कम हैं, अतः एक व्यञ्जनके लिये दो तीन अक्षर मिलाने पड़ते हैं। स्वर भी पूरे नहीं हैं, अतएव उनकी न्यूनता पूर्ण करनेके लिये दो स्वर मिलाकर एक बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त लेखनशैली भी अति विलक्षण है। कहीं कहीं निष्प्रयोजन ही कुछ अक्षर अधिक लिख दिये जाते हैं। जैसे Judge (जज) Brought (ब्राट) और Cough (कफ) आदि। अतएव इसके लिखनेमें अक्षरोंका बहुत विस्तार हो जाता है और वे बहुत सा स्थान भी घेर लेते हैं। सो शीघ्र लिपिके तीन गुणोंमेंसे पहले दो गुण विद्यमान रहते हुए भी अंगरेजी लिपि शीघ्रतासे लिखे जाने योग्य नहीं हो सकती और देवनागरी लिपिकी अपेक्षा उसके लिखनेके लिये अधिक समय और अधिक स्थानका प्रयोजन अवश्य होता है। उसमें संस्कृत आदि भाषाओंके शब्द लिखे जानेसे पढ़नेमें सुगमता नहीं होती, किन्तु बहुत टटोल टटोल कर पढ़ना पड़ता है, फिर भी 'पिता'का 'पिटा' 'दाता'का 'डाटा' और 'पिनाकपाणि'का 'पीनाकापानी' पढ़ा जाता है।

उर्दू लिपिको यदि क्षिप्र लिपि ही कहें तो अनुचित न होगा। उसमें पहले तथा दूसरे गुणका अधिकांश और कुछ तीसरा गुण भी विद्यमान है, अतः यह अति शीघ्रतासे लिखी जा सकती है। उर्दूका शीघ्र लेखक ७५ से १०० शब्दतक प्रति मिनट घसीट सकता है। उर्दू अक्षरोंकी रचना सादी है और उनका परस्पर संयोग सरलतासे हो सकता है। हां, देवनागरीकी अपेक्षा उसमें स्वरों और व्यञ्जनोंकी न्यूनता अवश्य है, अतः अन्य भाषाके शब्दोंके लिये अक्षर गढ़ने पड़ते हैं, जिनके लिये वहां कोई अक्षर विद्यमान नहीं हैं। स्वरोंकी न्यूनताके कारण उच्चारणमें भी दिक्कत

होती है। यह सब होते हुए भी उर्दू में शीघ्र लिपिके सबसे अधिक गुण विद्यमान हैं। उसके अक्षर वर्णमालामें पृथक पृथक रहनेपर तो बड़े बड़े होते हैं, परन्तु शब्दोंमें बहुत सङ्कुचित होकर परस्पर मिल भी जाते हैं। किसी अक्षरका सिर, किसीका पेट, किसीका शोशा, किसीका मर्कज़ और किसीका नुकता ही समूचे अक्षरका पता दे सकता है। उसे अधिक तेज़ीसे लिखनेके लिये एक उपाय यह भी निकाल लिया गया है कि, ह्रस्व स्वरोंके चिह्न ज़बर, ज़ेर, और पेश तथा अक्षरोंको स्पष्ट करनेवाले नुक़ते नहीं लगाये जाते। यह उपाय शीघ्र लेखकोंके लिये कामधेनु अथवा कल्पतरुके समान है। अतः इसे उन्होंने बड़े आदरके साथ अङ्गीकार किया है। यद्यपि यह बात किसी लिपिके लिये अभीष्ट नहीं है कि, उसका लेखक ही अथवा उसके समकक्ष ही किस तरह पढ़लें और दूसरे लोग प्रयत्न करनेपर भी ठीक ठीक न पढ़ सकें। यह बात लिपिके लिये अत्यन्त अनुचित और महा भयानक है। इससे अनेक अनर्थ हो चुके हैं और होते हैं और होते ही रहेंगे।

उर्दू वर्णमाला अपूर्ण और बेढङ्गी होनेके कारण, उर्दूलिपिमें संस्कृत और अंगरेज़ी भाषाके शब्द लिखना बहुत कठिन होता है। यदि मन समझानेके लिये किसी प्रकार लिखे भी जा सकें, तो उनका पढ़ना दुःसाध्य और असाध्य है, विशेषतः जब कि, उनमें नुकते तथा ज़बर, ज़ेर और पेशके चिह्न न लगाये जायं, जैसा कि, शीघ्र लेखक लिखा करते हैं। उज्ज्वल, तत्व, मनुष्य, आर्य, द्रव्य, प्रद्युम्न आदि साधारण शब्द हैं, पर इन्हें उर्दू लिपिमें लिखकर वा लिखवाकर किसी मौलवी साहबसे पढ़वाइये और फिर देखिये कि वे इन्हें क्या पढ़ते हैं। उर्दू अक्षर 'बे' 'पे' 'ते' 'टे' और 'से' सब एक ही आकारके होते हैं। 'जीम' 'चे' 'हे' और 'ख़े' सबका एक ही स्वरूप है। केवल नुकतोंके उलट फेरसे उनकी शकलें पहचानी जाती हैं। ऐसे ही 'सीन' और 'शीन', 'स्वाद' और 'ज़्वाद', 'तो' और 'ज़ो', 'ऐन' और 'ग़ैन' इत्यादिकी आकृतियां भी एक ही सी होती हैं, केवल नुकतोंका भेद रहता है, इसलिये बिना नुकता लगाये काम नहीं चल सकता। बिना नुकतोंके उर्दूका बाप, पाप, ताप, टाप, नाप, बात, पात, बाट आदि ४५ प्रकारसे सार्थक और निरर्थक पढ़ा जाता है। लिखा जाता है, 'हाजीपुर पटना' और पढ़ा जाता है 'चाची तोर बिटिया'! भला कुछ ठिकाना है? यह हो सकता है कि, पुरुष अपने अभ्यासके कारण, बिना नुकतोंकी उर्दूलिपि तथा इससे भी कठिन सङ्केतोंसे काम चला लें। परन्तु वह उन पुरुषोंका गुण होगा, न कि उस लिपि अथवा उन सङ्केतोंका।

यह ठीक है, कि उर्दू लिपिकी अपेक्षा देवनागरी लिपि कुछ देरमें लिखी जाती है, परन्तु इसमें जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। इसमें अंगरेज़ी और फ़ारसी भाषाके शब्द भी लिखे जा सकते हैं और ज्योंके त्यों पढ़े भी जासकते हैं। अतः उर्दूकी

अपेक्षा कुछ देरमें लिखी जानेपर भी कोई क्षति नहीं है। क्योंकि जो कुछ लिखा जाता है, वह पढ़नेहीके लिये लिखा जाता है; यदि लिखा हुआ कभी पढ़ा न जाय, तो लिखनेका कुछ प्रयोजन ही नहीं और यदि एक बार भी पढ़ा जाय, तो उसके पढ़नेमें किसी प्रकारकी अड़चन न होनी चाहिये जैसी कि,ऊपर लिखीहुई लिपियोंके विषयमें वर्णित हुई है। यदि पढ़नेमें रुकावट हो, अथवा औरका कुछ और ही पढ़ा जाय, तो ऐसी शीघ्र लिपिसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि शीघ्र लिखनेवाला शीघ्र लिखकर कुछ समय बचाता है, तो पढ़नेवालेका कुछ समय अधिक लगजाता है। क्या पढ़नेवालेके समयका कुछ भी मूल्य न होना चाहिये? लेखक एक बार लिख देते हैं और पढ़नेवाले अनेक वार (जब जब पढ़नेका प्रयोजन होता है) पढ़ते हैं और अपना समय व्यर्थ गंवाते हैं। तब क्या लेखक उस समयका घाटा पूर्ण करने जाया करते हैं? यदि लिखने और पढ़नेवाले दोनों ही लिपिसे सम्बन्ध रखते हैं, तो क्यों न दोनोंके समयपर ध्यान देकर शीघ्र लिपिकी उपयोगिताका विचार किया जाय? यदि दोनोंके समयकी समान रूपसे रक्षा करना अभीष्ट हो, तो इसे कौन माननेके लिये उद्यत न होगा कि, देवनागरी लिपि कुछ अधिक देरसे लिखी जानेपर भी उर्दू लिपिकी अपेक्षा शुद्धतर और शीघ्रतर पढ़ी जानेके कारण विशेष उपयोगी है। शुद्ध लिखा जाना और स्पष्ट पढ़ा जाना यही लिपिके मुख्य गुण हैं, सो देवनागरी लिपिमें पूर्णतया विद्यमान हैं। अतः मैं तो यही समझता हूं कि, अंगरेजी और उर्दू लिपियोंसे देवनागरी लिपिकी तुलना करना कङ्कड़ों और रत्नोंकी समता करना है।

कहा जा सकता है कि, महाराष्ट्रमें जो लिपि प्रचलित है, उसका उपयोग अदालतों और परस्पर व्यवहारमें होता है, उसे लिखनेमें लेखनी नहीं उठानी पड़ती और जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। इसी प्रकार गढ़वालमें भी लोग विना लेखनी उठाये लिख लेते हैं और उनका लेख पढ़ भी लिया जाता है। हो सकता है कि, ऐसी ही और भी कई प्रादेशिक लिपियां हों जो विना लेखनी उठाये शीघ्रतासे लिखी जाती हों, परन्तु उनसे मैं परिचित नहीं हूं। अतः उनकी उपयोगिताके विषयमें मैं अपनी सम्मति स्थिर नहीं कर सकता। देवनागरी लिपिके आधारपर बनी हुई भारतवर्षमें जितनी प्रादेशिक लिपियां भिन्नभिन्न स्थानोंमें प्रचलित हैं, उन सबको देखनेसे पता लग सकता है कि, उनमेंसे कौन ऐसी लिपि है, जो देवनागरी लिपिसे अधिक उपयोगी हो सकती है अथवा उनमें एक भी ऐसी नहीं है, जो इसके समान उपयोगी प्रमाणित हो।

विज्ञ जन जानते ही हैं कि, लिपिकी उन्नति और अवनति अधिकांश लेखकोंके प्रयत्नपर निर्भर है। लेखक यदि स्थिरता, धीरता और उत्साहसे काम करेंगे, तो लिपि भी सर्वप्रिय बनेगी। यदि लेखकोंकी ओर से प्रमाद होगा, तो लिपिका कुशल नहीं, उसका अवश्य ह्रास होगा। दुर्भाग्यवश

बहुत दिनोंसे हम लोगोंका देवनागरी लिपिसे सम्बन्ध ढीला हो चला आता है, इसके लेखकोंका उत्साह नहीं बढ़ाया जाता। जिन देशी राजस्थानोंमें देवनागरी-को ही सम्मान मिलना चाहिये, वहां (दो-चारको छोड़कर सबमें) उर्दू आदि सन्दिग्ध लिपियोंकी पूजा हो रही है, यह बड़े ही दुःखकी बात है। यह दुःख छिपाने योग्य नहीं है, परन्तु विषयान्तर हो जानेके भयसे इसकी कुछ भी चर्चा नहीं की जा सकती। देखना है कि, वहां कब सूर्योदय होता है। जिन राजस्थानोंमें देवनागरी लिपिका प्रचार किया गया है, उनमें भी अबतक उर्दू आदि सन्दिग्ध लिपियां विद्य-मान ही हैं, इससे देवनागरी लिखनेका अभ्यास उन्नत नहीं होता। लोग इसकी ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। सन् १८९८ ईसवीमें संयुक्तप्रान्तके न्यायशील लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एण्टोनीमेकडानल साहबने आवश्यक समझकर अदालतमें देवनागरी लिपिके प्रचारकी आज्ञा प्रदान की थी, परन्तु हमारे और हमारे वकील मुख्तार भाइ-योंके कर्म दोष और प्रमादसे काम अबतक विस्तृत नहीं हुआ। मैं समझताहूं कि, सब लोगोंको इसके प्रचारका उद्योग अवश्य करना चाहिये, सम्पूर्ण सर्कारी पाठशालाओं और देशी राजाओंके विद्यालयोंमें लिपिकी प्रारम्भिक शिक्षा दृढ़ करनेके लिये विधि-पूर्वक सुलेख सिखानेका उचित रीतिसे प्रबन्ध होना चाहिये। जो सज्जन देवनागरी लिपिके पक्षपाती हैं, वे इसकी सेवा इससे बढ़कर और किसी प्रकार नहीं कर सकते कि, वे अपने लिखनेपर भी ध्यान दें। प्रत्येक ऐसे सज्जनका विधिपूर्वक लिखना लिपिसे विमुख जनोंके मनमें भी इसके लिये आदर उत्पन्न करेगा। सैकड़ों उप-देश उतना काम नहीं कर सकते, जितना विधिपूर्वक लिखा हुआ एक अक्षर कर सकता है। जिस लिपिके सौन्दर्य और उपयोगिताका हमें अभिमान है, उसकी मर्यादाकी रक्षा करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। जब हम चाहते हैं कि, इस लिपिका प्रचार तथा व्यवहार दिनों दिन बढ़े, तो हमारा परम कर्तव्य है कि, हम अपनी क्रिया द्वारा भी इसकी उन्नतिका प्रयत्न करें। जो कुछ लिखें सावधानीसे विधिपूर्वक लिखें, नहीं तो अक्षरोंकी रचनामें त्रुटियां होंगी और वे त्रुटियां इस सीमातक पहुंचेंगी कि, पढ़नेमें भी अशुद्धियां होंगी। वस्तुत: वे अशुद्धियां लेखकोंकी असावधानीका परिणाम होंगी, परन्तु अधीर और विचार-हीन पुरुष उन अशुद्धियोंको लिपिका स्वाभाविक दोष समझेंगे। यह बात अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि, सन्दिग्ध लिपि अदालती कामोंमें बहुतसे झगड़े उत्पन्न कर सकती है।

यह ठीक है कि, हमारी आवश्यकताएं हमें शीघ्र लिखनेको बाध्य करती हैं और शीघ्र लिखनेसे अक्षरोंकी आकृति कुछ बिगड़ जाती है, परन्तु नियमपूर्वक अभ्यास करनेसे देवनागरी लिपि शीघ्र लिखनेपर भी ऐसी सन्देहजनक नहीं होती कि, वह पढ़ी न जासके, अथवा औरका कुछ और ही पढ़ा जाय। यदि शीघ्र लिखना आव-

श्यक है, तो पहले यथाविधि सुलेख सीखना चाहिये और भली भांति उसका अभ्यास करनेके पश्चात् क्रमशः शीघ्रतापूर्वक लिखनेका यत्न करना चाहिये। ऐसा न करनेसे शीघ्र लिपि भ्रष्ट लिपिमें परिणत हो सकती है। शीघ्र लिखनेके लिये किलक और वेदमुश्ककी कलमको अपेक्षा होल्डर और इरिडपेण्डे़ण्ट-पेनसे लिखना अच्छा है, परन्तु इनसे लिखनेका भी पहले संभालकर अभ्यास कर लेना चाहिये। अधिक शीघ्रतासे लिखनेके लिये अक्षरोंपर माथेकी रेखा (बंधनी) लगाना आवश्यक नहीं। इस अवस्थामें 'घ' और 'ध' तथा 'म' और 'भ'में कोई भेद नहीं रहता, अतः आवश्यक है कि 'ध' और 'भ'के आरम्भमें एक बहुत छोटी सी सीधी रेखा जोड़ ली जाय। जैसे 'ध' और 'भ' (देखिये चित्र 'क' की प्रथम पंक्तिका प्रथम और द्वितीय अक्षर)। अथवा माथेकी रेखाके लिये एक लम्बी लकीर शीघ्रतासे खींचकर उसीमें बन्दनवारके पुष्प और पत्तोंकी भांति अक्षर लटकाते चले जाना चाहिये। इस अवस्थामें भी 'घ' और 'ध' तथा 'म' और 'भ'का भेद प्रतीत नहीं होगा, अतः 'ध' और 'भ'का प्रारम्भिक भाग उस माथेवाली रेखाकी लम्बी लकीरके नीचेसे बनाना चाहिये। जैसे चित्र(क)की प्रथम पंक्तिका तृतीय और चतुर्थ अक्षर।

रहा एक 'झ' अक्षर, जिसके माथेकी रेखा 'भ' और 'ध'की भांति कटी हुई रहती है, परन्तु 'झ'का अन्तिम भाग जो पुच्छकी भांति लटका रहता है, वही पूर्णतया 'झ'का सूचक है। चाहे उसपर माथेकी रेखा लगाई जाय, चाहे न लगाई जाय, दोनों अवस्थाओंमें वह निस्सन्देह स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। सारांश यह कि, साधारण व्यवहारके लिये प्रचलित देवनागरी लिपिका ही प्रचार होना अच्छा है। शुद्ध लिखनेके लिये नई रीति निकालना अच्छा और मङ्गलकारी नहीं है। शुद्ध भी लिखा जाय और अति शीघ्र भी लिखा जाय, यह टेढ़ी खीर है। "चुपड़ी और दो दो" अथवा "मीठा और कठौती भर" ऐसा नहीं हो सकता। शीघ्र और अति शीघ्र लिखनेके निमित्त जो चित्र लिपि सर आइजक पिटमैनकी प्रचलित है, उसमें भी शीघ्रतासे लिखनेके समय नुकते और मात्राओंका विचार नहीं किया जा सकता अर्थात् मात्राएं नहीं लगाई जा सकती हैं। इससे हानि यह होती है कि, लिखनेवालेके सिवाय दूसरा नहीं पढ़ सकता। यदि लिखनेवाला अपना लेख तीन चार दिन रख ले तो वह स्वयं पढ़ नहीं सकता। सो साधारण व्यवहारके लिये प्रचलित देवनागरी लिपिका ही बर्ताव होना चाहिये। हां, वक्ताओंके भाषण आदि लिखनेका कार्य इस लिपिसे नहीं चल सकता, सो उसके लिये कोई उपाय सोचना अभीष्ट है।

देवनागरी वर्णमालाकी प्राचीनता सभीको मान्य है, परन्तु वर्त्तमान समयमें अक्षरोंकी जो आकृतियां हैं यह क्रमिक विकासके सिद्धान्तानुसार अनादि नहीं हैं। सहस्रों वर्षोंसे इनमें परिवर्त्तन होता चला आया है और बंगला, गुजराती, मराठी आदि लिपियां उसी परिवर्त्तनका परिणाम हैं। प्रचलित लिपिके अक्षरोंमेंसे एक अक्षर

'अ' लीजिये, इसके दो स्वरूप हैं, एक यह 'अ' जो कलकतिया टाइपमें प्रयुक्त होता है। जैसा कि चित्र(क)की दूसरी पंक्तिमें पहला अङ्कित है। और दूसरा यह 'अ' जो बम्बैया टाइपमें प्रयुक्त होता है। जैसा कि चित्र(क) की दूसरी पंक्तिमें दूसरा है। अनुसन्धानसे पता लगता है कि, इन दोनों-का पूर्वरूप यह था। जैसा कि, चित्र(क)की तीसरी पंक्तिका प्रथम अक्षर। इसीका क्रमशः इस प्रकार रूपान्तर हुआ। जैसा कि—चित्र(क)की तीसरी पंक्तिका दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवां। और अन्तमें यह कलकतिया टाइपवाला 'अ' हो गया, जैसा चित्र(क)की दूसरी पंक्तिका पहला। इसी प्रकार इसीका रूपान्तर इस प्रकार हुआ, जैसा कि चित्र (क) को चौथी पंक्तिमें १से ५ तक। वही अब यह 'अ' है जैसा कि चित्र (क) की दूसरी पंक्तिका दूसरा। इसे साधारणतया ऐसा 'अ' लिखते हैं जैसा कि चित्र(क)की पांचवीं पंक्तिमें है। परन्तु सुलेख तथा छापेमें ऐसा 'अ' होता है, जैसा कि चित्र (क)की दूसरी पंक्तिका दूसरा। इसी प्रकार सब अक्षरोंका रूपान्तर हुआ है। (देखिये लिपिबोध आकृति-खण्ड, पृष्ठ ८० चित्रसंख्या ५३७*)।

डाक्टर हार्नली कृत 'बावरकी पोथी'में लिखा है कि, "सन् ४५० ईसवीमें देवनागरी अक्षर भद्दी अवस्थामें थी, गत कई शताब्दियोंमें देवनागरीने आश्चर्यजनक उन्नति की है।" कविवर श्रीहर्षजीने 'नैषधचरित'में लिखा है कि "काशी देवनगरी है।" कदाचित् इसी आधारपर कलकत्ता प्रेसीडेन्सीके संस्कृताध्यापक पण्डित सतीशचन्द्र आचार्य्य विद्याभूषण एम० ए०का मत है कि, "देवनागरीलिपि देवनगरमें (काशीमें) प्रचलित थी इसीसे इस लिपिका नाम देवनगरी है। काशी कान्यकुब्जोंकी राजधानी थी। बारहवीं शताब्दीमें राजा जयचन्द्र वहांके नरेन्द्र थे, उनकी राजधानी काशी ही थी। कान्यकुब्ज राजाओंकी कृपादृष्टिके कारण ही देवनागरी वर्णमालाने दूसरी सहयोगिनी वर्णमालाओंसे अधिक श्रेष्ठता प्राप्त की। काशीमें जो पण्डित पढ़ने जाते थे, वे वहां देवनागरी सीखते थे और उन्हींके द्वारा नाना प्रान्तोंमें इसका प्रचार हुआ।" 'प्राचीन लिपिमाला'के २०वें लिपिपत्रमें चौहान राजा चाचिगदेवके समय (वि० सं० १३१८)की जो लिपि है वह वर्त्तमान देवनागरीसे पौने सोलह आने मिलता है। अतः विद्याभूषण जी महोदयका मत सर्वथा माननीय है और इससे क्रमिक विकास सिद्ध होता है।

अक्षरोंकी आकृतिमें उलट-पलट होनेके दो कारण हो सकते हैं:—(१) कभी तो अति सुन्दर बनानेके लिये कुछ कुछ बदले गये और (२) कभी शीघ्रता और सुगमतासे लिखनेके लिये इनमें कुछ तोड़मरोड़

---

* यह चित्र प्राचीन लिपिमाला नामक पुस्तकसे लेकर रचयिताने काशी नागरी-प्रचारिणी सभाकी अनुमोदित सुप्रसिद्ध सरस्वती नामक मासिक पत्रिकाके भाग २ संख्या १में मुद्रित कराया था।

चित्र (क)

वर्णों की क्रमविकासादि ।

१ ------- ¹घ ²भ ³घ ⁴भ

२ ---- ¹अ ²अ

३ ----- ¹H ²H ³अ ⁴अ ⁵अ [अ]

४ --- ¹H ²H ³अ ⁴अ ⁵अ [अ]

५ ---------- भ

६ ----- ¹\ = क, ²| = ख, ³/ ग, ⁴— घ,
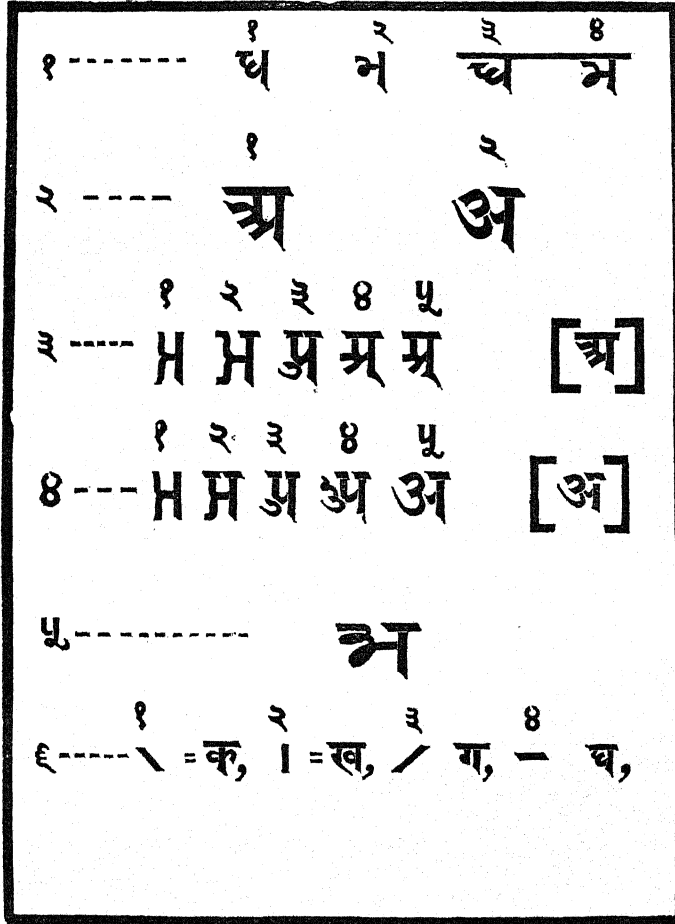
कीगई। ऐसा ही परिवर्त्तन अबतक होता आया है और आवश्यकता होनेपर होना भी चाहिये। देवनागरी वर्णमालाके अक्षर तीन भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं:—(१) स्वर (केवल मात्राओंके चिह्न), (२) व्यञ्जन तथा स्वर भी जो पृथक् लिखे जाते हैं और (३) संयुक्ताक्षर। देवनागरी लिपिमें मात्राओंका प्रयोग बहुत होता है, अर्थात् लेखमें आधीके लगभग मात्राएं हुआ करती हैं। यदि मात्राओंके लिये भी अक्षर नियत किये जायं, तो लिखनेमें दूनेके लगभग समय लगेगा। अंगरेजीमें स्वरोंकी मात्राएं नहीं हैं, इसीसे मात्राके स्थानपर स्वरका पूरा अक्षर लिखना पड़ता है। उर्दूमें 'अ' 'इ' और 'उ'के लिये जबर, जेर और पेश नियत किया गया है, जिनसे पूरा काम नहीं चल सकता। अतः शेष स्वरोंकी न्यूनता पूर्ण करनेके लिये पूरे अक्षर 'अलिफ', 'वाव' और 'ये' जोड़ते हैं। सो इस प्रकार स्वरोंकी मात्राएं नियत करनेसे देवनागरी और अंगरेजी लिपिकी अपेक्षा शीघ्रलेख लिखनेमें यद्यपि कुछ सुविधा हो सकती है, तथापि जैसी शीघ्र लिपिके लिये चाहिये वैसी नहीं होगी। अंगरेजी क्षिप्रलिपि (Short hand)में आजकल सर आइजक पिटमेन साहबकी संशोधित फानोग्राफी अति उत्तम और सर्वगुणसम्पन्न समझी जाती है। साहबने अपनी क्षिप्रलिपिमें मात्राओंके बहुत छोटे विन्दु और स्पष्टविन्दु छोटापतला डैश तथा मोटा छोटा डैश आदि चिह्न नियत किये हैं, उनके लिखनेमें सुगमता होती है। देवनागरीकी मात्राएं यद्यपि आकारमें सरल और सादी हैं, परन्तु उनके लिखनेमें लेखनी उठानी पड़ती है और विन्दु वा डैशकी अपेक्षा और उर्दूके जबर, जेर और पेश तथा अलिफ, वाव, और ये की अपेक्षा कुछ बड़ी ही हैं। अतः देवनागरीकी मात्राओंके चिह्न ऐसे होने चाहियें जो अक्षरोंके चिह्नके साथ बिना लेखनी उठाए और बिना विशेष यत्नके लिखे जा सकें। व्यञ्जनोंके साथ साथ पूरे पूरे प्रयुक्त होनेवाले 'आ' 'इ' 'उ' आदि स्वरोंके सङ्केत पृथक होने चाहियें। जैसे:—"आज उस इलाकेमें ओले पड़नेकी खबर है" इस वाक्यमें 'आज' 'उस' 'इलाके' और 'ओले' शब्द ऐसे हैं, जिनमें 'आ' 'उ' 'इ' और 'ओ' पूरे पूरे प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु इसी वाक्यमें 'इलाके' शब्दके 'ल'में 'आ' 'पड़ने' शब्दके 'न'में 'ए' 'की' के 'क'में 'ई' पूरे स्वरूपमें नहीं हैं, अतः इन दोनोंमें भिन्नता होनी चाहिये। व्यञ्जनोंमेंसे कुछ ऐसे अक्षर हैं, जिनका अधिक काम पड़ता है, जैसे 'क' 'ल' 'स' आदि और कुछ ऐसे भी हैं जो बहुत कम प्रयुक्त होते हैं, जैसे 'ङ' 'ढ' 'ञ' आदि इनमेंसे जो कम प्रयुक्त होनेवाले अक्षर हैं, वे अधिक प्रयुक्त होनेवाले अक्षरोंकी अपेक्षा सहज न होने चाहियें। सब स्वरों और व्यञ्जनोंके सङ्केत बहुत सादे होना चाहियें। देवनागरीका 'व' अक्षर अंगरेजीका 'डबल्यू' (w) और उर्दूका 'वाव' (و) नापिये, तो यद्यपि 'डबल्यू' (w) 'व'की अपेक्षा शीघ्र लिखा जा सकता है, परन्तु रेखा-समुदायकी लम्बाई 'डबल्यू'की 'व'से अधिक होती है। उर्दूका

'वाव' जैसा, लिखनेमें सरल है, वैसा ही रेखा-समूहकी नापमें भी छोटा है, अतः इस बातपर पूरा ध्यान रखना चाहिये कि, रेखा-समूह विस्तृत न होने पावे। रहे संयुक्ताक्षर, सो उनके लिये पृथक् पृथक् सङ्केत बनानेमें कठिनाई उपस्थित होगी और बन जानेपर वे इतने अधिक हो जायंगे कि, उन्हें याद करना भी कठिन हो जायगा। अतः व्यञ्जन ही ऐसे बनाये जाने चाहियें जो आधे भी हो सकें। अथवा सबसे अच्छा यह है कि, जिस प्रकार साधारणतः व्यञ्जनको हल्‌चिह्न लगाकर आधा करलेते हैं, वैसे ही कोई सङ्केत मात्राओंकी भांति नियत करना चाहिये जिसके योगसे व्यञ्जन आधा समझा जाय।

देवनागरी लिपिको शीघ्रतासे लिखने योग्य बनानेके तीन साधन हो सकते हैं:—पहला यह कि, प्रचलित अक्षरोंमेंसे कुछ ऐसा फेरबदल करना कि, उनकी आकृति भी इन्हींसे मिलतीजुलती रहे और वे प्रचलित अक्षरोंकी अपेक्षा कुछ शीघ्र लिखे जानेके योग्य भी हो जायं। ऐसी बनावटके नमूने मुड़िया और महाजनी आदिके अक्षर हैं। इस प्रकारके परिवर्त्तनसे कुछ सुविधा हो सकती है, परन्तु पूर्ण सफलता नहीं होगी। क्योंकि प्रचलित अक्षरोंके आधारपर अक्षर व सङ्केत बनानेसे वह सरलता न आवेगी जो अपेक्षित है। मुड़िया वा महाजनी अक्षरोंके आकार ठीक देवनागरी अक्षरोंके आधारपर हैं, उनमेंसे मात्राएं उड़ा दी गई हैं। 'च' और 'न' केवल दो अक्षर बनाकर, चना, चीनी, चूना, चूनी, जो चाहिये पढ़ लीजिये। लिखा गया कि "लाला जी अजमेर गये, बड़ी बही भेज देना" और पढ़ा गया कि "लालाजी आज मरगये, बड़ी बहू भेज देना" इस प्रकार एक तिहाई तो अक्षरोंके रूपान्तरसे और एक तिहाई मात्राओंके उड़ा देनेसे शीघ्रतापूर्वक लिखे जाने योग्य उसे बना लिया गया है। परन्तु जो गुण शीघ्र लिपिमें होना चाहिये वे उसमें नहीं हैं। अतः प्रचलित लिपिके आधारपर सङ्केत नियत करनेसे पूर्ण कृतकार्यता हो नहीं सकती।

दूसरा यह कि, सर्वथा नवीन सङ्केत नियत किये जायं। ऐसा करनेसे उस लिपिका नाम देवनागरी लिपि नहीं हो सकता। क्योंकि देवनागरी लिपि यही है जो प्रचलित है। उसका नाम 'क्षिप्रलिपि' हो सकेगा। अथवा देवनागरी वर्णमालाके क्रमानुसार होनेके कारण 'देवनागरी क्षिप्रलिपि' हो सकता है। क्षिप्राक्षरोंका क्रम ऐसा होना चाहिये कि, उनके याद करनेमें सुविधा हो। कल्पना कीजिये कि क, ख, ग, घ, के सङ्केत नियत करना है, तो सबसे अच्छा यह है कि, इस प्रकार / = क । = ख / = ग — = घ चिह्न नियत हों जैसे कि चित्र (क) की छठी पंक्तिके १ से ४ तक। अर्थात् एक सीधी रेखाको बाएंसे आरम्भ करके क्रमशः घुमाते जानेसे कवर्गके चार अक्षर बन जायं। प्रयोजन यह कि, क्रमपूर्वक चिह्न नियत करनेसे अधिक लाभ होगा। क्षिप्राक्षरोंमें वे सब बातें बनी रहनी चाहियें जिनका वर्णन पहले किया

जा चुका है। अर्थात् उनकी आकृति सीधी और सादी होनी चाहिये और वे ऐसे हों जो परस्पर संयुक्त भी हो सकें ; तथा मात्राओंके चिह्न बहुत स्पष्ट और अत्यन्त सरल होने चाहियें।

तीसरा यह कि, अंगरेजीके प्रचलित चिह्नोंपर देवनागरीकी चिप्रलिपि बनाई जाय। सम्भवतः यह विधि अधिक लाभदायक होगी। इससे तीन लाभ होंगे:— पहला यह कि, इस प्रकार चिह्न गढ़नेमें अधिक कठिनता नहीं होगी, थोड़ी सी न्यूनाधिकता करनेसे ठीक देवनागरीके योग्य सङ्केत बन जायंगे। दूसरा यह कि, देवनागरीकी उस चिप्रलिपिके जाननेवाले अंगरेजी शार्टहैण्ड भी सरलतासे सीख सकेंगे। तीसरा यह कि, इसके सिखानेका प्रबन्ध सम्पूर्ण भारतमें सुगमतासे हो सकेगा, जो लोग अभी शार्टहैण्ड सिखाते हैं वे ही इसे भी सिखा सकेंगे।

अच्छा हो यदि एक समिति ऐसे सज्जनोंकी सङ्गठित की जाय जो देवनागरीसे पूर्णतया परिचित हों और शार्टहैण्ड-राइटर (Short-hand-writer)भी हों। वे एकत्र होकर एक सङ्केतावली नियत करें और सर आइजक पिटमैनकी पुस्तक "दी फोनोग्राफिक टीचर" (The phonographic Teacher) के समान एक 'चिप्रलिपिशिक्षक' प्रस्तुत कर दें। उस पुस्तकके छपवाने और सुलभ मूल्यपर देनेका उचित प्रबन्ध किया जाय और सर आइजक पिटमैनकी कम्पनीकी भांति परीक्षाका भी प्रबन्ध किया जाय। पढ़ानेकी फीस थोड़ी ली जाय। लोग अपने घरोंपर अथवा कहीं भी अभ्यास करते रहें। ऐसा करनेसे उभयपक्षका लाभ होगा। जो समिति इस कार्य्यको आरम्भ करेगी, वह स्वल्प समयमें ही परीक्षा तथा पुस्तककी बिक्रीसे लाभ उठायगी और सीखनेवालोंको सुगमता होगी। सहस्रों महाजन अपनी मुड़िया और महाजनीसे काम चलाते हैं, उन्हें देवनागरीलिपिसे कोई सम्बन्ध नहीं ; परन्तु जब इस नवीन चिप्रलिपिका प्रचार होगा, तब मुड़िया और महाजनी आदिके स्थानपर वही चिप्रलिपि प्रयुक्त होगी। बंगला, गुजराती, मराठी आदि लिपियां अन्य प्रकारसे चाहे कुछ भिन्न हों, परन्तु अक्षर सबमें वही अ, इ, उ, आदि हैं और उनकी लेखनप्रणाली भी एक ही है। सो नवीन चिप्रलिपि सबके लिये समान हितकारिणी होगी। अबतक संस्कृत और आर्य्यभाषाके व्याख्यान किसी प्रकार शब्दशः नहीं लिखे जा सकते, केवल उनका आशय मात्र किसी प्रकार लिखा जाता है। अंगरेजी शार्टहैण्ड अंगरेजीभाषा लिखनेके लिये उपयुक्त है। परन्तु जिस समय नवीन चिप्रलिपि बन जायगी, उस समय संस्कृत और आर्य्यभाषाके व्याख्यान आदि लिखनेका कार्य भी चल पड़ेगा।

यह लेख लिखनेसे पूर्व मैंने अपना कुछ समय देवनागरी लिपिको पल्लवित और पुष्पित करनेमें ही लगाया था, इसे शीघ्र लिखने योग्य कैसे बनाया जासकता है, यह विचारनेका अवसर मुझे कभी नहीं मिला था। अतएव इस निबन्धमें अनेक

त्रुटियां रहना स्वभाविक ही है। परन्तु आशा है कि, आप सज्जन अपनी स्वभाविक उदारता और क्षमाशीलतासे इसे उपयोगी बना लेंगे।

—०—

(१४)

सम्मेलन द्वारा हिन्दीके विशेष उपकार होनेके उपाय।

—:३::६:—

लेखक—

श्रीयुक्त पांडेय लोचनप्रसाद शर्म्मा।

——*०*——

क्या प्रबन्ध किया जाय जिससे सम्मेलनके द्वारा हिन्दीका विशेष उपकार यथार्थ भावसे हुआ करे, इस लंबे प्रश्नका उत्तर देना और इस विषयपर लेख लिखना गुरुतर कार्य है। सम्मेलनकी उपकारिता और हिन्दीसाहित्यकी वर्त्तमान अवस्थाके सम्यक् ज्ञान प्राप्त किये बिना इस दिशामें किसीका उद्योग आंशिक सफलता भी प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसे उपयोगी और गंभीर विषयपर अपनी सम्मति प्रकाश करनेके लिये पूर्ण अनुभव औरउच्च विद्वत्ताकी आवश्यकता है। दुःखका विषय है कि, मुझमें पूर्वोक्त दोनों बातोंकी कमी है। तथापि सम्मेलनकी सेवाको अपना परम कर्त्तव्य जानकर मैं इस विषयमें यथाशक्ति कुछ लिखनेका साहस करता हूं।

हिन्दीसाहित्यसम्मेलन क्या है? और उसके सिद्धान्त क्या क्या हैं? यह हमारे विज्ञ साहित्यबन्धुओंको ज्ञात ही है। इस अधिवेशनके पूर्व इसके जो दो अधिवेशन हो चुके हैं, उनसे हिन्दीको क्या लाभ पहुंचा और पहुंचता है, उसे यहां बतलानेकी आवश्यकता नहीं। सम्मेलनके विवरण और सामयिक पत्रोंसे उसका वृत्तान्त समयसमयपर पाठकोंको विदित होता ही रहा है। सम्मेलनके दो अधिवेशन निर्विघ्न हो गये, इससे कोई यह नहीं कह सकता कि, इस नव-जात संस्थाका जीवन-मार्ग निरापद है। शास्त्रका वचन है कि, "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" और इस कथनपर ध्यान रखकर हमारा कर्त्तव्य है कि,क्रम आनेवाले भय और सङ्कटोंको दूर करनेके उपाय पहलेसे ही सोच रखें। भारतवर्षमें प्रारम्भशूरोंकी संख्या अधिक है, पर "प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति", ऐसी नीतिके अनुयायी बहुत कम देखे जाते हैं। और यही कारण है कि, सभासमिति जन्म लेकर बालकालमें ही अकाल कालके कराल गालमें जा पड़ती हैं। इस दिशामें वे देशका विशेष उपकार कैसे कर सकती हैं? देश जाति या भाषाके विशेष उपकार तब ही हो सकते हैं, जब किसी लोकोपयोगी संस्थामें ये दो गुण हों—

(१) उसके संचालक, सहायक और प्रेमियोंमें उसकी स्थितिकी दृढ़ता अर्थात् दीर्घ जीवनके हेतु सुप्रयत्न और दृढ़ अध्यवसायका होना।

(२) संस्थाकी कार्यकारिणी शक्तिका समयकी गतिके अनुसार ह्रास न होना।

इन दोनोंमेंसे पहलेके लिये संस्थाके संचालकोंमें स्वार्थविस्मरण अथवा आत्मत्याग, एकता, सुबुद्धि, सहिष्णुता और कर्त्तव्यज्ञान

होना नितान्त आवश्यक है। पर इन सब-के रहते भी एक अर्थाभाव उसको मिटिया-मेट कर डालता है। अतः पूर्वकथित गुणों-के साथ "अर्थ" का होना एकान्त आवश्यक है। प्रचुर परिमाणमें अर्थ जबतक किसी संस्थाको प्राप्त न हुआ तबतक उसका जीवन संशयसे घिरा हुआ रहता है। पर जन्मके पहले ही प्रचुर परिमाणमें अर्थ कोई प्राप्त नहीं कर सकता और न तब उसको इतनी जरूरत होती है। ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है और कार्यभार अधिकाधिक होता जाता है, त्यों त्यों दायित्वके साथ साथ धनकी मांग भी बढ़ती जाती है। दूसरा अर्थात् कार्यकारिणी शक्तिका ह्रास होना उसके सिद्धान्त प्रचारके मार्गमें बड़ी भारी बाधा है। किसी संस्थाके वार्षिक या मासिक विवरणका यथासमय प्रकाश न होना या उसके सभासद या मन्त्री या सभापतिका अपने कर्तव्यपालनमें दीर्घसूत्रता, आलस्य, निरुत्साह या स्वार्थके लिये उसका दोषो-द्‌घाटन उस संस्थाकी उन्नतिके बाधक हैं। ऐसे दोषोंको दूर किये बिना किसी संस्थाको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। एक अङ्ग-रेजी विद्वान्ने ऐसे ही जीवनपर लक्ष्य करके कहा है :—"Avoid dream land and correct without mercy that habit of indolence which compels some men to float through life"

"As idly as a painted ship upon a painted ocean."

सारांश यह कि, "हिन्दीसाहित्यसम्मे-लन" द्वारा हिन्दीका तब विशेष लाभ या उपकार होगा, जब उसमें पूर्वोक्त दूषणसमूह न रहने पावें और वह उन उत्तम गुणोंको धारण करे जिनकी आवश्यकता है। इन गुणोंमें "अर्थ संचय" एक प्रधान गुण है। पर जो हिन्दी करोड़ों भारतवासियोंकी मातृभाषा हो, जिस हिन्दीके सत्पुत्र बड़े बड़े राजे महाराजे सेठ साहूकार धनीमानी विद्वान् व्यक्ति हों और जो हिन्दी भारतवर्ष-की राष्ट्रभाषा बननेकी योग्यता रखती हो, उसके "सम्मेलन" का "कोष" यदि खाली रहा तो समझना चाहिये कि भारतवर्षकी उन्नतिमें बड़ा विलम्ब है।

सम्मेलन इन दोनों गुणोंसे भूषित हो-करके यदि ये प्रबन्ध करे, तो उसके द्वारा हिन्दीका विशेष उपकार यथार्थ भावसे हो सकता है;—

१—हिन्दी भाषाकी लेखन-परिपाटी स्थापन और विद्वेष-दमन।

२—अन्य भाषाभाषी प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचार और भारतवर्षमें देवनागरी लिपिका विस्तार

३—हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेका यत्न और भारतीय विश्वविद्यालयोंकी उच्च परी-क्षाओंमें हिन्दीको स्थान दान करनेकी भारतसरकारसे प्रार्थना।

१—हिन्दीभाषाकी लेखनपरिपाटी स्थापन करनेका काम सम्मेलन जैसी संस्थाएं ही हो सकती है। यह एक दो जनेका कार्य नहीं है। किस प्रकारकी लेखनशैलीको ग्रहण करनेसे हिन्दीभाषाका प्रचार अधिक हो सकता है, इसका निश्चय हिन्दीके आचा-र्योंपर निर्भर है।

युक्तप्रान्त और पञ्जाबमें हिन्दी प्रचारके लिये उर्दू मिश्रित हिन्दीकी आवश्यकता है, ऐसा कुछ लोगोंका कहना है। कुछ लोग संस्कृतमिश्रित हिन्दीको हिन्दी-प्रचारके हेतु सहायक कहते हैं। कुछ लेखक इन दोनों-की खिचड़ी करना चाहते हैं। इस दिशा-में लेख-शैली स्थिर करना टेढ़ी खीर है। बहुतोंका यह भी कहना है कि, हिन्दीमें केवल उर्दू या संस्कृतके ही शब्द आनेसे काम न चलेगा, अंग्रेजीके भी बहुतसे शब्द जो व्यवहृत होते आते हैं और जिनका अनु-वाद ठीक ठीक नहीं हो सकता है या अनु-वादित शब्दसे मूल शब्दका प्रयोग अधिक होता है, वे शब्द भी हिन्दोमें लिये जायं। इस मतके लोगोंका कहना भी यथार्थ है। क्योंकि किसी भी भाषामें अनेक भाषाओंके शब्द प्रचलित हुए देखे जाते हैं।

हमारे विचारमें शैलीस्थापनके साथसाथ हिन्दीके प्रचारका भी ध्यान रखा जावे। अर्थात् बङ्गला, ओड़िया, तेलगु, तामिल आदि भाषाओंमें संस्कृतके शब्दोंकी अधि-कता रहती है। नाम मात्रको कहीं उर्दूके चार छै शब्द हों तो हों। इस दशामें इन प्रान्तवासियोंको हिन्दीसे प्रेम उत्पादनके लिये संस्कृतमिश्रित हिन्दीकी आवश्यकता है। संस्कृतमिश्रित हिन्दीके पढ़ने और समझनेमें उन्हें अधिक कठिनता नहीं पड़ेगी। बङ्गाल, ओड़िसा तथा गञ्जाम इन प्रान्तोंमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त प्रदर्शित "भारतमित्र"की शैलीकी अपेक्षा पं० लज्जाराम शर्मा नागर प्रदर्शित "श्रीवेङ्कटे-श्वर समाचार"की संस्कृतमिश्रित शैली विशेष हितकारिणी होगी। पर जहां उर्दूका जोर है, उन प्रान्तोंमें ऐसी शैलीसे काम लाभ पहुंचनेकी आशा है। अतः लेखन-शैलीका दो विभाग स्थिर हो। १— उर्दू मिश्रित हिन्दी और २—ठाक संस्कृत-मिश्रित हिन्दी।

भारतकी नयी राजधानी दिल्लीमें उर्दू-मिश्रित हिन्दीकी शैलीके पत्रोंके प्रकाशनसे उर्दू-प्रचलित प्रान्तोंमें हिन्दीका प्रचार सुगमतासे होगा। और अन्यान्य प्रान्तोंके लिये दूसरी शैलीके पत्र,पत्रिकाओं और पुस्त-कोंका। ओड़ोसाका विहारके साथ मिलना हिन्दीके लिये सौभाग्यकी बात है। पर विहार प्रान्तके हिन्दीपत्रोंको इसपर ध्यान रखना चाहिये कि, उनकी लेखशैली उड़ी-सा और बङ्गाल दोनोंको हिन्दीकी ओर झुकानेवाली हो।

हिन्दीसंसारमें विद्वेषका मूल कारण शब्दी "समालोचना" ही है। "समालोच-ना"के नामसे आपसका मनोमालिन्य प्रकट कर गालीगलौजमें जा पड़ना "समालोचना" का नाम बदनाम करना है। कितने ही पार्टी (दल) बनाकर एक दूसरेको जनसाधा-रणकी आंखोंसे नोचे गिरानेके यत्नमें दिन-रात व्यस्त रहते हुए देखे जाते हैं। एक दूसरेकी बातको स्वीकार करना अपनी विद्वत्ता खो बैठना समझता है। और दो विपक्षियोंकी बातोंका निर्णय करनेवाली यहां कोई न्यायाधशरूपी संस्था भी नहीं है और जो हैं उनकी निष्पत्ति भी पक्षपात-से रहित नहीं। समालोचनासे भाषा और साहित्यको बड़ा लाभ होता है, पर वह सत्य

और निष्पक्ष होनी चाहिये। मैथ्यू अरनल्डका कथन है कि—

"Criticism must be sincere, simple, flexible, ardent, ever widening its knowledge."

यह सत्य है। ऐसा होनेपर विरोधका कारण नहीं रह जाता। इस विद्वेषकारिणी समालोचनाको बन्द करानेका भार सामयिक पत्रोंके सम्पादकों और समालोचकोंपर है। व्यक्तिगत आक्षेपपूर्ण समालोचना या प्रत्यालोचनाको अपने पत्रमें स्थान न देना ही इस दिशामें श्रेयष्कर है। क्योंकि सामयिक पत्रोंका बहुत स्थान ऐसे कलहको कालिमासे कलङ्कित होकर पाठकोंका समय ही नष्ट नहीं करता, बल्कि उन्हें आपसमें एक दूसरेका पक्ष लेकर वैरभावमें भी प्रवृत्त करा देता है। यदि पत्रोंमें स्थान न पानेपर कोई अपनी समालोचना पुस्तकाकार छपावे, तो उससे विशेष हानि नहीं, बल्कि उससे लाभ ही है। क्योंकि, "Our antogonist is our helper this amicable conflict with difficulty obliges to an intimate acquaintance with our object and compels us to consider it in all its relations. It will not suffer us to be superficial. (Burke)

सम्मेलनको "सम्पादक-समिति" का ध्यान इन बातोंपर दिलाकर उसे इन नियमोंके पालन करनेको बाध्य करना चाहिये।

२—अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोंमें हिन्दी-प्रचार और भारतवर्षमें देवनागरी लिपिका विस्तार। यह विषय बड़े महत्वका है और इसीपर हिन्दीके राष्ट्र-भाषा बननेका सब भार निर्भर है। इस विषयपर अनुभवी विद्वानोंके द्वारा अंग्रेजी और हिन्दीमें पुस्तक लिखाना चाहिये और इन पुस्तकोंके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिए अच्छे अच्छे उपदेशक नियुक्त करना चाहिये, इन उपदेशकोंको हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान होना चाहिये और जिस प्रान्तमें उपदेशक या वक्ता नियुक्त किये जायं वहांकी प्रान्तिक भाषाका भी उन्हें ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उनमें त्याग, सहिष्णुता और गम्भीरता ये गुण होने अत्यन्त आवश्यक हैं। ऐसे उपदेशक सहज नहीं मिल सकते। ये बनाकर तैयार करने पड़ेंगे और उनको वेतन भी यथेष्ठ दिये जाना चाहिये। पर जबतक ऐसे सुनिपुण उपदेशक तैयार न हों तबतक जैसे प्राप्त हो सकें वैसोंसे ही कार्यारम्भ कर देना चाहिये।

उपदेशकोंका काम यह होगा कि, भिन्न भिन्न नगरों और गावोंमें जा जाकर लोगोंको हिन्दी भाषाकी सरलता समझाना, उन्हें एक भाषाकी आवश्यकता दिखाना, एक भाषाके बिना हमारी जातीयता-संगठनमें जो बाधा होती है उसे उन्हें सुझाना और उन्हें यह विश्वास दिलाना कि, हिन्दीके प्रचारसे अन्यान्य प्रान्तिक भाषाओंकी कुछ हानि नहीं है। जैसे अंग्रेजीके प्रचारसे भारतके किसी भी प्रान्तिक भाषाको हानि नहीं पहुंची, बल्कि उसकी उन्नति हुई है, उसी प्रकार "हिन्दी" के प्रचारसे हानिके बदले लाभ ही

होगा। अपनी अपनी मातृभाषाको "माता" समझ कर उचित आदर सत्कार और पूजा किया करो। पर हिन्दीको "रानी"के रूपमें पूजा करना स्वीकार कर लो। हम तुम परस्पर विदेशी और ५००० मीलकी भाषा न बोलकर आपसमें अपनी परम प्यारी हिन्दीमें वार्त्तालाप किया करें। इसके साथ साथ वे योग्य पात्रोंमें श्रीतुलसीकृत रामायण और हिन्दीकी पहली पुस्तक भी बांटा करें। बल्कि बड़े बड़े स्थानोंमें मारवाड़ी तथा अन्य हिन्दी भाषी लोगोंकी सहायतासे "हिन्दी-शाला" खोलनेका प्रयत्न करें। ऐसी शालाओंको सम्मेलनसे कुछ आर्थिक सहायता दी जाय और उपदेशकवृन्द इसके निरीक्षण और उन्नतिका यत्न करें।

ऐसे उपदेशकोंका कार्य हिन्दीके प्रचार-विषयक वक्तृता देने और लेख लिखनेके अतिरिक्त यह भी हो कि, वे मुख्य मुख्य नगरोंमें हिन्दीके हितार्थ "श्री तुलसी सन्त समाज" नामक एक छोटी छोटी सभा स्थापित करनेका प्रयत्न करें। चार,छै सभ्य और शिक्षित पुरुष एकत्र होकर निर्धारित समयपर गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित्रमानसका पाठ किया करें और यही रामायणपाठ ही "सन्त-समाज" का मुख्य नियम हो। उपदेशकोंको गोस्वामीजीकी कृपासे इस कार्यके लिये स्थानपर सहायक मिल सकेंगे। क्योंकि भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तोंमें भी हिन्दीके प्रेमी यत्रतत्र पाये जाते हैं। ओड़िसा अन्तर्गत जिला बालेश्वरनिवासी उत्कल भाषाके सुप्रसिद्ध कवि और ग्रन्थकार वयोवृद्ध श्रीयुत बाबू फकीरमोहन सेनापतिने मेरे ओड़िया "कविता कुसुम"में "हिन्दीर विनय" शीर्षक पद्यको पढ़कर मुझे लिखा था:—

"I wish and hope the Hindi language to be a common language in India. Let us try heart and soul for that……I wish our correspondance in the Hindi language."

ऐसे ऐसे विद्वान् कवियोंके द्वारा हिन्दीका हितसाधन उत्तम रूपसे हो सकता है। हां, हमें उन्हें प्रत्येक विषयमें सहायता देनी चाहिये और उनसे मिलकर यह स्थिर करना चाहिये कि, किस उपायसे उनके प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार हो सकता है।

श्रीतुलसीसन्तसमाजका दूसरा कार्य अपने समाजको वर्द्धित करनेका होना चाहिये अर्थात् गुसाईंजीकी रामायणके श्रोता और वाचकोंकी संख्या धीरेधीरे बढ़ानी चाहिये। फिर प्रति वर्ष किस स्थानके समाजमें कितने श्रोता और वाचक बढ़ाये, इसकी सूचना उपदेशकों द्वारा सम्मेलनको मिलनी चाहिये। हमें पूर्ण विश्वास है कि, यदि यह कार्य तनमनधनसे कियाजाय, तो १० वर्षके बीचमें अन्यान्य भाषा भाषी प्रान्तोंके निवासियोंमें आधेसे ज्यादे लोग हिन्दी अच्छी तरह सीख सकते हैं और केवल एक अमर काव्य तुलसीकृत रामायणकी ही बदौलत। हां, हमें रामायणके सुलभ संस्करणका प्रबन्ध इसके लिये अवश्य करना पड़ेगा। सातों काण्ड रामायण गुटका ॥) में अभी मिल सकती है, पर इस गुटकाका दाम ।) तक रखके हमें इसको

लाखों कापियां प्रतिवर्ष प्रकाशित करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त पण्डित रामेश्वर भट्ट कृत पीयूषधारा टीकावाली गुसाईंजीकी रामायणका सुलभ संस्करण करके १) मूल्य-पर सर्वसाधारणके हाथोंतक पहुंचाना चाहिये और इसकी भी लाखों प्रतियां प्रतिवर्ष छपनी चाहियें।

प्रश्न हो सकता है कि, ऐसे गुरुतर कार्यको सम्मेलन अपने हाथमें कैसे ले सकता है और इस कार्यके लिये उसके पास इतना द्रव्य कहांसे प्राप्त हो? निस्सन्देह सम्मेलन-को इतना द्रव्य प्राप्त नहीं हो सकता, पर हिन्दीभाषाके ग्रन्थप्रकाशक यन्त्रालयोंमेंसे बहुत से ऐसे धनी हैं कि, वे यदि किंचित् स्वार्थत्याग करके हिन्दीके उद्धारका ध्यान रखें, तो यह कार्य कोई कठिन काम नहीं है। विलायत जैसे क्षुद्र द्वीपके द्वारा अङ्ग-रेजी बायबिलका (Bible) न केवल सुलभ संस्करण होकर करोड़ करोड़ कापियां खप गईं, बल्कि संसारभरकी भाषा और बोलि-योंमें उसके अनुवाद भी छप छपकर टकेके मोल बिक रहे हैं। इस उदाहरणसे हमारे हिन्दीप्रेमी सम्पन्न व्यक्तियोंको कुछ लज्जा सहित दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

भारतके वैष्णव संप्रदायके आचार्यवृन्द प्रायः हिन्दी भाषाभाषी हैं और उनसे गुसाईंजीकी रामायण, श्री सूरदासजीके सूरसागर तथा भक्तमाल आदि ग्रन्थोंका प्रचार उनकी शिष्यमण्डलीमें होता आता है। सम्मेलनको उनसे प्रार्थना कर इस दशामें हिन्दीके प्रचारमें विशेष यत्नवान होकर हिन्दी-साहित्यकी सहायता करनेको बार बार अनुरोध करते रहना चाहिये। भिन्न भिन्न तीर्थस्थानोंमें जहां लोग दर्शन करने जाते हैं, जहां मेला भरता है या जहां चढ़ाव होता है, वहां साधुओंकी अधिकतासे हिन्दीका कुछ कुछ प्रचार सर्व-साधारणमें होता है। ऐसे तीर्थोंमें जाकर हिन्दी-प्रचारक उपदेशकोंको धर्माचार्योंकी सहायतासे वक्तृता देकर हिन्दीके प्रचार विषयक छोटी छोटी पुस्तिकाएं बांटनी चाहियें।

श्री सूरदास, गुसाईं तुलसीदास, श्री कबीरदास, श्री गुरु नानक तथा ब्रजके अष्टछापके भक्त कवियोंकी उत्तम उत्तम पदावलियोंका छोटा छोटा संग्रह भिन्न भिन्न प्रान्तिक भाषाओंकी लिपियोंमें † प्रकाशित कर प्रचार करनेसे उन प्रा-न्तोंके कम शिक्षा पाये हुए लोगोंमें और सर्वसाधारणमें हिन्दी भाषाके प्रचारका सूत्रपात होगा। ऐसे प्रान्तोंमें जिस ग्रन्थका सबसे अधिक प्रचार हो, उसके कुछ अंश-विशेषोंको नागरी लिपिमें लिप्यन्तर करके प्रचलित करनेसे देवनागरी लिपिके प्रचारमें सुगमता हो सकेगी। तीस करोड़ भारत-वासियोंमें संस्कृतमूलक भाषा बोलने-वालोंकी संख्या साढ़े इक्कीस करोड़ है।

अतः साढ़े इक्कीस करोड़ भारतवासी नागरी लिपिको सुगमतासे सीख सकते हैं। हां, बाकी अनार्य भाषाभाषी साढ़े नौ करोड़ लोगोंमें नागरी लिपि प्रचार करना ज़रा कठिन है। संस्कृत देवनागरी

† जिनकी लिपि देवनागरी लिपिसे भिन्न अर्थात् बिलकुल जुदी है।

लिपिमें नहीं लिखकर कई प्रान्तोंमें उनकी प्रान्तिक भाषाओंकी लिपियोंमें लिखी जाती है। यह बात न केवल थोड़े से संस्कृतज्ञोंमें ही पाई जाती है, बल्कि विश्वविद्यालयोंमें भी यही नियम प्रचलित है और वहांके विद्यार्थी संस्कृतको उसकी प्रकृत लिपिमें न लिख कर प्रान्तिक लिपिमें लिखा करते हैं। सम्मेलनको उचित है, जिन विश्वविद्यालयोंमें यह नियम है, उनका वह विरोध करे और उनसे प्रार्थना करे कि, वे संस्कृतको उसकी प्रकृत लिपिमें लिखे जानेके लिये परीक्षार्थियोंको बाध्य करें। जो विद्यार्थी विश्वविद्यालयकी परीक्षामें जाते हैं, वे प्रायः सब देवनागरी लिपि बड़ी ही सुगमतासे पढ़ सकते हैं और अत्यन्त अभ्याससे ही वे उस लिपिमें संस्कृत बिना कठिनाईके आसानीसे लिख सकते हैं। सुप्रसिद्ध स्वर्गीय रमेशचन्द्रदत्तने थोड़े ही दिनोंमें नागरी लिपिमें संस्कृत लिखना सीखकर नागरी लिपिकी सरलता और सुगमता प्रकट कर दी है। इसके अतिरिक्त "एकलिपिविस्तारपरिषद" और "देवनागर"के कार्यसे भी सहानुभूति रखकर सम्मेलनको हिन्दीप्रचारका मार्ग सुगम करना चाहिये। "देवनागर" पत्रने जो कुछ कार्य किया है, वह प्रशंसनीय है, पर उसके सम्पादनका कार्य कठिन हुआ है। पांच छ भाषाओंके सुयोग्य ज्ञाता बहुभाषावित् सम्पादकका मिलना बहुत ही कठिन है। अगस्त १९०५की सरस्वतीमें पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदीने जो सम्मति इस विषयपर दी थी उसीके अनुसार कार्य करनेको सम्मेलन यत्नवान हो और "एकलिपिविस्तारपरिषद"को उसीके अनुसार कार्य करनेका अनुरोध करे, तो ततोधिक सफलता प्राप्त होगी। सरस्वतीसम्पादकका कथन है:—"हमारी समझमें कलकत्तेसे पांच भाषाओंमें पत्र निकलनेसे कम लाभ होगा। जिस प्रान्तका जो पत्र होता है उसीमें अकसर उसका अधिक प्रचार होता है। .... और एक ही साथ कई भाषाएं सीखना जरा कठिन भी है। इसीसे यदि प्रत्येक प्रान्तमें प्रान्तीय भाषाके साथ सिर्फ हिन्दीभाषामें कोई पत्र या पत्रिका निकले और लिपि दोनोंकी नागरी हो तो विशेष लाभ हो। इससे नागरी लिपि सीखनेमें तो सुभीता होहीगा। उसके साथ हिन्दीभाषा सीखनेमें भी सहायता मिलेगी।"

हम पहले कह आये हैं कि, तुलसीसन्त समाजकी स्थापनाके साथ रामायणपाठके द्वारा हिन्दीका प्रचार करना चाहिये। पर जिस प्रान्तके वासी देवनागरी लिपि न जानते हों, वहां यह काम कैसे चल सकेगा ? यह बात ठीक है। इसके लिये सम्मेलनको यह कार्य करना चाहिये। दो तीन भाषाओंकी वर्णमालाकी छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित करके अल्प मूल्यपर या बिना मूल्य उन्हें प्रचार करना चाहिये। ओड़िसा प्रान्तमें "त्रिभाषी" नामक वर्णमालाओंकी छोटी पुस्तिकाका कई वर्षोंसे प्रचार है। इसकी बदौलत उत्कल प्रान्तके बहुतसे लोग ओड़िया बङ्गला और देवनागरी लिपिसे परिचित हो गये हैं।

इस त्रिभाषीमें तीनों वर्ण रहते हैं—ओड़िया, बङ्गला और देवनागरी।

इसी भांति संयुक्त अक्षर, छोटे छोटे वाक्य संस्कृतके नीतिश्लोक और अङ्क भी दिये जाते हैं। मूल्य इस त्रिभाषीका ⁄)॥ या ⁄) होता है। इससे अक्षरज्ञान अच्छी रीतिसे सुगमतासे हो सकता है। हमने इसी "त्रिभाषी"के बलपर थोड़े ही समयमें ओड़िया और बङ्गला भाषाएं सीख लीं। हमने देखा है कि,इस त्रिभाषीकी सहायता पाकर ओड़िसा प्रान्त और बङ्गाल प्रान्तके साधारण शिक्षित व्यक्ति भी श्रीतुलसीकृत रामायणको आसानीसे पढ़ सकते हैं। हां, उसके समझनेमें उन्हें कठिनाई जरूर पड़ती है, पर वह थोड़े परिश्रम और अभ्याससे दूर हो सकती है। मद्रास प्रान्त (ट्रावनकोर)के एक साधु हमारे यहां कुछ दिन पढ़ने आये थे। वह कुछ कुछ अंग्रेजी और अपनी मातृभाषाके अतिरिक्त न तो अच्छी तरह हिन्दी समझ ही सकते और न बोल सकते थे। पर इसी "त्रिभाषी"के अक्षरोंके ऊपर हमने उनकी मातृभाषाके वर्ण लिखवाये और हमेशा उनसे हिन्दीमें बोलनेको कहा। वह थोड़े ही दिनोंमें "श्रीतुलसीकृत रामायण" पढ़ने लगे और समझने भी लगे। अतः ऐसी "वर्णमालाओं"की पुस्तिकाओंसे बड़ा लाभ हो सकता है।

२—हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेका यत्न और भारतीय विश्वविद्यालयोंकी उच्च परीक्षाओंमें हिन्दीको स्थान दान करनेकी भारतसरकारसे प्रार्थना।

हिन्दीभाषा भारतवर्षमें व्यापक है। कन्याकुमारीसे काश्मीर और त्रिपुरासे पेशावरतक जिसका किसी न किसी रूपमें प्रचार है, वह भाषा ही देश या राष्ट्रभाषा बननेका अधिकार रखती है। संस्कृत भाषा जो एक दिन समस्त भारतवर्षमें, क्या गगनचुम्बी राजप्रासाद, क्या निर्जनवनस्थित शान्त तपोवन,क्या जनाकीर्ण महानगरी और क्या क्षुद्रक्षुद्रकृषकपल्लीस्थ पर्णकुटीरोंमें व्याप्त थी। उस संसारदुर्लभ महोन्नत भाषाकी देवनागरी लिपिमें जो हिन्दी लिखी जाती है, वह राष्ट्रभाषाके अधिकारसे क्योंकर रहित हो सकती है? हम नीचे भिन्न भिन्न भाषा-भाषीकी संख्या देकर यह दिखलाते हैं कि, हिन्दी भाषा-भाषियोंकी संख्या भारतमें सबसे अधिक है।

जिनकी	मातृभाषा	हिन्दी	है	८५००००००
"	"	बङ्गाली	"	४१००००००
"	"	तेलगू	"	१९५०००००
"	"	मराठी	"	१८५०००००
"	"	पंजाबी	"	१७५०००००
"	"	तामिल	"	१५००००००
"	"	गुजराती	"	१००००००००
"	"	कनारी	"	९००००००
"	"	उर्दू	"	३६०००००
"	"	सिंधी	"	२५०००००
"	"	सन्थाली	"	१५०००००

श्रीमती एनी बिसेण्टका कथन है:—

Among the various vernaculars that are spoken in the different parts of India, there is one that stands out strongly from the rest, as that which is widely known, It is Hindi

A man who knows Hindi can travel over India and find everywhere Hindi-speaking people. In the north it is the vernacular of a large part of the population and a large additional part, who do not speak Hindi, speak languages closely allied to it that Hindi is acquired without difficulty. Urdu is but Persianised Hindi; Panjabi and Gurmukhi are dialects of Hindi, Gujrati & Marathi are again dialects of Hindi, Bengali is soften and more melodious and poetical Hindi. (Uria is sister of Bengali and may well be called extremely Sanskritised Hind *) The learning of Hindi is a sacrifice that southern India might well make to the unification of the Indian nation.

"Nation Building"

इसी प्रकार माननीय जष्टिस सारदाचरण मित्रका भी कथन है कि :—

(बङ्गला) "यदि कोन भारतवर्षीय भाषा समग्र भारतवर्ष भाषा हओयार उपयोगी, अन्तत: उत्तर ओ पश्चिम भारतवर्षेर,उपयोगी, इहा हिन्दी। इहाते आरबीर किछु किछु आमेज अच्छे बटे, किन्तु ताहा धर्त्तव्य नहे। हिन्दी रीतिमत ना पड़ियाइ साधारण लोके बुझिते पारे एवं बङ्गदेशेर पूर्वाञ्चल हइते सिन्धु, पाञ्जाव, राजपुताना, मध्यदेश बोम्बाई ओ गुजराट पर्य्यन्त इहा अनायासे चलिते पारे, इहार लिपि ओ वर्णमाला देवनागर एवं इहा अवलम्बन करिले लिपि परिवर्त्तन आवश्यक हइबे ना। दक्षिणात्ये हिन्दी चला एकटु कठिन, कारण द्राविड़ी भाषासमूह अनार्य्य; आर्य्यभाषासमूह हइते इहादेर हिन्दी पार्थक्य अधिक, किन्तु आमादेर विश्वास ये दक्षिणात्ये हिन्दी कष्टसृष्टे चलिते पारे।"

अत: सिद्ध ही हुआ कि, "हिन्दी" ही भविष्यतमें एक दिन भारतकी राष्ट्रभाषा Lingua Franca of India होगी। इस कार्यकी सिद्धि हिन्दीके प्रचारपर निर्भर है। हिन्दीका प्रचार भारतवर्षमें जितनी जल्दी होगी, उतनी जल्दी ही यह राष्ट्रभाषा होकर हमारे जातीय-जीवन और जातीयताको बल प्रदान कर हमारा हित साधन करेगी। पर हिन्दीभाषाको राष्ट्रभाषा बनानेका काम प्रत्येक साहित्यसेवी और हिन्दी-भाषा-भाषीपर निर्भर है। हिन्दीका साहित्य अभी बड़ा अपूर्ण है। उसके सब अङ्गोंकी पूर्त्ति करके उसको गौरवान्वित करना हमसबका एकान्त कर्त्तव्य है। बिना ऐसा किये यह राष्ट्रभाषा होकर शोभा न पावेगी। इसके अङ्गोंकी पूर्त्तिके लिये सम्मेलनको उचित है कि, वह सुलेखकोंसे उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखानेका कार्य अपने ऊपर ले। कृषि, वाणिज्य, विज्ञान, इतिहास, भूगर्भविद्या, प्राणीशास्त्र,रसायनशास्त्र, समाजशास्त्र, तर्कशास्त्र, पुरातत्वविद्या आदिपर पुस्तक रचना करने करानेके प्रबन्धके लिये एक "ग्रन्थ-

* यह वाक्य मेरा है। लो॰ प्र॰

प्रणयन-समिति” स्थापित होनी चाहिये। ग्रन्थ-प्रणेताको यथाशक्ति पुरष्कार भी देना चाहिये। श्रीयुक्त बाबू राधाकुमुद मुकुर्जी एम० ए० कृत Indian Shipping & Maratine Activity जैसे ग्रन्थोंका अनुवाद कराके प्रकाशित करना भी साहित्यकी अङ्गपुष्टिका साधन है। भड़कीले उपन्यास और गजल-लावनीकी पुस्तकोंके प्रकाशकों और लेखकोंको देशहितकर साहित्यकी ओर झुकानेकी चेष्टा करते रहनी चाहिये, क्योंकि साहित्यकी गति देशकी स्थितिगतिके अनुसार होनी चाहिये। इस समय हमें हमारे विगत गौरवको दिखाते हुए हमारी वर्त्तमान अधोगति और उसके कारण स्वरूप हमारे आलस्य, फूट, दीर्घसूत्रता, कलह, कपट, ईर्षा, विश्वासघात और सामाजिक हिंसा आदि दुर्गुणोंके प्रति घृणा उत्पादन कराते हमें इस संसारसंग्राममें दृढ़ता और उत्साहसे अग्रसर करानेवाले सुलेखकोंको अतीव आवश्यकता है। यदि साहित्यसम्मेलनके इस अधिवेशनमें उपस्थित सज्जनवृन्दमेंसे प्रत्येक अपनी शक्तिके अनुसार एकएक देशहितकर ग्रन्थ प्रति वर्ष लिखनेका प्रण करें, तो देखियेगा कि दस वर्षमें हिन्दीसाहित्यकी कैसी उन्नत हो जायगी। विगत अधिवेशनमें श्रीयुक्त पण्डित मन्नागौर प्रसादजीने जो अपनी मनोहारिणी कवितामें इसके लिये प्रार्थना की थी, उसपर हममेंसे प्रत्येकको ध्यान देना चाहिये। यदि ध्यान न दें, तो यह जानना चाहिये कि, हममें पुरुषार्थ और स्वदेश भक्ति नहीं है।

देशी भाषाओंको विश्वविद्यालयोंमें उचित स्थान न मिलनेसे जो असुविधा होती है उसका प्रमाण पदपदपर प्राप्त होता है और यही एक कारण है कि, किसी वैज्ञानिक विषयको स्वमातृभाषामें वर्णन करनेके लिये हमारे यहांके बड़ेबड़े विद्वान् भी असमर्थ होते हैं। हमारे स्कूल और कालेजोंके विद्यार्थी चाहे घण्टों किसी भी विषयपर अङ्गरेजीमें लेकचर दे सकते हैं, पर उन्हें उसी विषयको हिन्दी या अन्य देशी भाषामें समझानेके लिये कहनेसे वे हिचकते हैं और अटक अटक कर आधी अङ्गरेजी आधी देशी भाषामें बड़ी कठिनाईसे उसे समझा सकते हैं। हमारे यहांके विद्यार्थी चाहे आक्सफोर्ड, क्रेम्बिज, डब्लिन आदिके विश्वविद्यालयोंके L. L. D भले ही हो जायं, वहां अपनी शक्ति और विद्याके बलसे विख्यात वक्ता भले ही कहलावें। पर यहां वे हो आकर अपनी मातृभाषामें अपने मनोभाव न तो स्पष्ट रूपसे प्रकट कर सकते हैं, न किसी अङ्गरेजी विद्वानके विचारको विना लम्बी टीका टिप्पणीके लेखबद्ध कर सकते हैं। हमारे यहांके विद्वानोंकी यही दशा देख गत ३ अगस्तको सर जान हिवेटने प्रयागमें कहा था:—“गवर्नमेण्टको अपने गजटका अनुवाद करानेकी आवश्यकता पड़ी। अतएव कई एक बाहरी शिक्षित आदमियोंसे इस कामके लिये कहा गया। उन्होंने जो अनुवादके नमूने भेजे वे अशुद्धियोंसे भरे हुए थे। उनका प्रायः

लखसे सिखतक संशोधन करना पड़ा। तब कहीं वे अनुवाद छपने योग्य हुए।"

इससे स्पष्ट है, कि विश्वविद्यालयोंकी उच्च परीक्षाओंमें देशी भाषाओंको स्थान न देनेका यह बुरा फल है। इस बुरे फलसे राजाप्रजा दोनोंको एक सी हानि है और विशेषत: प्रजासमाजको, क्योंकि भारतीय प्रजा-समाजका अधिकांश शिक्षासे वंचित है और उन्हें मातृभाषाके द्वारा ही उनके अभाव और आवश्यकता बताई जा सकती है। इसीको लक्ष्य करके भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने कहा है:—"बिन निज भाषा ज्ञानके मिटत न हियको शूल।"

सम्मेलनको प्रत्येक विश्वविद्यालयका ध्यान इस ओर आकर्षित करके हिन्दीको उसकी उच्च परीक्षाओंमें स्थान प्रदानकराना चाहिये और इसमें परीक्षाओंके पाठोपयोगी भिन्न भिन्न विषयोंपर पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कराना चाहिये।

हिन्दू-विश्वविद्यालयके संचालकोंसे यह प्रार्थना करनी चाहिये कि, वहां हिन्दी-भाषाहीके द्वारा सब शिक्षाएं दी जांय।

इसके अतिरिक्त और भी कुछ उपाय है, जिनसे हिन्दीका उपकार हो सकता है। भारतवर्षके देशी राजा महाराजोंकी सेवामें प्रति वर्ष सम्मेलनका "डेप्युटेशन" जाना चाहिये और उनके राज्यमें हिन्दीप्रचार करनेकी उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। क्यों कि ये भारतवर्षके स्तम्भस्वरूप हैं और उनकी अल्प सहायतासे गरीबिन हिन्दीका बहुत उपकार हो सकता है।

भारत-सरकारसे उन सरकारी गजट और कागजपत्रोंको हिन्दीमें भी छापनेकी बिनती करनी चाहिये, जिनका अनुवाद हिन्दीके अतिरिक्त अन्यान्य प्रान्तिक भाषा-ओंमें होता है।

आधुनिक हिन्दीके जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह तथा राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दके ग्रन्थोंका सुलभ संस्करण प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किसी यन्त्राध्यक्षसे कराना चाहिये। इनके ग्रन्थोंका प्रचार हिन्दीके प्रचारका हेतु होगा। हिन्दीके वर्त्तमान सुलेखक और कवियोंके ग्रन्थ किसी एक स्थानपर या एक ही दूकानदारके यहां नहीं मिलते, जिससे लोगोंको इनके पठनपाठनका सुयोग अनायास नहीं प्राप्त होता। इस असुविधाको दूर करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये।

प्रति वर्ष सम्मेलनके साथ हिन्दीके उत्त-मोत्तम प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थोंको एक छोटीसी प्रदर्शनी खोली जाय, तो हिन्दीका विशेष लाभ हो सकता है। इस प्रदर्शनीमें हिन्दीके सब उत्तम उत्तम पुस्तक मिल सकें और उनकी वहां बिक्री भी हुआ करे।

सम्मेलनका "वार्षिक विवरण" ठीक समयपर निकालना भी हिन्दीप्रचारका एक कारण होगा। क्योंकि इसमें अन्यान्य प्रान्तवासियोंपर सम्मेलनका प्रभाव पड़ेगा, सम्मेलनके विवरणका सार अंश अंग्रेजी-अनुवादसहित प्रकाशित हो, तो अन्यान्य प्रान्तके हिन्दीप्रेमीका चित्ताकर्षण उससे

हुआ करेगा और उससे हिन्दीको लाभ पहुंचेगा।

इनके सिवा सुयोग्य व्यक्तियोंकी अनुभवशील सम्मति प्राप्त करना भी हिन्दीके हितका हेतु होगा कि, बहुना।

— —

(१५)

स्त्रीशिक्षाका प्रचार

लेखक—पंडित भीमसेन शर्मा।

भारतवर्षमें-जैसे जैसे उच्च कोटिके विद्यावान दानी मानी प्रतापी शूरवीर अटल कीर्तिके स्थापक सहस्रों पुरुष हो चुके हैं वैसे अन्य किसी देशमें नहीं हुए। इसके अन्यान्य अनेक कारण होनेपर भी स्त्रियोंकी उत्तम शिक्षा भी प्रधान कारण है। क्योंकि—

"यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्॥" मनु०

गर्भस्थितिके दिनोंसे लेकर प्रसवके समयतक स्त्रीकी मानसिक वाचिक कायिक प्रवृत्ति अधिकांश जैसी रहती है अर्थात् प्रायः जैसे विचार उनके मनमें उत्पन्न होते हैं, वैसे पुत्रको वह पैदा कर सकती है। आयुर्वेदीय सुश्रुतके शरीर स्थानमें लिखा है कि,—

"आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ। स्त्री पुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥१॥ देवताब्राह्मणपराःशौचाचारहितेरताः। महागुणा प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान्॥२॥"

अर्थ - सात्विक, राजस, तामस आहार, आचरण और चेष्टा ये जिस प्रकारकी गर्भकालमें स्त्री पुरुषोंकी होती है, उनका पुत्र भी वैसा ही होता है। उत्तम कोटिके आचार विचार होना उत्तम शिक्षासे सम्बन्ध रखता है। जो स्त्रियां देवता और ब्राह्मणमें पूज्य बुद्धि तथा भक्तिभाव रखतीं और विशेष कर गर्भकालमें शौच और सदाचारमें तत्पर रहती हैं, वे महागुणी सन्तानोंको पैदा करती हैं और इससे विरुद्ध आचार विचारवाली निर्गुणी, मूर्ख, निकम्मे, आलसी, रोगी सन्तानोंको उत्पन्न करती हैं। मानुषी-सृष्टि उत्पन्न होनेका क्षेत्र सदासे स्त्री-जाति है। पहले बड़े बड़े प्रतापी वा शूरवीर भारतगौरवस्थापक पुरुष अपनी २ माताओंसे हुए थे, अब भी होते हैं और आगे भी होंगे। ऐसी दशामें उत्तम शिक्षाके द्वारा सबके मूल कारण स्त्री जातिका सुधार करना चाहिये। वेदोक्त रीतिसे होनेवाले गर्भाधानादि सोलह संस्कारोंमें पहले तीन स्त्रीके संस्कार माने गये हैं कि, क्षेत्रके संस्कृत हो जानेसे संस्कारी सन्तान उत्पन्न होते हैं। यह कर्मकाण्ड वेदवादियोंका मन्तव्य है। इससे भी यह सिद्ध है कि, स्त्रियोंके सुधारसे आगे आगे उत्तम उत्तम देशोपकारी धर्मात्मा सन्तान हो सकते हैं, जिनसे भारतवर्षके उद्धारकी सम्भावना की जा सकती है। कारणके गुण कार्यमें अवश्य आते हैं, यह विद्वानोंका मत है (कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः)। माता पिता दोनोंमें सन्तानोंका प्रधान कारण माता है। इसलिये स्त्रियोंको उत्तम शिक्षाके द्वारा शिक्षित भूषित करना परमावश्यक है॥

स्त्रियोंका परम कर्त्तव्य पतिव्रतधर्म है।

यद्यपि उच्च कोटिके पतिव्रत धर्मका पालनका समय अब नहीं रहा, तथापि द्वितीय तृतीय कक्षाका पतिव्रत भी अब उत्तमके तुल्य इष्टसाधक समझा जायगा। इसलिये स्त्री-शिक्षाके प्रचारक वा शिक्षक लोगोंका लक्ष्य यह रहना चाहिये कि, जिस प्रकारकी शिक्षासे पातिव्रत धर्मका मूलोच्छेद न होकर उसके मूलमें उपदेश रूप अमृतका सेवन होता रहे, वैसी शिक्षा स्त्रियोंको होनी चाहिये। पतिव्रत धर्मका गौरव वा प्रतिष्ठा अति प्राचीन कालसे भारतवर्षमें चली आती है। अन्य देशोंमें इसकी मान-प्रतिष्ठा अबतक भी नहीं है, किन्तु इस पतिव्रत धर्मको नष्ट करनेवाली स्त्रीशिक्षा तो अन्य देशोंमें ध्यान देनेसे प्रतीत होती है। जब कि भारतवासी विदेशी शिक्षाओंके शिक्षित होकर अपनेको कृतार्थ माननेवाले हो गये हैं। तब ऐसी दशामें सम्भव है कि, स्त्री-शिक्षाके प्रवाहको भी विदेशीय शिक्षाप्रणालीके प्रवाहमें बहावें। सो ऐसा करना भारतवर्षकी मूलोन्नतिका बाधक होना अधिक सम्भव है। इसलिये स्त्रीशिक्षाके द्वारा भारतवर्षकी उन्नति चाहनेवाले महाशयोंको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि, पूर्व कालमें जो भारतवर्षका सर्वोपरि गौरव हो चुका है, जिस गौरवको विदेशीय विद्वान मोक्षमूलर साहबादि अनेक महाशय मुक्तकण्ठसे अनुमोदित और स्वीकार कर चुके हैं, वह गौरव विदेशीय शिक्षाका अनुसरण करनेसे इस कारण नहीं हुआ था कि, वे यूरोपादिनिवासी लोग उस कालमें स्वयं अशिक्षित थे। भारतवर्षके उस सर्वोपरि गौरवके अन्य अनेक कारण होनेपर भी सबसे मुख्य वा बड़ा कारण भारतवर्षकी वीराङ्गना थी कि जो ठीक धर्मानुकूल शिक्षाको प्राप्त होकर वैसे वैसे प्रतापी सुयशस्वी, तेजस्वी महात्मा विद्वानों ब्रह्मर्षि राजर्षि गुप्तर्षियोंको प्रसूत करती थीं। बृहदारण्यक उपनिषद्में तीन बार ऋषियोंकी वंश परम्परा लिखी गयी है। उनमें पहली दो बारकी वंशावलीमें पुरुषोंके नामसे आचार्योंके विद्यावंशकी परम्परा दिखायी है। अन्तकी तृतीय विद्यावंशावलीमें स्त्रियोंके नामोंसे ऋषियोंकी वंशावली दिखायी है—

पौतिमाषी पुत्रः कात्यायिनी पुत्रात्, कात्ययिनीपुत्रो गोतमी पुत्र गोतमीपुत्रो भारद्वाजो पुत्रात्" इत्यादि मूल श्रुतियोंका व्याख्यान करते हुए जगन्मान्य भगवान् शंकराचार्य लिखते हैं कि—

स्त्री प्राधान्याद् गुणवान् पुत्रो भवतीति प्रस्तुतम्। अतः स्त्रीविशेषणेनैव पुत्रविशेषणादाचार्यपरम्परा कीर्त्यते॥

अभिप्राय यह है कि, स्त्रीकी प्रधानतासे गुणवान् पुत्र होता है। इस कारण स्त्रियोंके नामोंसे पुत्रोंके नाम रखके ब्राह्मणश्रुतियोंने आचार्योंकी परम्परा दिखायी है। इससे सिद्ध हो गया कि, जैसी हो उत्तम और शुद्ध आचार विचारवाली स्त्री होगी उसके सन्तान भी वैसे ही धीर वीर प्रतापी तेजस्वी धार्मिक होंगे। दुःखकी बात तो यह है कि भारतवर्षकी स्त्रियोंमें तो बहुत कालसे उत्तम विद्याशिक्षाका अभाव हो गया है, इससे वे नहीं जानतीं कि, हम लोग जैसे

चाहें वैसे ही उत्तम धीर वीर तेजस्वी कीर्त्तिमान् पराक्रमी धार्म्मिक भक्त देशोद्धारक पुत्ररत्नोंको उत्पन्न कर सकतीं हैं वा नहीं, अर्थात् ऐसे अंशोंमें स्त्रियोंको कुछ भी बोध नहीं है। सो इतना ही नहीं, किन्तु बहुविध विद्याशिक्षाको प्राप्त करके देशोद्धारका बीड़ा उठानेवाले हम पुरुष लोग भी प्रायः नहीं जानते कि स्त्रीपुरुष दोनों शास्त्रमर्यादाको यथावत् समझकर गर्भाधानादिकृत्य ठीक ठीक करके थोड़े ही कालमें भारतवर्षको उन्नतिकी सीमा-तक पहुंचा देनेवाले देशोद्धारक सन्तानों-को उत्पन्न कर सकते हैं। वेदादि शास्त्रोंमें सहस्रों प्रमाण हैं कि, सुशिक्षिता शुद्ध आचार विचारवती वीराङ्गना साध्वी स्त्री जैसे चाहे वैसे ही देशोपकारी पुत्रोंको उत्पन्न कर सकती है। इसलिये हम भारतवासी लोगों-का परम कर्त्तव्य यह है कि, स्त्री जाति (अपनी प्रसवभूमि)का उद्धार करने द्वारा अपना उद्धार करें। भारतवर्षकी वीराङ्ग-नाओंने ही सहस्रों पुत्ररत्न आजतक पूर्वका-लसे प्रकट किये हैं, जिनके कारण भारत-वर्षका गौरव अबतक भी कुछ कुछ बना है। सावित्रीके पिता राजाने ब्रह्मचर्य्य-धारण करके अठारह वर्ष तप किया था। तदनन्तर तपके प्रभावसे उत्पन्न हुई सावि-त्रीने पति और पिता दोनोंके कुलोंका उद्धार किया था और वह देवी अपने परम गौरवके कर्त्तव्य द्वारा अपनी अटल कीर्त्ति भारतसन्तानोंके उपदेशार्थ स्थापित कर गई। सर्वमान्य श्रीभगवद्गीता और महाभारतमें राजा युधिष्ठिर तथा अर्जुनादिके गौणनाम पिताके नामसे जितने आये हैं उनसे बहुत अधिक माताके नामसे कौन्तेय और पार्थ आदि गौण नाम प्रसिद्ध हैं। इसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि, युधिष्ठिर वा अर्जु-नादिका महत्त्व माताके गौरवसे दिखाना व्यासदेवका मनोगत भाव है।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि, वर्त्तमान समयमें किस ढंगसे स्त्रीशिक्षा चाहिये क्योंकि शास्त्रकारोंका मत है कि, "हेयं दुःखमनागतम्।" अर्थात् आगामी दुःखोंसे बचनेकी चेष्टा करना मनुष्यका परम कर्त्तव्य है व यों कहो कि, वर्त्तमानकालीन दुःख निवृत्त हो जायें तो उनकी निवृत्ति भी भविष्यत्‌में ही होगी इससे वहां भी उक्त शास्त्रीय वचन ही चरितार्थ होगा। पीछे जो कुछ हो चुका, जो कुछ हम भोग चुके, उसमें कर्त्तव्य कुछ भी नहीं बनता। इसलिये विद्वानोंका मन्तव्य है कि "नष्टं नेच्छन्ति शो-चितुम्" अर्थात् हो चुकेका शोच विचारशील पुरुष नहीं करते "बीती ताहि बिसारि दो आगेकी सुधि लेव" और जो वर्त्तमान क्षणमें है वह भी भावी क्षणमें त्यागा जा सकता है। इससे आगामी दुःख ही त्याज्यकोटिमें आसकता है।

स्त्रीशिक्षा विषयमें दो अंश हैं, एक तो भिन्न भिन्न भाषाओंको पढ़ानेके द्वारा स्त्रियों-को उनके कर्त्तव्यकी शिक्षा देना और द्वितीय किसी भी भाषाको न पढ़ाकर केवल सदुपदेश-श्रवण द्वारा उनके कर्त्तव्यका जताना। चाहे यों कहो कि विद्या और शिक्षा ये दोनों पृथक् पृथक् अंश हैं। इनसे संस्कृतादि भाषाके ग्रन्थोंका परिशीलन विशेष कर विद्या कह-

लाती है और सदाचार धर्म्मानुकूल अपने कर्त्तव्योंको बारबार श्रवण मनन द्वारा जानकर तदनुसार आचारवती होना स्त्रियोंका सुशिक्षिता होना है। हमारा विश्वास है कि, भारतवर्षकी उन्नतिके प्राचीन कालमें प्रायः स्त्रियां सुशिक्षिता होती थीं, पठनपाठनका प्रचार स्त्री जातिके लिये निषिद्ध न होनेपर भी सामान्य कर सब स्त्रियोंके पढ़नेकी परिपाटी इस कारण नहीं थी कि, पढ़े हुए स्त्रीपुरुष भी अनेक दुराचारी हो सकते हैं। ऐसा अब भी प्रत्यक्ष दीखता है। परन्तु दुराचारी होनेका कारण पढ़ना कदापि नहीं है, किन्तु उत्तम रीति सुशिक्षा न होना, सदाचार न सिखाया जाना, दुराचार बढ़नेका हेतु अवश्य है। केवल पढ़ना, और सदुपदेशादि द्वारा केवल सदाचार सिखाना इन दोनोंमें स्त्रीके लिये सदाचारिणी होनेकी शिक्षा पढ़ाये बिना भी होना अत्युत्तम अवश्य है। यदि पढ़नेके साथ साथ उत्तमाचरणकी शिक्षा भी दीजावे, तो केवल शिक्षासे भी अच्छा अवश्य है। तथापि केवल पढ़ानेसे केवल शिक्षा उत्तम है। इस कारण साध्वी स्त्री बनानेके लिये शिक्षाकी प्रधानता होनेसे सामान्यतया सभी स्त्रियोंको बाल्यावस्थासे ही उनके पिता माता भ्रातादि उत्तम शिक्षा दिया करते थे। मन्वादि शास्त्रकारोंने लिखा है कि,—

"ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृत बुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥"

अर्थ—ब्राह्मणोंमें शास्त्रोंको पढ़ने-पढ़ाने जाननेवाले विद्वान् श्रेष्ठ हैं, उन विद्वानोंमें भी शास्त्रोक्त विषयोंके अनुभवी श्रेष्ठ है। अनुभवियोंमें भी शास्त्रोक्त विचारोंके अनुसार ही आचरण करनेवाले श्रेष्ठ हैं और आचरणकर्त्ताओंमें भी ब्रह्मज्ञानी पुरुष सबसे श्रेष्ठ हैं। इसके अनुसार ग्रन्थ पढ़ जानेकी अपेक्षा सदाचरणी होना पूर्वकालमें और अब भी श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि सत्कर्मानुष्ठानके द्वारा अभीष्ट सुख प्राप्त करना ही शास्त्र पढ़नेका मुख्य उद्देश्य है। इससे सुशिक्षा प्राप्त करना ही अभीष्ट होना चाहिये। वर्त्तमान कालमें प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि जिन यूरोपादि देशोंमें प्रायः सभी स्त्रियोंको पढ़ानेका प्रचार है, वहां सदाचारिणी, साध्वी और सती स्त्रियोंका अभाव सा है, इससे पढ़ानेकी अपेक्षा स्त्रीजातिको सुशिक्षित साध्वी सदाचारिणी बनानेका विशेष उद्योग करना चाहिये।

ऊपरके लेखसे हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि, स्त्रियोंको न पढ़ाया जाय। किन्तु यह अवश्य है कि, पढ़ानेमें विदेशीय लोगोंका अनुकरण न किया जाय। पुत्रीपाठशालाओंमें छोटी छोटी लड़कियोंको पढ़ानेके साथसाथ लड़कियोंके रक्षक पितादिको पढ़जाने मात्रसे सुशिक्षित हो जानेका विश्वास कदापि नहीं करलेना चाहिये और उन अपनी अपनी पुत्री भगिनी आदिके सुशिक्षित सदाचारिणी साध्वी बनानेकी चिन्ता सदा रखते हुए वैसी ही शिक्षा देनेका प्रयत्न निरन्तर करते जाना चाहिये। द्वितीय यह भी ध्यान रहे कि, पति पुत्रों वा पौत्रोंवाली गृहस्थोंकी लाखों स्त्रियां किसी पाठशालादिमें जाकर पढ़ नहीं सकतीं और बाल्यावस्थासे उनको पढ़ाया नहीं, न किसीने

उत्तम शिक्षा दी। इससे भारतवासियोंकी सद्गृहस्थस्त्रियां प्रायः अशिक्षित हैं, सती साध्वी सदाचारिणी होना क्या वा कैसा होता है, सो कुछ नहीं जानतीं, ऐसी पतिपुत्रों-वाली गृहस्थ स्त्रियोंको उन उनके घर जाकर उत्तम शिक्षा देनेके लिये प्रायः सभी नगरोंमें कोई परिषद् होनी चाहिये। उसके लिये धर्मार्थ चन्देका एक एक फण्ड सर्वत्र होना चाहिये। उस सभाकी ओरसे सुपरीक्षित शुद्ध सदाचारी देशहितैषी धर्म-प्रेमी जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष वैतनिक रक्खे जावें; वही गृहस्थोंके घरोंमें जा जाकर धर्मानुकूल उत्तम शिक्षा दिया करें वा शास्त्र-मर्य्यादानुकूल स्त्रीधर्मका उपदेश सुनाया करें, तो स्त्रीजातिमें सुशिक्षाका प्रचार हो सकता है।

बड़े हर्षकी बात यह है कि, हमारी सर-कार वृटिश गवर्नमेण्ट तनमनधनसे स्त्री-शिक्षाका पक्ष लिये हुए है। ऐसी दशामें ऐसे समयमें हमलोग स्त्रीशिक्षाके लिये जो कुछ उद्योग करेंगे, उसमें हमारी सरकार अवश्यमेव सहायता देगी। राजसहायता मिलनेसे अभीष्टसिद्धि अर्थात् स्त्रीजातिमें उत्तम शिक्षाका प्रचार अति शीघ्र होगा। उसमें भी अधिक हर्षकी बात यह है कि, हमारी वृटिश गवर्नमेण्टकी मन आशा (मनशा) यह नहीं है कि ईसाई मतके तुल्य आचारविचारोंकी शिक्षा भारतवर्षकी स्त्रियोंको दी जावे। किन्तु हमारी सरकार यही चाहती है कि, भारतीय धर्मके अनु-कूल ही स्त्रियोंको शिक्षा देनी चाहिये। अपने अपने स्त्रीशिक्षादि काम करनेके लिये अंग्रेज लोगोंका अनुकरण प्रबन्ध करनेमें हमलोगोंको करना चाहिये अर्थात् जैसा प्रबन्ध करना उन लोगोंको आता है, वैसा हम नहीं जानते, इसीसे हमारे काम ठीक नियमबद्ध नहीं चलते। इस कारण इस अंशकी शिक्षा उन लोगोंसे लेनी चाहिये।

यदि भारतवर्षीय सत्कुलीन घरानेकी विधवा स्त्रियोंका एक विधवाधर्माश्रम स्था-पित किया जाय, जिसमें धर्मनिष्ठ विद्वान् विधवा स्त्रियोंको सब प्रकारके स्त्रीधर्मको सिखावें, पढ़ावें और पढ़ी हुई सुशिक्षित विधवा स्त्रियां भी उस आश्रममें अन्य विध-वाओंको शिक्षित करें। आश्रमकी सब विधवा तपस्विनी वेषमें रहें, सभी विधवा-धर्मके नियमानुसार भोजन वस्त्रधारण और आचरण करें। विशेषकर सभीको विधवा-धर्म पढ़ाया सिखाया जाय। उसी आश्र-मसे शिक्षित हुई विधवा स्त्रियां भिन्न भिन्न नगरोंमें गृहस्थोंके घर घरमें जा जाकर उपदेश किया करें और पुत्रीपाठशाला-ओंमें भी प्रायः वे ही अध्यापिका नियत की जावें। ऐसा करनेसे स्त्रीशिक्षाका प्रचार शीघ्र हो सकता है और विधवा स्त्रियोंका अपना कर्त्तव्य धर्म ठीक जानकर तदनुसार आचरण करनेपर वैधव्य सम्बन्धी दुःख भी निवृत्त हो सकता है। उस दशामें विधवाविवाहकी चिन्तामें ग्रस्त लोगों-को अवकाश मिल जायगा। तब वे देश-हितका कोई अन्य काम कर सकेंगे और स्त्रीशिक्षाके नवीन नवीन पुस्तक प्राचीन साध्वी पतिव्रताओंके इतिहाससहित बनाये

जावें। उन्हीं पुस्तकोंके द्वारा स्त्रियोंको तथा कन्याओंको शिक्षा होनी चाहिये।

---

(१६)

हिन्दीका हानिकर साहित्य †

लेखक—

पंडित विष्णुदत्त शर्मा।

—::†::—

इस विषयका हमको दो प्रकारसे निर्णय करना चाहिये। एक लोकके सम्बन्धसे और दूसरे भाषाके सम्बन्धसे। लोकके सम्बन्धसे इसलिये कि, "हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन" सार्वलौकिक कार्य है। और सब सर्वलौकिक कार्यों का मुख्य प्रयोजन लोकहित होता है। भाषाके सम्बन्धसे इस-लिये कि, यथार्थमें सम्मेलनका ऐसे विषयों-पर निबन्ध लिखवानेमें प्रयोजन हिन्दीसा-हित्यके दोषोंका संस्कार करना है। इस लिये हमको यह विचार करना चाहिये कि, हिन्दीसाहित्यका वह कौन कौन सा अंश है, जिससे आर्यजातिकी और हिन्दीसा-हित्यकी किसी प्रकारसे हानि हो रही है।

हमारी समझमें इस समय हिन्दी-साहित्यमें मुख्य तीन ही विषय ऐसे हैं, जिनसे बढ़कर कोई हानिकर और व्यर्थ नहीं है और जिनका वर्षोंसे मर्यादासे अधिक प्रचार हो रहा है। वे (१) उप-न्यास, (२) कविता और (३) समालोचना है। इनमें पहले "उपन्यास"को लीजिये। (१) यद्यपि संस्कृत और हिन्दीमें प्राचीन समयसे ही कथाग्रन्थ लिखे जाते हैं तथापि उपन्यासोंकी उत्पत्ति अंगरेजी राज्यके आरम्भसे पीछेकी ही है। और इनका प्रचार अंगरेजी नावल्‌सके (novels) देखा-देखी हुआ है। अनुकरण भी किया तो अंगरेजोंकी दुष्ट (दोषयुक्त) वस्तुका किया, उत्तम वस्तुका नहीं। फिर यह काम भी तो इतना सहज है कि, वर्णमालाचार्यतकको इसमें कठिनाई नहीं होती। पहलेपहल बंगला और अंगरेजी उपन्यासोंका उल्था होने लगा। फिर अपनी बुद्धिसे ही उपज होने लगी, जो पढ़ेलिखे लोगोंने उस "उपज"का आदर नहीं किया, तो "हीर-रांझा" आदि "ख्यालों"के प्रेमियोंसे तो आर्य भूमि, "निर्वीज" हो ही नहीं गई थी। फिर तो प्रसिद्धिपत्रों और समालोचकोंने वह सहारा दिया कि पढ़ेलिखे भी उनके गाहक हो गये। इसी प्रकार लोगोंने इस कर्मको नाम और धन कमानेका अच्छा प्रकार समझ लिया और थोड़े दिनोंमें तो देशके "पण्डितों"ने उनको "सुलेखक"की पदवी दे डाली। और खोज की जाय, तो हिन्दीमें "सुलेखक" प्रायः वे ही मिलेंगे जिनकी करतूत ये उपन्यास ही हैं। कई लौंडे, जो विद्वानोंके जूते उठाने योग्य भी नहीं थे, आजकल ऐसे प्रसिद्ध हो गये हैं कि, कठिन शास्त्रीय विषयोंतकमें वे प्रमाण माने जाते हैं। विद्या देखिये, तो उनमें केवल इतनी ही मिलेगी कि, बुरा भला उल्था करलें और कहानियां घड़लें। अब

---

† "हिन्दीसाहित्यसम्मेलन"को छोड़कर किसीको रच पिताकी अनुमति बिना इस निबन्धको छापनेका अधिकार नहीं है। लेखक—

उपन्यासोंसे जो मुख्य मुख्य हानियां होती हैं उनको लोकके सम्बन्धसे लिखते हैं।

(१) पहली हानि यह है कि, जो ये शृङ्गार रसके हुए तो मनमें कुवासना उत्पन्न करते हैं। हमने कई लड़कोंको देखा है, जो भली भांति पढ़ाईमें लगे हुए थे, पर ज्यों ही उनके उपन्यासोंकी छूत लगी त्योंही पढ़ाईको छोड़ बैठे और ऐसी "इश्क"की उपासना करने लगे कि, थोड़े ही दिनोंमें बल नैरोग्य, उत्साह, धैर्य, चरित्र और धनसे जीवन्मुक्त हो बैठे। एक ओर तो हम ब्रह्मचर्यकी महिमाका गान करते हैं और दूसरी ओर इस छूतसे रोगको बढ़ा रहे हैं। जो ये चित्त भड़कानेवाले वा वीर रसके हुए तो भी मनमें दुष्प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं। अर्थात् पाठकके लिये वैसे उपन्यास मादक पदार्थकी भांति हो जाते हैं। जैसे अफीमचीको अफीम मिले बिना चैन नहीं होता, वैसे इनको भी Sensational novels को छोड़कर कोई पुस्तक नहीं भाती। थोड़े दिनोंमें इनके धैर्यादिक गुण अर्थात् मनका बल जाता रहता है। क्योंकि जैसे अफीमचीके सहज उत्साहादिक गुण अफीमकी शक्तिसे कृत्रिम रूपसे प्रकट हो हो कर निकल जाते हैं, वैसे पाठक भी इन उपन्यासोंको पढ़ पढ़कर उत्साह साहसादिकोंको व्यर्थ खोते हुए उन गुणोंसे शून्य हो जाते हैं। यथार्थ तत्व यह है कि, मनुष्यके उत्साहसाहसादि गुण किसी उपयोगी कार्यमें खर्च होने चाहियें, जैसे साहसका लड़ाईमें खर्च होना। पर जो वह पुस्तक पढ़नेमें ही खर्च हो जाय तो अपव्यय ही है।

(२) दूसरी हानि यह है कि, इनके पढ़नेसे ऐहिक वा पारलौकिक कार्योंमें कुछ फलसिद्धि नहीं होती और समय व्यर्थ बिगड़ता है। जो कोई नीतिके ग्रन्थोंको पढ़ेगा तो संसारिक कार्योंमें वे ग्रन्थ कभी न कभी उपयोगी अवश्य होंगे। इसपर जो कोई कहे कि, उपन्यासोंको नीतिका उदाहरण ही मान लो; जैसे किसी उपन्यासमें दुश्चरित्रताका दुष्परिणाम दिखाया गया हो। तो उत्तर है कि, ऐसा उदाहरण इतिहासमें वा लोकमें पढ़ना वा देखना चाहिये जिसकी सचाईका मनपर गुण भी हो। कल्पित कहानियोंसे ऐसा फल नहीं हो सकता। क्योंकि पाठक उनको पहलेसे ही झूठी माना करते हैं।

(३) तीसरी हानि मन और बुद्धिका सुखियापन है। उपन्यास जैसे सीधे ग्रन्थको पढ़नेसे मन और बुद्धि सुखिया हो जाते हैं। अर्थात् जैसे आलस्यका आनन्द चखा हुआ शरीर काम करना नहीं चाहता, वैसे सुखिया मन और बुद्धि भी क्लिष्ट विषयोंमें नहीं लगते। और फिर तो जैसे आलसी शरीर निकम्मा हो जाता है, वैसे मन और बुद्धि भी भोंटे हो जाते हैं। ऐसा मनुष्य शास्त्रोंको नहीं पढ़ सकता जो उपन्यासोंसे क्लिष्ट होते हैं। और इससे विद्याकी घटती होती है।

ये लोकके सम्बन्धमें हानियां हुईं। अब भाषाके सम्बन्धमें देखिये।

(१) भाषाके सम्बन्धमें उपन्यासोंसे एक ही हानि है। पर वह साधारण नहीं है। वह शब्ददरिद्रता और शास्त्रहीनता है। अबतक हिन्दी कहानियोंमें मात्र ने

भाषा रहेगी, तबतक शास्त्रोपयोगी शब्दोंकी कल्पना नहीं हो सकती। यद्यपि शास्त्रोपयोगी शब्द ठेठ हिन्दीमें नहीं गढ़े जायंगे। किन्तु मूल भाषा संस्कृतसे ही लिये जायंगे, तथापि जबतक उपन्यासोंका प्रचार रोका नहीं जायगा, तबतक यह शब्ददारिद्र्य नहीं मिटेगा। अबतक हिन्दीमें कोई शास्त्र दिखाई नहीं देता है। न्यायदर्शन आदिकोंकी कौन कहे, भाषासम्बन्धी व्याकरणादिक शास्त्रोंका भी अभी केवल प्रारम्भमात्र हुआ है। यह साधारण न्यूनता नहीं है। जिस भाषामें शास्त्र नहीं हैं, वह केवल गलीकूचोंकी भाषा है। विद्वानोंमें उसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। और जबतक हिन्दीमें शास्त्र न होंगे, तबतक लोगोंको विवश होकर वे शास्त्र और भाषाओंमें पढ़ने होंगे। इस कार्यमें जितनी देर लगेगी, तबतक विद्वान् लोग हिन्दीमें उदासीन रहेंगे। इससे इस भाषाके सारे देशकी भाषा बननेमें भी विघ्न पड़ेगा।

उपन्यासोंकी कथा समाप्त हुई। अब "कविता"को लीजिये।

(२) इसका भी आजकल इतना अधिक प्रचार हो गया है कि, जिस समाचारपत्र वा मासिक पुस्तकको उठाइये उसीमें नये आशुकवियोंकी सेनाका पराक्रम दिखाई देगा। भाषा देखिये तो बड़ी अद्भुत है। किसीमें उर्दू फारसी शब्दोंकी भरमार है, किसीमें ब्रजभाषा और खड़ी बोलीका गंठजोड़ा कर दिया गया है, किसीमें क्लिष्ट संस्कृत शब्दोंका पुल सा बांध दिया गया है। विलक्षण भाषासङ्कर कर डाला है। भाव देखो तो वही छिछोरे वा घिसे पिसाये हैं। न कुछ तुकका ध्यान है और न छन्दका है प्राचीन रोला आदिक भाषाछन्दोंको छोड़कर मन्दाक्रान्तादिक संस्कृत छन्दोंमें रचना करनेकी सनक सी चढ़ गई है। कहीं कहीं उर्दूके दुष्ट (दोषयुक्त) छन्दोंमें भी रचना की जाती है। खड़ी बोलीमें कविता करनेका इतना आग्रह बढ़ गया है कि, ब्रजभाषा बिचारीको कोई पूछता ही नहीं है। अथवा आग्रह क्यों न हो? ब्रजभाषामें कविता करनेके लिये उस भाषाके ग्रन्थ पढ़ने चाहियें। इतना कष्ट हमारे जन्मकवि काहेको उठाने लगे। दूसरे उसमें हिन्दीकी भांति काव्यनियमोंका दारिद्र्य भी नहीं है कि, हमारे "निरङ्कुश" कवि "मनमानी घरजानी" कर सकें। बस भाषा तो घरकी बोली ही रही और छन्दपूरणार्थ समाचारपत्रादिकोंसे शुद्ध अशुद्ध संस्कृत शब्द मिल गये। फिर कविता करनेमें क्या कठिनाई रही? विषय देखिये तो, वही वसन्तवर्णनादिक है, जिनको प्राचीन महाकवि इतना पीस गये कि, इन कवियोंके लिये भूसी भी नहीं रही। देशहितादिक विषयोंपर भी आजकल कविताकी झड़ी सी लग रही है, जिसमें थोथे बढ़ावेके पिष्टपेषुको छोड़कर कुछ युक्ति दिखाई नहीं देती। अब तो इन मनचले कवियोंमें किसी किसीका मन इतना बढ़ गया है कि, फुटकर पद्यावली ही नहीं, वरन् काव्य भी देखनेमें आने लगे हैं। टुटपूंजियोंकी आजकल ऐसी प्रसिद्धि हो गई है कि, हिन्दीमें इस समय उत्तम काव्-

लाने योग्य पं० बद्रीनारायण चौधरी, रायदेवी प्रसाद (पूर्ण) पं० श्रीधर पाठक और पं० नाथूराम (शङ्कर) आदि कवियोंकी भी कीर्त्ति इनके आगे ढक सी गई है। जिसको जन्म भरमें २।४ पद्य बनानेका काम पड़ गया है वह भी अपनेको "सुकवि" माने बैठा है।

हमको स्मरण है कि, एक हिन्दीके "सुलेखक"ने, जिनने मराठीके किसी "पञ्चक"का उलथा किया है,और जिनकी प्रसिद्धि केवल गद्यरचनासे है, (यद्यपि हमको तो उनकी गद्यरचनामें भी प्रसिद्धियोग्य कुछ विशेष नहीं दीखती) नागपुरकी "निबन्ध माला"में अपनी एक कविता छपाई थी, और साथ ही आज्ञा दी थी कि,यह कविता प्रत्येक पाठशालामें पढ़ाई जानी चाहिये। उसको देखनेके पहले हम यह नहीं जानते थे कि, ऐसी भद्दी कविता भी कहीं मिल सकती है। परन्तु "सुलेखक" महाराजको अपनेमें कालिदासका धोखा हो रहा था। अब आजकलकी सी कवितासे लोकके सम्बन्धमें जो हानि है, उसको लिखते हैं।

(१)लोकहित और शास्त्रोंमें उपयोगी जैसा गद्य होता है, वैसा पद्य नहीं होता। पद्यका मुख्य प्रयोजन केवल Æsthetical education रसिकताकी शिक्षा देना है। पद्यकी रचना संक्षिप्त और छन्दोबद्ध होनेसे किसी विषयको कण्ठ करने वा किसी विषयका प्रचार करनेमें सुगमता भी होती है पर यह इसका गौण प्रयोजन है। मुख्य प्रयोजन ऊपर कहा हुआ ही है। भाषा और अर्थके दोषोंसे बचते हुए और जातिविशेषके स्वभावदशादिकी अनुकूलतासे ऐसे चमत्कारशाली सौन्दर्य्यपूर्वक किसी विषयको वर्णन करना जिससे लोगोंकी कल्पना Imagination का संस्कार होकर उसमें सुन्दरता आजाय यही काव्यका प्रयोजन है। मनुष्यके प्रत्येक कार्य्यमें कल्पनाका चिह्न रहता है। जो यह सुन्दर हुई, तो उसके कार्य्य भी सुन्दर होंगे और जो भद्दी बेडौल हुई तो वे भी भद्दे और बेडौल होंगे। इस ढंगसे काव्यका भला बुरा प्रभाव सारी जाति वा देश वा उसके कार्य्योंपर पड़ता है। आर्य्यजाति विशेष करके रसिक वा सुन्दर कल्पनाशक्तिशालिनी जाति है। और प्राचीन सुन्दर चित्रभवनादिक नष्ट वा बची खुची सांसारिक वस्तुओंसे लेकर पारलौकिक अद्भुत सृष्टितक इस जातिकी कल्पनाशक्तिकी विलक्षणताके प्रमाण हैं। क्या हुआ जो आर्य्योंके अभिमानका सत्यानाश चाहनेवाले विदेशी विद्वान् कुटिलतासे हमलोगोंकी प्राचीन महिमामें असूया किया करें। अब देखिये कि,आजकलकी इस कवितासे,जिसमें दोषोंको छोड़कर एक भी गुण नहीं मिल सकता हमलोगोंकी कल्पनामें कैसे बुरे दोष नहीं आ सकते हैं और क्या यह सम्भावना नहीं है कि, जो यही ढङ्ग चलता रहा तो किसी समयमें यह जाति कल्पनाशक्तिसे निरी शून्य हो जायगी। जो लोग संस्कृत वा देशभाषाओंके प्राचीन काव्यग्रन्थ नहीं पढ़ते हैं, उनमें इतना दोष तो अभी हमने देखा है कि, वे कवितामें नवीन चमत्कार नहीं ला सकते और जो लाते हैं, तो निरा अनुपयुक्त। आगे न जाने क्या होगा ? हमारे

एक प्रियवन्धुने हमसे एक बंगाली रसिकका हाल कहा था, जिनने अपने बंगलेका नाम "सुधाकानन" रक्खा था। बलिहारी है इस रसिकताकी! सुधाका "समुद्र" होता है वा "वन", और फिर बंगलेको कोरी "सुधा"-की उपमा देना भी तो अद्भुत रसिकता है। विस्तारके भयसे हमने इस विषयको संक्षेपमें कह दिया है, पर यथार्थमें यह हानि असाधारण है।

लीजिये यह लोकके सम्बन्धमें हानि हुई अब भाषा वा साहित्यके सम्बन्धमें—

(१) यह हानि प्रकट ही है। जिसमें न शब्दका चमत्कार हो और न अर्थका, किन्तु दोषोंकी भरमार हो, ऐसा काव्य क्या साहित्य कहला सकता है? ऐसे साहित्यके स्थानमें शून्य अच्छी है, क्योंकि उसके नाश हो जानेमें हो तो लाभ है, प्रचारमें नहीं।

(२) अब "समालोचना"को लीजिये। इसका उपन्यास और कवितासे थोड़ा प्रचार है, पर है सही। यहां "समालोचना"से हमारा मतलब उस परखसे नहीं है, जो "प्राप्तिस्वीकार" वा "सामयिक साहित्य' आदिक नामोंसे समाचारपत्रादिमोंमें नवप्रकाशित पुस्तकोंकी की जाती हैं, जिसको अंगरेजीमें Review कहते हैं, किन्तु उस परीक्षासे है जो प्राचीन संस्कृत और भाषाग्रन्थोंकी की जाती है और जिसको अंगरेजीमें Criticism कहते हैं। यह भी उपन्यासोंके भांति अंगरेजी ढंगकी समालोचनाका अनुकरण है। हिन्दीके लेखकोंमें यह काम उनका है, जिनमें संस्कृत और भाषा (यहां भाषासे मतलब ब्रजभाषासे और तुलसीकृत रामायणादि ग्रन्थोंकी भाषासे है) का ज्ञान थोड़ा है, पर अंगरेजीका उससे अधिक है। कुछ वर्षोंसे इन लोगोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया है। अंगरेज समालोचकोंके अनुकरणशील आर्य विद्वानोंके देखादेखीमें हिन्दीके टुटपूंजिये भी पांचवें सवारोंमें अपनी गिनती करानेके लिये प्राचीन संस्कृत और भाषाके महाकवियोंको फक्केड़ने लग गये हैं। संस्कृतके सम्बन्धमें तो हमको इस बातका पूरा अनुभव है कि, इस भाषाके काव्योंका रस केवल वही मनुष्य जान सकता है जिसने बचपनसे इसको प्राचीन ढङ्गसे पढ़ा है, क्योंकि उन ग्रन्थोंकी शैली उसकी रुचिके अनुकूल होती है। जन लोगोंको संस्कृतसाहित्यका रस स्वप्नमें भी नहीं मिल सकता जो इस देववाणीको Second language गौण भाषाके रूपमें ले भागे हैं वा अंगरेजी अनुवादोंके सहारे हो समझ सकते हैं, चाहे वे अल्पज्ञता जन्य हठ और घमण्डके मारे अपनेको बृहस्पति हो क्यों न समझा करें। ऐसी दशामें इन लोगोंको संस्कृत काव्योंके गुण दीख हो कैसे सकते हैं। ये पण्डितमान्य कभी नहीं विचारते कि, मम्मटभट्टादि काव्यसूत्रकारोंने इतनी पूर्णतासे काव्यके गुणदोषोंका निर्णय कर दिया है कि, हमसे अन्योंको संस्कृत कविताका मार्ग दिखानेकी आवश्यकता नहीं है और न संस्कृतके पण्डित किसी कालमें हमें प्रमाण मान सकते हैं। इन लोगोंसे यह कोई नहीं कहता कि, तुम हिन्दीके "लेखक" हो, इसलिये तुम्हारो

छक्लजूद हिन्दीमें ही रहनी चाहिये। संस्कृतमें टांग अड़ाकर हिन्दीवालोंमें संस्कृतके विद्वान कहलानेकी तुम्हें क्या पड़ी है। विद्या ही है, तो हिन्दीमें ही कुछ क्यों न कर दिखाते हो। जहां कोई सत्पुरुष प्राचीन महापुरुषोंके निरादरसे दुःखित हो कर इन्हें आड़े हाथों लेता है, तो ये उन लोगोंके सर्टिफिकटोंका सहारा लेते हैं जो स्वयं भ्रममें पड़े हुए हैं। ऐसे ही जब ये व्रजभाषादिकोंके प्राचीन ग्रन्थोंके पीछे पड़ते हैं, तब भी यह नहीं विचारते कि इन ग्रन्थोंकी परीक्षा भी व्रजभाषाके काव्यसूत्रोंके अनुसार वा जहां इन्हींमें न्यूनता हो, वहां संस्कृतके प्राचीन काव्यसूत्रोंके अनुसार ही हो सकती है। जिनको जानना हंसी-ठट्ठा नहीं है। न कि परायोंसे चोरीकी हुई मनमानी रुचिके अनुसार जिसको उन उन भाषाओंके विद्वान कभी प्रामाणिक नहीं मान सकते। ये लोग जिन कुवाच्योंमें प्राचीन ग्रन्थकारोंकी असूया करते हैं, वह तो थू थू करने योग्य है ही ; परन्तु वह धूर्त्तता और भी निन्दनीय है जिससे ये अपनेको प्राचीन ग्रन्थोंके समालोचक बननेका अधिकारी सिद्ध करते हैं। ये कहते हैं कि, हम विद्यामें उनके समान नहीं हैं, इसीसे उनकी रचनाकी समालोचनाके अनधिकारी नहीं हो सकते। इसमें सन्देह नहीं कि सिड़ीको ही जब कोई आयंबायंसायं बकनेसे रोक नहीं सकता है, तब इनको कौन रोक सकता है। पर विद्वानोंमें इनके वाक्य तभी ग्राह्य हो सकते हैं, जब ये आप समालोच्य ग्रन्थकारोंकी सी विद्वत्ता रखते हों वा इस समयमें भी विद्वानोंमें विद्वान कहलाने योग्य हों। मम्मट, क्षेमेन्द्र, जगन्नाथ पण्डितराजादिकोंके वचन इसीलिये मान्य हैं कि, वे कालिदासादिकोंके बराबर न भी हों तो भी अपने समयमें असाधारण विद्वान थे। पर केवल टूटीफूटी अंग्रेजी वा हिन्दी लिखपढ़ लेना जानकर कालिदासादिकी रचनामें छिद्र ढूंढना वैसाही है, जैसा फूसकी झोपड़ीमें रहनेवालेका राजमहलकी रचनामें दोष निकालना। यही क्यों हमारी समझमें तो ऐसे लोगोंका प्राचीन महाकवियोंकी रचनामें दोष ढूंढना तो क्या गुण देखना भी उन महात्माओंका अनादर करना है। पर इन लोगोंका साहस इतना बढ़ गया है कि, फुटकर लेख ही नहीं, वरन् कोई कोई पुस्तक भी दीखनेमें आने लगी है। अब ऐसी समालोचनासे लोकके सम्बन्धमें जो हानि है उसको दिखाते हैं।

(१) अंगरेजोंमें संस्कृतके "साहित्यदर्पण" "काव्यप्रकाश" "काव्यप्रदीप" इत्यादिक काव्यनियमोंके ग्रन्थोंकी भांति कोई प्राचीन पुस्तक नहीं है। इससे कुछ वर्षोंसे जैसा जिसका मत हुआ उसी प्रकारसे प्राचीन कवि आदिकोंके ग्रन्थोंकी समालोचना की जा रही है। यद्यपि अंगरेज समालोचकों और प्राचीन संस्कृत काव्यसूत्रकारोंकी रीतिमें बहुत कुछ भेद है, तथापि अंगरेजोंमें जो कार्य अब कुछ समयसे हो रहा है, वह संस्कृतमें सैकड़ों वर्ष पहले हो चुका है। दूसरे अङ्गरेजोंके देश, रीति, स्वभावादिकोंमें और हमारे देश, रीति,

स्वभावादिकोंमें इतना भेद है कि, न तो हमको अपनी रुचिके अनुसार उनके ग्रन्थोंको परखनेका अधिकार है और न उनको अपनी रुचिके अनुसार हमारे ग्रन्थोंको जांचनेका अधिकार है। इस विषयमें जैसे हमारा मत अङ्गीकार करनेमें उनकी हानि है, वैसे ही उनका मत अङ्गीकार करनेमें हमारी हानि है। स्थाली-पुलाक न्यायसे एक दो साधारण उदाहरण लीजिये। अंगरेज लोग पक्के सांसारिक हैं। उनको भाषाके चमत्कारसे कोई प्रयोजन नहीं। इसलिये उनको साधारण बात-चीतकी सीधीसादी भाषा ही भाती है। आर्यलोग रसिक रहे और इनकी भाषा संस्कृतमें भी कामधेनुकी भांति भांति-भांतिकी रचनाचातुरी दिखलानेका विलक्षण अवकाश है। अब देखिये प्रोफेसर वेबर बाणकी गद्यरचनापर कैसा प्रश्न चलाते हैं। आप कहते हैं कि;—

"Bana's prose is an Indian wood, when all progress is rendered impossible by the undergrowth, until the traveller cuts out a path for himself and where even then he has to reckon with malicious wild beasts in the shape of unknown words that affright him".

अर्थात् जैसे भारतवर्षके वनमें वृक्षोंके बीच-बीचमें उगी हुई छोटी छोटी झाड़ियोंके मारे बटोहीकी गति असाध्य हो जाती है, और जो वह किसी प्रकारसे मार्ग निकाल भी लेता है, तो दुष्ट भयावने बनैले जन्तुओंसे अलग पिण्ड सुलझाना पड़ता है। वैसे ही बाणके गद्यमें द्व्यर्थक शब्दोंके मारे कथोपयोगी अर्थ समझना असाध्य हो जाता है और जो वह अर्थ परिश्रम करनेपर निकल भी जाता है, तो अप्रसिद्ध कठिन शब्दोंको समझनेके लिये अलग कष्ट उठाना पड़ता है। प्रोफेसर साहबका इसमें कुछ दोष नहीं है। क्योंकि बाणकी शैली सूखी सूखी रचना पढ़नेके अभ्यासी यूरोपियनकी रुचिके अनुकूल कभी नहीं हो सकती और न ऐसे लेभग्गू संस्कृतज्ञको जन्म भरमें भी बाणकी रचना और उसके लालित्यको समझने वा कादम्बरीकी सी एक भी पंक्ति बनानेकी सामर्थ्य हो सकती है। परन्तु यह दशा हम आर्योंकी नहीं है। हमको बाणकी रचनामें कुछ क्लिष्टता नहीं दिखाई देती। किन्तु आश्चर्य इस बातका है कि, ऐसी विलक्षण रचनाचातुरीसे भरपूर होनेपर भी कादम्बरीमें ऐसी विलक्षण सरलता है। बाणकी अपौरुषेयप्राय रचना चातुरीका किसी टुटपूंजियेके बक देनेसे ही हम अनादर करदिया करें, तो बतलाइये फिर संस्कृतसाहित्यकी लोकोत्तर महिमा कहां रहेगी? क्या गजीके सस्तीमात्र होनेसे ही हम सूक्ष्म रेशमी वस्त्रोंको अतिमूल्यताका कलङ्क लगाकर फेंक दिया करें? कंगले चाहे उन्हें फेंकदें, पर धनी लोग भी वैसा क्यों करें? जो धनवान् भी सूक्ष्म वस्त्रोंको फेंकदें तो शिल्पचातुरी ही न उठजाय। ऐसे ही, जो हम कहने लगें कि, wordsworth वर्ड्स्वर्थ किसी कामका कवि नहीं है, क्योंकि उसकी रचनामें नाममात्र भी प्रब्दा-

लङ्कार नहीं हैं तो क्या अंग्रेजोंको ग्राह्य होगा? जो वे इस मतको अङ्गीकार करलें तो यह परिणाम होगा कि हमारे जैसा शब्दालङ्कार तो कभी आना नहीं, उलटा उस कविकी शैलीको भी अनादर करके खो बैठें। कौआ चला हंसकी चाल उलटा अपनी भी खो बैठा। विदेशी शासनके अधीन होनेसे हमको बाह्याडम्बरमें समयानुकूल फेरफार करना पड़ा है, परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि, हमको अपनी रुचि भी बदल देनी चाहिये। हमने शरीर पराधीन किया है, मन नहीं। जिस दिन हमारा मन भी पराधीन हो जायगा, उस दिन हमारे आर्यत्वका भी नाश हो जायगा। कई वर्षोंसे नाममात्रके Oriental Scholars "पूर्वीय विद्याविद्" योरोपियन लोग कुटिलतासे हमारी अन्यान्य वस्तुओंकी भांति उत्तमोत्तम प्राचीन ग्रन्थोंकी असूया कर रहे हैं। परन्तु उनसे इसको छोड़कर क्या अच्छी आशा हो सकती है। परले सिरेकी कुटिलता तो यह है कि, इन्हीं लोगोंकी बनाई संस्कृत ग्रन्थोंकी समालोचना हमको पढ़ाई जाती है और आश्चर्यकी बात यह है कि, कई आर्य विद्वान भी उसी मार्गका अवलम्बन कर योरोपियन कुटिलनीतिके यज्ञमें आर्यत्वको अपने हाथों स्वाहा कर रहे हैं। ये हिन्दीके टुटपूंजिये अंग्रेजी समालोचनाकी शैलीको भी पूर्णतासे नहीं जानते हुए विना पूछे ही चिल्लाते हैं कि, "अरे कोई हमें भी तो पूछो"। यह लोकके सम्बन्धमें हानि हुई। अब भाषाके सम्बन्धमें दिखाते हैं।

(१) इस समय आवश्यकता तो इस बातकी है कि, संस्कृतकाव्यसूत्रोंके ढङ्ग पर उन्हींके आश्रयसे हिन्दीभाषाके प्रयुक्त काव्यनियम बनाये जायं, जिससे हिन्दीमें शुद्ध और उत्तम कविता बने और आजकलकी सी तीन कौड़ीकी कविताका प्रचार रुके। और ये समालोचक यह समझे बैठे हैं कि, हमारी समालोचना ही काव्यसूत्रोंका काम दे रही है वा देगी। प्रथम तो यह कि यह शैली आर्योंकी रुचिके अनुकूल कभी हो ही नहीं सकती, जिसको हम पहले दिखला चुके हैं। दूसरे ऐसी समालोचनाका परिणाम निषेधरूपक (destructive) है, न कि विधिरूपक (constructive) जिससे शुद्ध कविता करना सीखी जा सके। इसलिये, जबतक इस समालोचनाका प्रचार नहीं रुकेगा, तबतक हिन्दीके योग्य काव्यसूत्र नहीं बन सकेंगे, चाहे हजारों वर्ष ही क्यों न बीत जायं। यह दूसरी बात है कि, ये अंग्रेजी मात्र जाननेवाले अल्पविद्य समालोचक इस कामको न कर सकें, किन्तु, संस्कृत और हिन्दीका उत्तम पण्डित ही कर सके।

"उपन्यास", "कविता" और "समालोचना"से होनेवाली सब हानियां दिखलाई जा चुकीं। इनमें "उपन्यास" और "समालोचना"को तो सदाके लिये मिटा देना चाहिये। और "कविता"का प्रचार तबतक रोक देना चाहिये, जबतक पूर्ण काव्यसूत्र न बन जायं। यथार्थमें आर्योंके लिये उपन्यास तो क्या कविताका भी यह समय नहीं है। ये दोनों मनोविनोदकी

सामग्री हैं। मनोविनोद केवल उन्हीं लोगोंको सोहता है, जो पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्ध कर चुके हैं। आर्य लोग अभी पुरुषार्थ चतुष्टय साधन तो दूर रहे, सिरपर आये हुए नाशसे भी बच लें, तो कुशलकी बात है। इस बातको स्वार्थान्ध वा अविद्यान्ध पुरुषको छोड़कर कौन नहीं जानता है कि, सैकड़ों नयी पुरानी कुरीतियां, दुराचार, मूर्खता इत्यादिक दोष इस प्राचीन जातिको बलसे, बुद्धिसे, गुणोंसे और धनसे नाश कर रहे हैं। इसकी कहीं कुछ प्रतिष्टा नहीं है। जहां देखो वहां इसकी केवल पिटम्सरी सुननेमें आती है। इसलिये इस समय रचनाका मुख्य विषय यह है :—

(१) (क) धर्ममें ऐसे क्या क्या पाखण्ड और निरर्थक विषय आगये हैं, जिनमें तत्त्व तो छिप गया है और देश जाति हितके लिये आवश्यक मानसिक शक्ति नाश हो गई है। (ख) रीतियोंमें ऐसे कौन कौन दोष आ गये हैं, जिनसे आर्य जाति शरीर, मन, बुद्धि और धनसे नाश हो रही है। (ग) किन किन रीतियोंके प्रचारसे आर्योंकी नाशसे रक्षा और बढ़ती हो सकती है।

इससे अधिक आवश्यक कोई विषय नहीं है। स्मरण रखना चाहिये कि, पुराने जीर्णशीर्ण रोगीका भला धीरे धीरे सावधानतासे रोग मेटकर भूख बढ़ानेमें है, न कि पहले ही मोदक पाकादिक बना डालनेमें। जो वह उनको खाता है तो मरता है और नहीं खाता है तो देख देखकर तरसा करता है। यही हाल आर्य जातिका है इससे दूसरा विषय यह है:—

(२) संस्कृत और अन्य भाषाओंके सहारे ऐसे ग्रन्थ बनाना जिनसे यथार्थ विद्या बढ़े। जैसे—व्याकरण, न्याय, शाण्डिल्यसूत्र, दर्शन, इतिहास, भूगोल, पदार्थशास्त्र, इत्यादिक।

देश और साहित्यका हित केवल इन्हीं विषयोंसे हो सकता है और इनपर हजारों ग्रन्थ बननेका अवकाश है। हां, उपन्यास, कविता और समालोचनाकी भांति यह काम सीधा नहीं है। विद्वत्ता और प्रतिभा इसमें बहुत आवश्यक है। थोड़ी सी अंग्रेजी पढ़ ली और थोड़े दिन समाचारपत्र पढ़लिये और इसीसे यह कार्य करना हो, तो सचमुच असाध्य है। जबतक यह ढङ्ग रहेगा और आजकलकी भांति अल्पज्ञोंका आदर रहेगा, तबतक न तो संस्कृतादि भाषाओंके विद्वानोंकी हिन्दीमें रुचि होगी और न वे इसमें ग्रन्थ बनावेंगे।

समाप्ति

परमेश्वरकी कृपासे हमारा निर्णय समाप्त हुआ। जो सज्जन हमको कठोर वचन प्रयोग करनेका दोष दें, उनके प्रति पहलेसे हमारा यह उत्तर है कि, (१) एक तो हमारा विषय ही दोष दिखलानेका है, जिसमें कठोरता आये बिना नहीं रह सकती, (२) दूसरे हिन्दीसाहित्यमें जो जो बुराइयां फेली हुई हैं और जिस प्रकारसे हिन्दी पत्रादिकोंके सम्पादक गवर्नमेंटकी प्रेसकी स्वतन्त्रता छीननेके विषयमें दोष देते हुए भी आप किसी खरे वाक्यवैयके भिन्न मतका सङ्कोच, भय वा स्वार्थहानिके भयसे प्रकाशित नहीं होने देते; उनसे जो हमारे

मनमें हिन्दीके नाते कष्ट और क्रोध बना रहता है, उसको निकालनेके लिये अबतक कोई द्वार न मिलनेसे इस अवसरपर कठोरता अधिक होनी ही चाहिये; और (३) जितनी प्रबल बुराइयां होती हैं उतने ही कठोर शब्द उनके खण्डनके लिये चाहियें। क्योंकि लोहेको कूटनेके लिये लोहेका हथौड़ाहोना चाहिये। अन्तमें हम बड़े नम्र भावसे "हिन्दीसाहित्यसम्मेलन"के कृतज्ञ हैं जिनसे हमसे निरक्षर देशवासी, द्विचाक्षर-बोधदुर्विदग्ध, अनजाने पुरुषको विद्वत्कार्य सौंपकर हमारे बूतेसे बाहर महिमाको पहुंचा दिया। ईश्वरसे प्रार्थना है कि, हिन्दीसाहित्यकी बुराइयोंको मेटकर "सम्मेलन" अपनी पूरी उपयोगिता और आवश्यकताको सिद्ध करनेमें समर्थ हो। ईश्वर ऐसा ही करे, ईश्वर ऐसा ही करे, और ऐसा ही करे।

—०—

(१७)

हिन्दीलेखप्रणालीकी शुद्धता।

—०※०—

लेखक—

पंडित सकलनारायण शर्म्मा।

जो भाषा शुद्ध नहीं होती, जिस भाषामें शुद्धताका आदर नहीं होता, उस भाषाकी लेखप्रणाली परिमार्जित नहीं होती। उस भाषाके द्वारा ठीक ठीक आन्तरिक भाव प्रकाशित नहीं हो सकते। इसीसे शाब्दिकोंने कहा है कि, अशुद्ध भाषा भावोंके प्रकाशित करनेमें नितान्त असमर्थ होती है। हिन्दीभाषा अभीतक परिमार्जित अथवा स्थिररूपशालिनी नहीं हुई है। इसका कारण उसकी अशुद्धता है। उसके लिखनेवाले व्याकरणकी प्रतिष्ठा नहीं करते। अतएव हिन्दीकी वाक्यरचनाप्रणाली सुदृढ़ नहीं होती। संस्कृतने व्याकरणकी उचित प्रतिष्ठा करके अपनी पूरीपूरी उन्नति कर ली है। हिन्दीको उसीका अनुकरण करना चाहिये। व्याकरणके आदरसे हिन्दी-लेखप्रणाली गौरवान्वित हो सकती है। यदि यह बात कही जाय कि, हिन्दीका कोई व्याकरण पूरा अथवा अच्छा नहीं है, तो जो है उनका भी ध्यान हिन्दीरसिकोंको प्रायः नहीं होता। ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं, जो ठीकठीक व्याकरणोंके अनुसार लिखते हैं। सभी लेखक अपनी अपनी भाषाको शुद्ध समझते हैं। यही कारण है कि, हिन्दीकी लेखप्रणाली विशुद्ध नहीं होती। बहुत से लेखक इसे उर्दूका लहंगा पहनाकर मुसल्मानिन बना देना चाहते हैं। इससे भी हिन्दीकी लेखप्रणाली विशृङ्खल हो गई है। हिन्दी और उर्दू पहले एक थी, अब दोनोंमें बहुत अन्तर हो गया है।

उर्दू फारसी और अरबीके सहारेके विना एक क्षण नहीं जी सकती। यदि हिन्दी उनका सहारा ले,तो अपना अस्तित्व खो देगी। बहुतसे लोग हिन्दीको संस्कृतकी गोदमें देखना पसन्द करते हैं। कुछ लोग इसे उसके पास जाने देना नहीं चाहते। इस विचारवैचित्र्यसे "उसके लड़का हुआ है", "तुमने कहा होता", "सम्पादक शिक्षा"

आदि व्याकरविरुद्ध वाक्य हिन्दीमें लिखे जाते हैं। हिन्दी वैयाकरण उन्हें अशुद्ध समझते हैं। उन्होंने उपर्युक्त वाक्योंके लिये कोई नियम अभीतक नहीं बनाया है। वे उर्दूकी शैलीपर हिन्दीमें व्यवहृत हो रहे हैं। उर्दू शैलीका अनुसरण अच्छा नहीं। उससे हिन्दी उन्नत होनेके बदले अवनत हो रही है। उर्दूका अनुकरण उतना ही अच्छा है, जितनेसे हिन्दीकी शुद्धता नष्ट न हो। बङ्गाली तथा मरहट्ठोंने अपनी भाषाओंको जैसे संस्कृतमाताके अंकमें दे दिया है, वैसे ही हिन्दी यदि संस्कृत देवीके क्रोड़में पले, तो यह अवश्य अपनी पालिकाकी सदृश चिरस्थायिनी हो जायगी। अन्यथा राष्ट्रभाषा बननेकी अपनी योग्यता खो देगी। क्योंकि, वह भाषा कभी राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती जो अशुद्धतासे भरी हो और कई शैलियोंपर लिखी जाती हो। भाषा वही शुद्ध होती है, जिसके शब्द, वाक्य और तात्पर्य तीनों शुद्ध होते हैं। इन तीनोंकी शुद्धतासे हिन्दीकी लेखप्रणाली शुद्ध हो सकती है ;—

शब्दशुद्धता — —तीन प्रकारके शब्द होते हैं। तत्सम, तद्भव और देशज। हिन्दीमें "शास्ति, जाग्रति, पठित समाज, पौर्वात्य राजनैतिक तथा उपरोक्त आदि" अशुद्ध तत्सम शब्द व्यवहृत होते हैं। ये संस्कृत व्याकरणके अनुकूल नहीं हैं, पर संस्कृत-भाषाके शब्द समझे जाते हैं और प्रयुक्त होते हैं। ऐसे शब्दोंका प्रयोग ठीक नहीं।

तद्भवशब्द मूलशब्दोंके अभावमें अशुद्ध समझे जाते हैं। बंगलाके सहारे उपन्यास लिखनेवाले विद्रूप आदि अशुद्ध तद्भव शब्दोंको लिखते हैं। इससे भी हिन्दीकी शुद्धता नष्ट होती है।

देशज शब्दोंमें प्रान्तिक शब्द अशुद्ध समझे जाते हैं, पर "हिन्दीसिद्धान्तप्रकाश"के अनुसार समुचित भावप्रकाशक प्रान्तीय शब्द भी शुद्ध देशज है। उनका प्रयोग आपत्ति जनक नहीं है। "बिहने हम आये हैं" इस वाक्यमें बिहने भोजपुरी शब्द है। इस ढंगके शब्दोंके व्यवहारसे हिन्दीकी शोभा नष्ट होती है। प्रत्येक प्रान्तके लेखक अपने अपने प्रान्तके शब्दोंका व्यवहार कर हिन्दीकी शुद्धता नष्ट करते हैं। हिन्दीकी लेखप्रणाली शुद्ध बनानेके लिये सबसे पहले शाब्दिक शुद्धतापर ध्यान देना उचित है। क्रियाके सम्बन्धमें भी यह बात समझनी उचित है।

वाक्यशुद्धता—जब हिन्दी लेखक ने, तो, भी, और न तथा स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग आदिका व्यवहार, यथायोग्य नहीं करते हैं, तब वाक्याशुद्धि होती है। इन्हींके समुचित व्यवहारपर हिन्दीकी शुद्धता निर्भर है। पुनरुक्ति तथा गर्भित वाक्यता आदि साहित्यक दोषोंका अविचार भी वाक्योंकी अशुद्धता बढ़ानेवाला है। यथासम्भव इन दोषोंको भी बचाना चाहिये।

तात्पर्यशुद्धता—आकांक्षा, आसत्ति और योग्यतापर ध्यान देकर जो वाक्य लिखे जाते हैं, वे अर्थतः अवश्य शुद्ध होते हैं और अर्थ शुद्धता ही साहित्यका जीवन है। जहां अर्थशुद्धता नहीं वहां लेखकोंका तात्पर्य नहीं ज्ञात होता। उनका परिश्रम

व्यर्थ हो जाता है। विषयाशुद्धिसे भी तात्पर्यकी शुद्धता नष्ट होती है। इसका कारण यह है कि, वाक्योंकी रचना किसी विषयपर होती है। यदि विषय कुरुचि-पूर्ण अथवा अश्लीलादिबोधक होते हैं, तो लेखकोंके तात्पर्य सिद्ध नहीं होते। क्यों कि, सभी लेखोंके तात्पर्य जाति, देश और समाजकी उन्नति ही है। जो लेखक भाषा और विषयोंकी शुद्धतापर ध्यान रखते है उनके लेखोंमें तात्पर्यशुद्धता आप ही आप चली आती है।

हिन्दीमें उपर्युक्त तीनों प्रकारकी शुद्धताओंकी आवश्यकता है। यदि हिन्दीलेखक अपनी मातृभाषाकी लेखप्रणालीकी शुद्धत चाहें, तो कोई कठिन बात नहीं है। उनमें बड़े बड़े सुयोग्य विद्वान हैं।

कलकत्ता।

१०३ मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट, भारतमित्र प्रेससे

श्री कालीपद घोष द्वारा मुद्रित।